



उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त  
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

# MAED-113

## योग शिक्षा

---

### खण्ड – 1 : योग के तत्व मीमांसा सम्बन्धी आधार

---

|                                                                                                               |       |
|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------|
| इकाई –01 : पुरुष (विशुद्ध चेतना) और प्रकृति का संप्रत्ययः एक ब्रम्हान्दिक वास्तविकता के रूप में आधार भूत तत्व | 5–14  |
| इकाई –02 : व्यैक्तिक प्रकृति के आधारभूत तत्व के रूप में बुद्धि और अहंकार का सम्प्रत्यय                        | 15–23 |
| इकाई –03 : अहंकार के अनुभाग—मन (मस्तिष्क), कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, तन्मात्रा (सूक्ष्म शरीर)              | 24–31 |
| इकाई –04 : ज्ञान की प्रकृति एवं प्रक्रिया                                                                     | 32–42 |

---

### खण्ड – 2 : योग का दर्शन और व्यक्तिगत तथा सामाजिक उन्नयन में इसका सम्बन्ध

---

|                                                                        |         |
|------------------------------------------------------------------------|---------|
| इकाई –05 : योग – अर्थ व परिभाषाएँ                                      | 46–65   |
| इकाई –06 : स्वास्थ्य व एकीकृत जीवन हेतु योग                            | 66–87   |
| इकाई –07 : मानव के सामाजिक एवं नैतिक उन्नयन हेतु योग                   | 88–102  |
| इकाई –08 : आध्यात्मिक उन्नति, आत्मानुभूति और प्रत्यक्षानुभूति हेतु योग | 103–119 |

---

### खण्ड – 03 : योग के विभिन्न प्रकार एवं आसन

---

|                                                               |         |
|---------------------------------------------------------------|---------|
| ठकाई –09 : पतंजलि का अष्टांग योग                              | 121–134 |
| इकाई –10 : ज्ञान योग, भक्ति योग एवं कर्म योग                  | 135–152 |
| इकाई –11 : श्री अरविन्द का समग्र योग एवं योग के आधुनिक स्वरूप | 153–164 |
| इकाई –12 : मंत्र के साथ सूर्य नमस्कार एवं आसन                 | 165–178 |

---

### खण्ड – 04 : योग के वैज्ञानिक आधार – योग और मनः स्वास्थ्य

---

|                                                                           |         |
|---------------------------------------------------------------------------|---------|
| इकाई– 13 : योग एवं जैव पृष्ठपोषण                                          | 181–192 |
| इकाई– 14 : योग के चिकित्सकीय मूल्य                                        | 193–210 |
| इकाई– 15 : शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य उन्नति में विभिन्न आसनों का प्रभाव | 211–230 |
| इकाई –16 : ध्यान व इसके चिकित्सकीय मूल्य                                  | 231–239 |

# उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

## MAED-113 योग शिक्षा

|                                                                         |                                                                                                                                    |
|-------------------------------------------------------------------------|------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| संरक्षक एवं मार्गदर्शक :                                                |                                                                                                                                    |
| प्रोफेसर सत्यकाम                                                        | कुलपति,<br>उ०प्र० राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज                                                                           |
| विशेषज्ञ समिति :                                                        |                                                                                                                                    |
| प्रोफेसर पी० के० स्टालिन                                                | निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज                                                    |
| प्रोफेसर पी० के० पाण्डेय                                                | प्रोफेसर, शिक्षा विद्याशाखा, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज                                                  |
| प्रोफेसर छत्रसाल सिंह                                                   | प्रोफेसर, शिक्षा विद्याशाखा, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज                                                  |
| प्रोफेसर के० एस० मिश्रा                                                 | पूर्व कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज                                                                                    |
| प्रोफेसर धनन्जय यादव                                                    | विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज                                                               |
| प्रोफेसर मीनाक्षी सिंह                                                  | आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी                                                                           |
| डॉ० जी० के० द्विवेदी                                                    | सह आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज                                                 |
| डॉ० दिनेश सिंह                                                          | सह आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज                                                 |
| डॉ० सुरेन्द्र कुमार                                                     | सहायक आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज                                              |
| लेखक :                                                                  |                                                                                                                                    |
| डॉ० आद्या शक्ति राय                                                     | सह-आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, डी.एस.एम.एन.आर.यू., लखनऊ (इकाई 1, 2, 3 एवं 4)                                                      |
| डॉ० श्वेता द्विवेदी                                                     | सह-आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल (इकाई 5, 6, 7, 8, 13, 14, 15 एवं 16)                                   |
| डॉ० गिरीश कुमार द्विवेदी                                                | सह-आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई 9, 10, 11 एवं 12)                          |
| सम्पादक :                                                               |                                                                                                                                    |
| डॉ० गिरीश कुमार द्विवेदी                                                | सह-आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई 1, 2, 3 एवं 4)                             |
| डॉ० सुरेन्द्र कुमार                                                     | सहायक आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई 5, 6, 7 एवं 8)                          |
| प्रो० छत्रसाल सिंह                                                      | आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई 9, 10, 11 एवं 12)                             |
| प्रो० जी०एस० शुक्ला                                                     | पूर्व निदेशक, स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई 13, 14, 15 एवं 16)           |
| परिभाषक :                                                               |                                                                                                                                    |
| प्रोफेसर पी०के० पाण्डेय                                                 | आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई 1, 2, 3, 4, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15 एवं 16) |
| प्रोफेसर पी०के० स्टालिन                                                 | निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई 5, 6, 7 एवं 8)                                |
| समन्वयक                                                                 |                                                                                                                                    |
| डॉ० गिरीश कुमार द्विवेदी                                                | सह-आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज                                                  |
| प्रकाशक : कुलसचिव, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज। |                                                                                                                                    |

### प्रकाशक

2024 (मुद्रित)

© उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज 2024

**ISBN:-978-93-48270-82-5**

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के द्वारा स्वयं उपलब्ध कराई गई हैं। विश्वविद्यालय, इस सामग्री के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिनियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : विनय कुमार, कुलसचिव प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रक : चंद्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज— 211002

### खण्ड परिचय

योग दर्शन भारत की विशेषताओं का प्रतीक एवं गौरव है। इस दर्शन की सबसे बड़ी उपादेयता योग प्रक्रिया को वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक रूप प्रदान करता है। योग दर्शन को सांख्य दर्शन की तत्व मीमांसा स्वीकार है। यह भी संसार को प्रकृति एवं पुरुष के योग से निर्मित मानता है परन्तु यह सांख्य के विपरीत ईश्वर की सत्ता में विश्वास करता और उसे वे 26वें तत्व के रूप में स्वीकार करता है। योग दर्शन के अनुसार ईश्वर संसार का निर्माता है और प्रकृति एवं पुरुष उसके आधारभूत साधन है। योग ईश्वर को अनादि, अनन्त, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिशाली मानता है। उसके अनुसार आत्मा शरीर में रहता है, ईश्वर सर्वत्र रहता है, आत्मा भोक्ता है, ईश्वर भोग से अलग रहता है। प्रस्तुत खण्ड को चार इकाईयों में विभक्त किया गया है। जिसका विवरण निम्नवत् है —

### इकाई — 1

भारतीय चिन्तन प्रणाली में सांख्य दर्शन सृष्टि के निर्माण में प्रकृति एवं पुरुष दो सत्ता को प्रमुख कारण मानता है। ये दोनों स्वाधीन सत्ताएँ हैं परन्तु उनमें संयोग की क्षमता है एवं इसी संयोग से विकास आरम्भ होता है। प्रस्तुत इकाई में हम ब्रम्हान्दिक वास्तविकता के आधार भूत तत्व—प्रकृति और पुरुष की अवधारणा का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

### इकाई — 2

भारतीय दर्शन सृष्टि विकास क्रम पर अनूठी व्याख्या प्रस्तुत करता है। पुरुष बिना प्रकृति के सहयोग के सृष्टि नहीं होती है। साथ ही सृष्टि की रचना ही पुरुष के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए होती है। प्रकृति निमित्त तथा उपादान कारण दोनों हैं। इन्हीं के संयोग से महत, अहंकार इत्यादि तत्वों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सांख्य का विकासवाद प्रकृति एवं चौबीस तत्वों का खेल है। सम्पूर्ण जगत के मूल का कारण प्रकृति है। सत्व रज तम मूल प्रकृति के तीन गुण हैं जो किसी समय साम्यावस्था में रहते हैं और कभी विषम अवस्था में। सृष्टि के पूर्व प्रकृति के सभी गुण साम्यावस्था में रहते हैं। गुणों की सम्मिलित मात्रा न घट सकती है न बढ़ सकती है। प्रकृति और पुरुष का सानिध्य होने पर गुणों की साम्यावस्था में विकार उत्पन्न होता है। प्रस्तुत इकाई में हम बुद्धि और अहंकार के सम्प्रत्यय का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

### इकाई — 3

प्रकृति और पुरुष दो अनादि तत्व हैं। प्रकृति सक्रिय परन्तु अचेतन है जबकि पुरुष निसक्रिय लेकिन चेतन है। प्रकृति पुरुष के प्रयोजनों की सिद्धि हेतु कार्यरत रहती है। प्रकृति पुरुष के भोग के लिए जगत रूप में प्रकट होती है सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों की साम्यावस्था प्रकृति है। प्रकृति के ये तीनों गुण जिस समय साम्यावस्था में रहते हैं। उस समय जगत का कोई रूप दृष्टिगोचर नहीं होता है। जब ये तीन गुण विषम स्थिति में आने लगते हैं। अव्यक्त प्रकृति से सर्वप्रथम बुद्धि उत्पन्न हुई बुद्धि से अहंकार, अहंकार से पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय पांच तन्मानायें उत्पन्न हुई। उसके पश्चात् तन्मात्राओं से आकाश, वायु, अग्नि, जल पृथ्वी में पंचभूत उत्पन्न हुए। इस प्रकार, प्रकृति व पुरुष के संयोग से त्रिगुणात्मक प्रकृति से सर्वप्रथम बृद्धित्व (महन्तत्व) की उत्पत्ति है बुद्धितत्व से 'अहंकार का प्रादुर्भाव होता है। प्रस्तुत इकाई में हम अहंकार के विविध अनुभागों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

### इकाई — 4

भारतीय दर्शन में ज्ञान को ब्रह्म सत्य माना गया है। भारतीय आध्यात्मिक दर्शन के अनुसार ज्ञान मनुष्य की मुक्ति का साधन है। ज्ञान के माध्यम से मनुष्य अंधविश्वास, आडंबर, अंधकार आदि से मुक्ति प्राप्त कर अपने जीवन

को अनुशासित करता है। ज्ञान का अध्ययन ज्ञान मीमांसा के अंतर्गत करते हैं। दर्शनशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य सत्य के स्वरूप को प्रकट करना है। दर्शन सभी विषयों की जननी है। वर्तमान में जितने भी विषय या अनुशासन हैं सबका उद्गम दर्शन से ही हुआ है। अतः प्राचीन काल से ही ज्ञान और ज्ञान की प्रकृति दर्शनशास्त्र में केंद्रीय विषय रहा है। 'ज्ञान का सिद्धांत' दर्शनशास्त्र की एक शाखा है जिसे हिंदी में ज्ञान मीमांसा और अंग्रेजी में एपिस्टेमोलॉजी के रूप में जाना जाता है। दर्शनशास्त्र की मुख्यतया तीन शाखाएं हैं— तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं मूल्य मीमांसा। ज्ञान मीमांसा के अंतर्गत ज्ञान की उत्पत्ति, उसकी संरचना, प्रकृति आदि का अध्ययन किया जाता है। ज्ञान मीमांसा का अर्थ है ज्ञान के प्राप्ति कैसे होता है अथवा ज्ञान का स्रोत क्या है। प्रस्तुत इकाई में हम ज्ञान का सम्प्रत्यय, ज्ञान की प्रकृति एवं प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

---

## इकाई-01 पुरुष (विशुद्ध चेतना) और प्रकृति का संप्रत्यय: एक ब्रम्हान्दिक वास्तविकता के रूप में आधारभूत तत्व

---

### इकाई की संरचना

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 इकाई के उद्देश्य
- 1.3 ब्रम्हान्दिक वास्तविकता के आधारभूत तत्व
- 1.4 प्रकृति की अवधारणा
- 1.5 पुरुष की अवधारणा
- 1.6 प्रकृति एवं पुरुष में सम्बन्ध
- 1.7 सारांश
- 1.8 अभ्यास प्रश्न
- 1.9 चर्चा के बिंदु
- 1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

### 1.1 प्रस्तावना

सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानव अनेकानेक प्रश्नों के उत्तर का आकांक्षी रहा है। मानव व जगत का वास्तविक स्वरूप क्या है? क्या संसार सिर्फ भौतिक जगत तक ही सीमित है या इससे इतर भी कोई सत्यता है? किस नियामक सत्ता से प्रेरित होकर सारा संसार नियमानुसार संचालित हो रही है? मनुष्य के वास्तविक कल्याण के क्या साधन हैं? मानव जीवन व समाज के लिए श्रेयस्कर क्या है? इत्यादि अनेक ऐसे मौलिक प्रश्न हैं जिसका उत्तर मानवता अनादि काल से किसी न किसी प्रकार से खोजती आयी है। इसी अन्वेषण एवं मनन-चिंतन की प्रक्रिया को दर्शन संज्ञा दिया गया। दर्शन शास्त्र मानव जीवन एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के वास्तविक स्वरूप, आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत, सृष्टि-स्रष्टा, जीवन मूल्य, ज्ञान की प्रकृति एवं प्राप्त करने के साधन, मनुष्य के लिए वांछित-अवांछित करणीय एवं अकरणीय कर्मों का तार्किक विवेचन है। भारतीय चिन्तन प्रणाली में सांख्य दर्शन सृष्टि के निर्माण में प्रकृति एवं पुरुष दो सत्ता को प्रमुख कारण मानता है। ये दोनों स्वाधीन सत्ताएं हैं परन्तु उनमें संयोग की क्षमता है एवं इसी संयोग से विकास आरम्भ होता है।

प्रस्तुत इकाई में हम ब्रम्हान्दिक वास्तविकता के आधारभूत तत्व-प्रकृति और पुरुष की अवधारणा का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे। साथ ही दृश्यमान सृष्टि के इन आधारभूत तत्वों में साम्यता एवं भिन्नता पर भी विचार करेंगे।

---

### 1.2 इकाई उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे –

- दर्शन के उद्देश्य को समझ सकेंगे।
- ब्रम्हान्दिक वास्तविकता के आधारभूत तत्वों की समझ विकसित कर सकेंगे।
- प्रकृति और पुरुष की अवधारणा बता सकेंगे।
- प्रकृति और पुरुष सम्बन्धित विभिन्न विशेषताओं को चिन्हित कर सकेंगे।
- प्रकृति और पुरुष के परस्पर सम्बन्ध की विवेचना कर सकेंगे।

- प्रकृति और पुरुष के मध्य अंतर को स्पष्ट कर सकेंगे।

### 1.3 ब्रम्हान्दिक वास्तविकता के आधारभूत तत्व

भारतीय दर्शन ब्रम्हान्दिक वास्तविकता पर अपने अत्यंत वृहद एवं प्रमाणिक विचारों को प्रस्तुत करती है। लगभग सभी पुराण, महाभारत और योगवासिष्ठ ब्रम्हान्दिक वास्तविकता के आधारभूत तत्व एवं सृष्टि के विकास क्रम में उनके स्थान की वृहत् चर्चा करते हैं। परन्तु इस विषय के सन्दर्भ में सांख्य दर्शन के सिद्धांतों की चर्चा सर्वाधिक होती है। सांख्य के रचयिता महर्षि कपिल कहे गए हैं जो पुराणों के मतानुसार सृष्टि के आरंभ में ही प्रकट हुए थे। कपिल को आदि विद्वान और परम ऋषि के नाम से भी जाना जाता है वास्तव में सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में सांख्य में जो विवेचन किया गया है वह आधुनिक वैज्ञानिक खोजों से सत्य सिद्ध होता है। कपिल में सूक्ष्म दृष्टि से सृष्टि के केवल दो तत्व से ही निर्मित माना है जो विज्ञान की नवीनतम सिद्धांतों से मिलता जुलता है। भारतीय दर्शन की सबसे प्राचीन शाखा सांख्य दर्शन एक ऐसी विचारधारा है जो एक मूलभूत कारण से ही संपूर्ण सृष्टि का विकास रेखांकित करती है। सांख्य दर्शन का एक प्रमुख, सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक सिद्धांत सत्कार्यवाद है। इस सिद्धांत के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि अपने उद्भव के पूर्व प्रकृति में ही अव्यक्त रूप में अवस्थित/वर्तमान रहता है। सम्पूर्ण सृष्टि कार्यरूप पदार्थों से बनी है और इस कार्यरूप पदार्थों के मूल में निश्चित ही कोई कोई कारण रूप मूल तत्व विद्यमान है जिसके संयोग से उनकी उत्पत्ति होती है। सांख्य दर्शन इसी मूल कारण को प्रकृति कहता है। प्रकृति अचेतन है और यह अचेतन प्रकृति जिस चेतन की सहायता से महद्वादी कार्यो को उत्पन्न करने में प्रवृत्त होती है उसको पुरुष संज्ञा करता है। यह पुरुष एक निरपेक्ष द्रष्टा है जो की प्रकृति की सीमाओं से बंधा नहीं है, विमुक्त है। अतः सांख्यदर्शन के अनुसार यह सृष्टि के प्रकृति-पुरुष से बनी होने की है, यहाँ प्रकृति जड़ अर्थात् पंच महाभूतों से निर्मित है और पुरुष (यानि जीवात्मा) चेतन। दृश्यमान संसार को प्रकृति-पुरुष मूलक व्याख्या भारतीय दर्शन की महत्वपूर्ण देन है, इसके अनुसार यह जगत वास्तविक रूप से जड़ एवं चेतन, दोनों ही रूपों के मूल रूप से जड़ प्रकृति, एवं चिन्मात्र पुरुष इन दो तत्वों की सत्ता स्वीकार करता है। जड़ प्रकृति सत्त्व, रजस एवं तमस् – इन तीनों गुणों की साम्यावस्था का नाम है तथा सांख्य के अनुसार सारा विश्व त्रिगुणात्मक प्रकृति का वास्तविक परिणाम है। सांख्य दर्शन एक द्वैतवादी दर्शन है जिसमें दो स्वतंत्र तत्व हैं—पुरुष और प्रकृति।

#### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

1. सांख्य दर्शन के सत्कार्यवाद सिद्धांत से क्या आशय है?

.....

.....

.....

2. सांख्य दर्शन के अनुसार दृश्यमान जगत किन दो स्वतंत्र तत्वों से मिलकर निर्मित हुई है?

.....

.....

.....

3. सत्त्व, रजस एवं तमस् – इन तीनों गुणों की साम्यावस्था को क्या कहते हैं?

.....

.....

.....

## 1.4 प्रकृति की अवधारणा

सांख्य दर्शन का प्रथम तत्त्व प्रकृति है जिसे त्रिगुणात्मिका कहा गया है और जो इस विश्व का मूल कारण है। प्रकृति को प्रधान, अव्यक्त, मूल प्रकृति इत्यादि अन्यान्य नामों से भी जाना जाता है। प्रकृति को प्रधान कहा जाता है, क्योंकि वह विश्व का प्रथम कारण है। प्रथम कारण होने के कारण विश्व की समस्त वस्तुएँ प्रकृति पर आश्रित हैं। किन्तु प्रकृति स्वयं स्वतन्त्र है। प्रकृति को ब्रह्मा कहा जाता है। ब्रह्मा उसे कहा जाता है जिसका विकास हो। प्रकृति स्वयं विकसित होती है। इसका विकास भिन्न-भिन्न पदार्थों में होता है। इसलिए उसे ब्रह्म की संज्ञा दी गयी है। प्रकृति को अव्यक्त कहा जाता है। प्रकृति विश्व का कारण है। कारण होने के नाते विश्व के सभी पदार्थ प्रकृति में अव्यक्त से मौजूद रहते हैं। इसी कारण प्रकृति को अव्यक्त कहा गया है। प्रकृति को अनुमान कहा जाता है। प्रकृति का ज्ञान प्रत्यक्ष से सम्भव नहीं है। प्रकृति का ज्ञान अनुमान के माध्यम से होता है, जिसके फल स्वरूप इसको अनुमान कहा जाता है। प्रकृति को जड़ कहा जाता है, क्योंकि वह मूलतः भौतिक पदार्थ है। प्रकृति को माया उसे कहा जाता है। माया उसे कहा जाता है जो वस्तुओं को सीमित करती है। प्रकृति विश्व की समस्त वस्तुओं को सीमित करती है। क्योंकि वह ज्ञान का संघात्मक है। प्रकृति के विभिन्न नामों की चर्चा हो जाने के बाद अब हम प्रकृति के स्वरूप पर विचार। प्रकृति को शक्ति कहा जाता है, क्योंकि उसमें निरन्तर गति विमान रहती है। प्रकृति जिस अवस्था में भी हो निरन्तर गतिशील दीख पड़ती है। प्रकृति को अविद्या कहा जाता है क्योंकि वह ज्ञान का शोधात्मक है। प्रकृति के विभिन्न नामों की चर्चा हो जाने के बाद अब हम प्रकृति के स्वरूप पर विचार करेंगे। सांख्य की प्रकृति का अध्ययन करने से प्रकृति के अनेक लक्षण दीख पड़ते हैं।

प्रकृति प्राथमिक तत्त्व है तुरंत ही जड़ से मंतर अचेतन से चेतन तक सभी का संगठन तत्त्व है यह सभी सदैव परिवर्तनशील तत्वों का मूल है यहां तक कि हमारे मन और बुद्धि भी परिवर्तित होते हैं परिवर्तन या रूपांतरण का विश्व एक है अनेक नहीं प्रकृति स्वयं में पूर्ण से अचेतन है जबकि पुरुष चेतना है पुरुष प्रकृत को प्रभावित करता है यद्यपि प्राकृतिक है उस संख्या है अतः एक या समान प्रकृति और पुरुष है जैसे पुरुष का प्रकृति से सामना होता है वह विश्व को विकसित करती है क्योंकि प्रकृति समान है इसलिए पुरुषों के लिए उत्पन्न वस्तुनिष्ठ विश्व भी समान ही होता है और संप्रेषित के अभिज्ञान द्वारा संभव होता है बहुत से संबंधित होते हैं संपूर्ण ब्रह्मांड के सभी रूपों के सभी संभव सिद्धांतों का प्रथम कारण है।

प्रकृति एक है। सांख्य दो तत्वों की सत्ता स्वीकार करता है। जिसमें पहला तत्व प्रकृति है। इसलिये प्रकृति को तत्व माना गया है। प्रकृति स्वयं स्वतन्त्र है, यद्यपि विश्व की प्रत्येक वस्तु प्रकृति पर आश्रित है। प्रकृति को सत्ता के लिए किसी दूसरी वस्तु की अपेक्षा नहीं है इसलिए प्रकृति को स्वतन्त्र सिद्धान्त कहा गया है।

प्रकृति विश्व की विभिन्न वस्तुओं का कारण है, परन्तु स्वयं अकारण है। वह जड़, द्रव्य, प्राण, अहंकार आदि का मूल कारण है। यद्यपि प्रकृति समस्त वस्तुओं का मूल कारण है, परन्तु वह स्वयं उन वस्तुओं से भिन्न है। प्रकृति स्वतन्त्र है जबकि वस्तुएँ परतन्त्र हैं। प्रकृति निरवयव जबकि वस्तुएँ सावयव हैं। प्रकृति एक है जबकि वस्तुएँ अनेक हैं। प्रकृति शाश्वत है जबकि वस्तुएँ शाश्वत नहीं हैं। प्रकृति दिक् और काल की सीमा से बाहर है जबकि वस्तुएँ दिक् और काल में निहित हैं। प्रकृति अदृश्य है, क्योंकि वह अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। प्रकृति का ज्ञान अनुमान से प्राप्त होता है। प्रकृति अव्यक्त है। सांख्य सत्कार्यवाद में विश्वास करता है जिसके अनुसार कार्य उत्पत्ति के पूर्व कारण में मौजूद रहता है। प्रकृति विश्व की विभिन्न वस्तुओं का कारण है। सम्पूर्ण विश्व कार्य के रूप में प्रकृति में अन्तर्भूत रहता है। प्रकृति अचेतन है क्योंकि वह जड़ है। जड़ में चेतना का अभाव रहता है। यद्यपि प्रकृति अचेतन है, फिर भी वह सक्रिय है। प्रकृति में क्रियाशीलता निरन्तर दिखाई पड़ती है। इसमें गति अन्तर्भूत है। प्रकृति एक क्षण के लिए भी निष्क्रिय नहीं हो सकती है। प्रकृति को व्यक्तित्वहीन माना गया है। क्योंकि बुद्धि और संकल्प व्यक्तित्व के दो चिह्न का वहां पूर्णतः अभाव है।

प्रकृति शाश्वत है, क्योंकि वह संसार की सभी वस्तुओं का मूल कारण है जो संसार का मूल कारण है वह अशाश्वत नहीं हो सकती इसीलिए प्रकृति को शानादि अर्थात् अनादि और अनन्त कहा गया है। सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति से ही महत इत्यादि तेईस तत्वों की उत्पत्ति होती है इसलिए इसे प्रकृति कहा जाता है। यह सांख्य का मूल तत्व है जिससे सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति हुई है।

सत्कार्यवाद, सांख्य दर्शन के प्रमुख सिद्धांतों में एक है। इसके अनुसार कार्य की उत्पत्ति से पूर्व भी कारण में उसकी सत्ता विद्यमान रहती है जैसे सरसों के बीज में सरसों का तेल पहले से छिपा रहता है। यह सम्पूर्ण सृष्टि कार्यरूप

पदार्थों से निर्मित है जिसके मूल में अवश्य कोई कारण रूप मूल तत्व है, जिसके संयोग से उनकी उत्पत्ति होती है। इसी मूल कारण को सांख्य दर्शन 'प्रकृति' नाम देती है। इसी प्रकृति को श्वेताश्वत उपनिषद् अजा (उत्पत्ति रहित) एका, त्रिगुणात्मिका, सरुपा संज्ञा देती है। समस्त नैसर्गिक भौतिक पदार्थों और मानसिक तत्वों जैसे मन, बुद्धि आदि पुरुष को छोड़कर संसार में जो भी है उन सब का मूल कारण यही प्रकृति है किन्तु जगत् की वस्तुओं से भिन्न यह नित्य, अनश्वर, निरपेक्ष एवं स्वतंत्र है। सांख्य-दर्शन ने प्रकृति को प्रमाणित करने के लिए अनेक तर्कों का सहारा लिया है, जिन्हें प्रकृति की सत्ता का प्रमाण कहा जाता है। ऐसे तर्क निम्नलिखित हैं—

- (1) विश्व की समस्त वस्तुएँ परतंत्र, सीमित एवं सापेक्ष हैं। विश्व का कारण सीमित एवं सापेक्ष पदार्थ को ठहराना भूल है। इसलिए विश्व का कारण एक ऐसी सत्ता को मानना पड़ता है जो असीम तथा निरपेक्ष है। यही सत्ता प्रकृति है।
- (2) जगत् की वस्तुएँ यद्यपि भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी उनमें सामान्यता की लहर है। जब विश्व की विभिन्न वस्तुओं का विश्लेषण किया जाता है तो उनमें सामान्यतः सुख-दुःख और उदासीनता उत्पन्न करने की शक्ति पायी जाती है। इससे सिद्ध होता है कि जगत् की वस्तुओं का कारण एक ऐसा पदार्थ है जिसमें सुख-दुःख और उदासीनता का भाव वर्तमान है। जिसका कारण प्रकृति है।
- (3) विश्व एक कार्य है जिसका कोई न कोई कारण अवश्य है। सत्कार्यवाद के अनुसार जिसे सांख्य मानता है, कार्य अव्यक्त रूप से कारण में अन्तर्भूत है। विश्वरूपी कार्य का कारण एक ऐसी वस्तु को होना चाहिए जिसमें सम्पूर्ण विश्व अव्यक्त रूप से निहित हो। वह कारण प्रकृति का है। सारा संसार प्रकृति में अव्यक्त रूप से विद्यमान है। विकास का अर्थ, जिसकी व्याख्या आगे होगी। प्रकृति में निहित अव्यक्त विश्व का व्यक्त होना है।
- (4) विश्व की ओर दृष्टिपात करने से सम्पूर्ण विश्व में एकता दिखाई पड़ती है। यद्यपि की वस्तुएँ भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी वे संगठित हैं। उनका संगठित होना एक मूल कारण की ओर संकेत करता है। वह कारण प्रकृति है।
- (5) विश्व एक कार्य है जो कारण की ओर संकेत करता है। विश्व का कारण स्वयं विश्व नहीं हो सकता है, क्योंकि कार्य और कारण में भेद होता है। यदि विश्व का कारण एक पदार्थ का माना जाए तो फिर उस पदार्थ का कारण एक दूसरे पदार्थ को मानना होगा और फिर दूसरे पदार्थ का कारण तीसरे पदार्थ को मानना पड़ेगा। परन्तु यदि इस प्रकार एक का कारण दूसरे को मानते जाएं तो अनवस्था दोष का सामना करना होगा। इनसे बचने के लिए आवश्यक है कि विश्व का कारण एक ऐसी वस्तु को माना जाए, जो स्वयं कारणहीन है। वह अकारण वस्तुओं जो विश्व का कारण है, प्रकृति है।
- (6) कारण और कार्य में तादात्म्य सम्बन्ध है। सृष्टि के समय कारण से कार्य का निर्माण होता है, प्रलय के समय कार्य कारण में विलीन हो जाते हैं। मिट्टी से विभिन्न प्रकार के बर्तानों का निर्माण होता है। बर्तन टूट जाने के बाद मिट्टी में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी प्रकार विश्व का कारण भी वस्तु को होना चाहिए जिससे सृष्टि के समय विश्व की समस्त वस्तुएँ निर्मित हों और प्रलय की समस्त वस्तुएँ उस कारण में आकर मिल जायें। वह कारण प्रकृति है। प्रकृति से ही सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि होती है और प्रलयकाल में विश्व की सम्पूर्ण वस्तुएँ प्रकृति में आकर मिल जाती हैं। यद्यपि प्रकृति एक है फिर भी उसका स्वरूप जटिल है। प्रकृति का विश्लेषण करने से प्रकृति अनेक प्रकार के गुण पाये जाते हैं। ये तीन प्रकार के गुण हैं, सत्व, रजस् और तमस सांख्य दर्शन गुण का प्रयोग साधारण अर्थ में नहीं हुआ है। साधारणतः गुण का प्रयोग विशेषण के रूप में होता है। परन्तु सांख्य ने गुण शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ में किया है। गुण का अर्थ यहाँ तत्व या द्रव्य मान्य गया है। गुण प्रकृति के तत्व हैं अथवा द्रव्य हैं। गुण प्रकृति की सत्ता का निर्माण करते हैं। गुणों के अभाव में प्रकृति की कल्पना करना असम्भव है। सच पूछा जाए तो तीनों गुणों के साम्यावस्था को ही प्रकृति कहा जाता है। (गुणानां साम्यावस्था) इसलिए प्रकृति को त्रिगुणमयी कहा गया है।

**प्रकृति की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं।**

1. **त्रिगुणात्मिका** : प्रकृति में सत्व, रज और तम तीन गुण हैं और ये तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं।
2. **अहेतु** : प्रकृति सबका कारण है परन्तु प्रकृति का कोई कारण नहीं है।
3. **नित्य व अनश्वर** : प्रकृति अनादिकाल से है अतः नित्य और अनश्वर है।

4. **सर्वव्यापक** : प्रकृति से सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति होती
5. प्रकृति की उत्पत्ति का कोई कारण नहीं है। प्रकृति का कोई कार्य नहीं है जिस पर वह आश्रित **अनाश्रित** : रहे।
6. **अक्रिय** : प्रकृति से किसी प्रकार की क्रिया की अपेक्षा नहीं है क्योंकि वह सर्वव्यापक है।
7. **निरवय** : शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इत्यादि अवयव प्रकृति में नहीं होते इसलिए वह निरवय होता है।
8. **अचेतन** : प्रकृति जड़ है इसलिए अचेतन है।
9. **प्रसवधर्मी** : प्रकृति समस्त दृश्यमान जगत की उत्पत्ति करने वाली है अतः प्रसवधर्मी स्वभाव वाली है।
10. **सूक्ष्म** : प्रकृति इतनी सूक्ष्म है कि अवलोकनीय नहीं है जगत को देखकर इसके कारण के रूप में 'प्रकृति' के अस्तित्व का अनुमान कर सकते हैं

**बोध प्रश्न :**

**टिप्पणी**

(क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

4. प्रकृति को अन्य किन नामों से जाना जाता है?

.....

.....

.....

5. प्रकृति को अनाश्रित क्यों कहा जाता है?

.....

.....

.....

6. प्रकृति सबका कारण है परन्तु प्रकृति का कोई कारण नहीं है। (सत्य/असत्य)

.....

.....

.....

7. प्रकृति चेतन है (सत्य/असत्य)

.....

.....

.....

## 1.5 पुरुष की अवधारणा

भारतीय दर्शन में किसी ना किसी रूप में पुरुष के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। इसका मानना है कि 'मैं हूँ' का भान सभी को होता है। सांख्य दर्शन में इसी मैं हूँ का बोध जिसके माध्यम से होता है उसी को पुरुष कहा गया है अन्य दर्शन इसी को आत्मा कहते हैं। पुरुष प्राणवान, सजीव एवं संवेदनशील है और बिना पुरुष के विकास सम्भव नहीं है। पुरुष सांख्य दर्शन का आत्म तत्व है जो शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि से भिन्न है। वह चौतन्य स्वरूप है। सांख्य दर्शन में पुरुष का स्वरूप आत्मा से पर्याप्त साम्य रखता है। इसे प्रकृति के विपरीत बताया गया है। पुरुष शुद्ध चौतन्यस्वरूप है और सभी अवस्थाओं में चौतन्ययुक्त रहता है। यह प्रकृति के

विपरीत निर्गुण स्वरूप है यह ज्ञाता और विषयी है। पुरुष नित्य तथा अपरिणामी है। पुरुष की सत्ता स्वतःसिद्ध है और इसका निषेध करना असम्भव है क्योंकि इसका निषेध करने वाला निषेधकर्ता स्वयं पुरुष का ही स्वरूप है। पुरुष कर्ता नहीं भोक्ता मात्र है यह प्रकृति और उसके विकारों का भोग करता है। सांख्य में पुरुष नित्य है तथा संख्या में अनेक हैं। प्रकृति ज्ञेय, विषय तथा जड़ है। जबकि पुरुष अधिष्ठान, ज्ञाता, विषयी तथा चेतन है। प्रकृति और उससे उत्पन्न पदार्थ जड़ होने के कारण भोग्य है अतः अतः इसे भोगने के लिए भोक्ता होना चाहिए और भोक्ता वही हो सकता है जो चेतना से युक्त हो। चौतन्य होने के कारण पुरुष इस प्रकृति का भोक्ता है। प्रकृति एवं प्राकृतिक पदार्थ जड़ होने के कारण स्वयं अपना उपभोग नहीं कर सकते इनका उपभोग करने वाला यह पुरुष है। प्रकृति के पदार्थ ही इस पुरुष में सुख-दुख की उत्पत्ति करते हैं जब इस पुरुष को ये पदार्थ प्राप्त होते हैं तब यह सुख का अनुभव करता है परन्तु जब ये पदार्थ दूर होते हैं तब यह पुरुष दुख की अनुभूति करता है। पुरुष अथवा चेतन तत्त्व किसी जड़ पदार्थ की तरह अनुभव की चीज नहीं है परन्तु जब इस सृष्टि के रचना और उसके प्रयोजन पर विचार किया जाता है तो उसे वस्तुतः स्वीकार करना पड़ता है। दर्शनशास्त्र का नियम है कि यदि हम अनुभव करते हैं उसका कोई कारण भी अवश्य होना चाहिए। जब सृष्टिध्वंससार के कार्य में एक व्यवस्था क्रम और चेतना पायी जाती है तो किसी 'चेतन' का होना भी आवश्यक है। सांख्य शास्त्र में प्रकृति के 24 विभागों के पश्चात् पच्चीसवां 'पुरुष या चेतन' माना है। इसके प्रमाण निम्नलिखित हैं।

### पुरुष के अस्तित्व के प्रमाण

प्रकृति की तरह पुरुष की सत्ता को प्रमाणित करने के लिए सांख्य विभिन्न युक्तियों का प्रयोग करना है। इन युक्तियों का संकलन सांख्यकारिका के लेखक ने एक श्लोक में सुन्दर ढंग से किया है, श्लोक निम्नांकित है —

**संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादि विपर्ययादधिष्ठानात् ।**

**पुरुषोसित भोक्ताभावात् कैवल्यार्थ प्रवृत्तेश्च ॥**

इस श्लोक में पुरुष को प्रमाणित करने के लिए पाँच प्रधान तर्क अन्तर्भूत हैं जिसमें प्रत्येक अंग आवश्यक है।

- (1) **संघातपरार्थत्वात्** — विश्व की समस्त वस्तुएँ संघातमय हैं। सावयव वस्तुओं को संघातमय कहा जाता है। संघातमय वस्तुओं का स्वरूप यह है कि वे दूसरों के उद्देश्य के लिए निर्मित होते हैं मन, इन्द्रियाँ, शरीर, अहंकार, बुद्धि इत्यादि संघातमय पदार्थ हैं। जिस प्रकार खाट का निर्माण शयन करने वाले के लिए होता है उसी प्रकार विश्व की इन वस्तुओं का निर्माण दूसरों के प्रयोजन के लिए हुआ है। यदि यह माना जाए कि इन वस्तुओं का निर्माण प्रकृति के प्रयोजन के लिए है तो यह धारणा गलत होगी, क्योंकि प्रकृति अचेतन होने के कारण इन विषयों का उपभोग करने में असमर्थ हैं। अतः पुरुष की सत्ता प्रमाणित होती है जिसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए संसार का प्रत्येक वस्तु मात्र साधन हैं। यहाँ तक कि प्रकृति स्वयं पुरुष के प्रयोजन की पूर्ति में सहायक है। पुरुष के उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त प्रकृति भिन्न-भिन्न वस्तुओं का विकास करती है। इसी कारण विकासवाद को सांख्य में प्रयोजनमय माना है एवं इस तर्क को प्रयोजनात्मक कहते हैं।
- (2) **त्रिगुणादिविपर्ययात्** — विश्व की वस्तुएँ त्रिगुणात्मक हैं, क्योंकि उनमें सुख दुःख है। उदासीनता उत्पन्न करने की शक्ति है। इसलिए कोई ऐसे तत्व का रहना अनिवार्य है जो अतिगुण है तार्किक दृष्टिकोण से त्रिगुण का विचार त्रिगुण के विचार की ओर संकेत करता है। वह त्रिगुण तन्त्र जिसकी ओर त्रिगुणात्मक विश्व संकेत करता है, पुरुष है। पुरुष विभिन्न गुणों का साक्षी है, परन्तु वह स्वयं इनसे परे है। यह प्रमाण तार्किक कहा जाता है।
- (3) **अधिष्ठानात्** — विश्व के समस्त भौतिक पदार्थ अचेतन हैं। अचेतन वस्तु अपनी क्रियाओं का प्रदर्शन तभी कर सकती है, जब उसके संचालन के लिए चेतन सत्ता के रूप में कारीगर माना जाए।

पुरुष निम्नलिखित विशेषता रखने वाला है।

पुरुष की विशेषताएं :

**चेतन** : पुरुष चेतन है। पुरुष चौतन्य है परम तत्व, आत्मा तत्व, समस्त ज्ञान एवं अनुभव को प्राप्त करने वाला है।

**स्वयंभू** : पुरुष स्वयं है। इसको मात्र अनुमान प्रमाण से ही सिद्ध किया जा सकता है।

**अकर्ता** : पुरुष अपरिणामी, अकर्ता तथा चौतन्त्रस्वरूप है।

**अनेक** : यह अनेक है। यह नित्य द्रष्टा एवं ज्ञाता के रूप में विद्यमान है।

**जगत का कारण** : दृश्यमान जगत में महत तत्व, अहंकार, मन, पंचतन्मात्राएँ, पंचकर्मेन्द्रिया और पंच ज्ञानेन्द्रियाँ और पंच महाभूतों की उत्पत्ति पुरुष और प्रकृति के संयोग से उत्पन्न होती हैं।

**ज्ञाता** : पुरुष स्वयंसिद्ध ज्ञाता है।

**उपभोगकर्ता** : प्रकृति एवं प्राकृतिक पदार्थ जड़ होने के कारण स्वयं अपना उपभोग नहीं कर सकते इनका उपभोग करने वाला है।

**स्वतंत्र** : सांख्य दर्शन का मत है कि यद्यपि पुरुष नित्य मुक्त है अर्थात् स्वतन्त्र है। परन्तु वह अज्ञानता के कारण स्वयं को अचेतन प्रकृति से युक्त समझने लगता है इस कारण वह दुरुखी होता है तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याओं से घिरता है बन्धनों से युक्त होता है किन्तु आगे चलकर जब यह पुरुष ज्ञान प्राप्त करता हो तब वह अपने स्वरूप को पहचानने में सक्षम होता है और अनेक स्वरूप प्रकृति के स्वरूप भिन्न जानने में समर्थ होता है। तभी वह इस बंधन से मुक्त होता है यह में नहीं हूँ। सांख्य दर्शन में ज्ञान के माध्यम से पुरुष का अपने स्वरूप को जानकर प्रकृति से पृथक् हो जाना है कैवल्य कहा गया है जिसे महर्षि पतंजलि योग दर्शन में वर्णित करते हैं।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

8. पुरुष सांख्य दर्शन का परमात्म तत्व है (सत्य/असत्य)

.....

.....

.....

.....

.....

9. सांख्य दर्शन में पुरुष का स्वरूप आत्मा से पर्याप्त साम्य रखता है। (सत्य/असत्य)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10. सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष एक है। (सत्य/असत्य)

.....

.....

.....

.....

---

## 1.6 प्रकृति एवं पुरुष में सम्बन्ध

---

प्रकृति और पुरुष में निम्नलिखित समानता है :

| क्र.सं. | प्रकृति                | पुरुष                    |
|---------|------------------------|--------------------------|
| 1.      | अनादि                  | अनादि                    |
| 2.      | अंतरहित है             | इसका अंत नहीं है         |
| 3.      | निराकार                | इसका भी कोई आकार नहीं है |
| 4.      | नित्य है               | निरंतर है                |
| 5.      | इसके पहिले कोई नहीं है | सबसे पूर्व पुरुष ही है।  |

प्रकृति एवं पुरुष में निम्नलिखित विषमता है :

| क्र.सं. | प्रकृति                     | पुरुष                       |
|---------|-----------------------------|-----------------------------|
| 1.      | एक है                       | अनंत, अनेक है               |
| 2.      | जड़ है। चेतनारहित है        | अचेतन नहीं। चौतन्ययुक्त है। |
| 3.      | त्रिगुणात्मक है             | त्रिगुणातीत है              |
| 4.      | बीज धर्मवाली है             | बीज धर्म से रहित है         |
| 5.      | प्रसवधर्मी है               | प्रसवधर्म से शून्य है       |
| 6.      | सुख— दुःख को भोगने वाली है। | सुख—दुःख से शून्य है।       |

---

## 1.7 सारांश

---

मानव का मूल स्वभाव जिज्ञाषा है। मानव इस सृष्टि में स्वयं को श्रेष्ठ इस कारण से सिद्ध कर पाता है कि क्योंकि वह सदैव कुछ न कुछ जानने को प्रयत्न करता है। जब उसमें विचार करने की शक्ति का उत्तरोत्तर विकास हुआ तब वह खुद के उत्पत्ति और आधार को ढूँढने लगा। इस जिज्ञाषा को शांत करने का दो उपागम उसके पास आया एक कि अवधारणा मानव विज्ञान है दूसरा दर्शन है। विज्ञान का मानवीय संवेदनाओं, भाव और तत्संबंधित विचार पर अपनी प्रतिबद्धता नहीं है और होना भी नहीं चाहिए। दर्शन चिंतन का प्रतिफल है। वैचारिक दुख को दूर करने को दर्शन कि सीढ़ियों पर चढ़ कर उस धरातल पर पहुँचते हैं जहाँ से हम सभी कारणों और उसके परिणाम को समझ कर उन से मुक्त हो सकते हैं।

मनुष्य कि इन्ही जिज्ञाषा का मौलिक प्रश्न—उत्तर का विवरण सांख्य दर्शन देता है। इसके प्रवर्तक कपिल मुनि हैं। उन्होंने सर्वप्रथम यह ज्ञान अपनी ही माता देह्युति को प्रदान किया। पुरुष शुद्ध चेतन है

इसे हम प्राण भी समझ सकते हैं। प्रकृति को देह मान सकते हैं एक मृत देह में सब कुछ है, सृजन, देखना, चलना, अनुभूति करना, अनुभूति को अभिव्यक्त करना। प्रकृति प्रसव अर्थात् सृष्टि का विस्तार करने को उद्धत है सब कुछ नया करने को तैयार है पर उसमें चेतना नहीं है। एक मृत देह में केवल अदृश्य प्राण ही तो नहीं है। बस प्राण आते ही देह वह सब कुछ करने को तैयार हो जाता है जिसके वह योग्य है और अपनी सारी संभावनाओं को व्यक्त करने को अपने क्रमिक विकास को भी वह प्रतिबद्ध हो जाता है। यही प्रकृति है। प्रकृति को चेतना कि आवश्यकता होती है जिनके मिलन से यह सृष्टि विस्तार पाती है।

दर्शन शास्त्र मानव जीवन एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के वास्तविक स्वरूप, आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत, सृष्टि-सृष्टा, जीवन मूल्य, ज्ञान की प्रकृति एवं प्राप्त करने के साधन, मनुष्य के लिए वांछित-अवांछित करणीय एवं अकरणीय कर्मों का तार्किक विवेचन है। भारतीय चिन्तन प्रणाली में सांख्य दर्शन सृष्टि के निर्माण में प्रकृति एवं पुरुष दो सत्ता को प्रमुख कारण मानता है। ये दोनों स्वाधीन सत्ताएं हैं परन्तु उनमें संयोग की क्षमता है एवं इसी संयोग से विकास आरम्भ होता है। सांख्य दर्शन का एक प्रमुख, सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक सिद्धांत सत्कार्यवाद है इस सिद्धांत के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि अपने उद्भव के पूर्व प्रकृति में ही अव्यक्त रूप में अवस्थित वर्तमान रहता है। यह मानता है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि कार्यरूप पदार्थों से बनी है और इस कार्यरूप पदार्थों के मूल में निश्चित ही कोई कोई कारण रूप मूल तत्व विद्यमान है जिसके संयोग से उनकी उत्पत्ति होती है। सांख्य दर्शन इसी मूल कारण को प्रकृति कहता है। प्रकृति अचेतन है और यह अचेतन प्रकृति जिस चेतन की सहायता से महदादी कार्यों को उत्पन्न करने में प्रवृत्त होती है सांख्य दर्शन का दूसरा तत्व प्रकृति है जिसे त्रिगुणात्मिका कहा गया है और जो इस विश्व का मूल कारण है। प्रकृति को प्रधान, अव्यक्त, मूल प्रकृति इत्यादि अन्यन्य नामों से भी जाना जाता है। पुरुष सांख्य दर्शन का आत्म तत्व है जो शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि से भिन्न है। वह चैतन्य स्वरूप है। सांख्य दर्शन में पुरुष का स्वरूप आत्मा से पर्याप्त साम्य रखता है। इसे प्रकृति के विपरीत बताया गया है। पुरुष शुद्ध चैतन्यस्वरूप है और सभी अवस्थाओं में चैतन्ययुक्त रहता है। यह प्रकृति के विपरीत निर्गुण स्वरूप है। यह ज्ञाता और विषयी है। पुरुष नित्य तथा अपरिणामी है। पुरुष की सत्ता स्वतःसिद्ध है और इसका निषेध करना असम्भव है क्योंकि इसका निषेध करने वाला निषेधकर्ता स्वयं पुरुष का ही स्वरूप है।

सांख्य सिद्धांत का दर्जा तत्व विज्ञान की दृष्टि से बहुत ऊंचा है। वास्तव में सृष्टि के निर्माण में प्रकृति का विकास किस प्रकार हुआ है इसकी विवेचना कपिल ने जिस सूक्ष्म दृष्टि से किया है वह सराहनीय है। सांख्य दर्शन वास्तव में मनोवैज्ञानिक दर्शन है इसके तत्व स्थूल नहीं हैं हमारे बौद्धिक जगत के तत्व हैं इस जगत में केवल सूक्ष्म तत्व हैं उनके संबंध में विचार सूक्ष्म है अतः जिसमें जितनी बुद्धि होती है वह उतना ही सूक्ष्म विचार कर सकता है।

---

## 1.8 अभ्यास प्रश्न

---

1. ब्रह्मान्दिक वास्तविकता के आधार भूत तत्व के रूप में प्रकृति और पुरुष की अवधारणा का वर्णन कीजिए।
2. प्रकृति और पुरुष सम्बन्धित विभिन्न विशेषताओं को चिन्हित कीजिए।
3. प्रकृति और पुरुष के परस्पर सम्बन्ध की विवेचना कीजिए।
4. प्रकृति और पुरुष के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिए।

---

## 1.9 चर्चा के बिंदु

---

1. सांख्य दर्शन के प्रमुख सिद्धांत सत्कार्यवाद की चर्चा कीजिये।
2. सांख्य दर्शन के अतिरिक्त प्रकृति-पुरुष की व्याख्या और किन ग्रंथों में मिलता है इस पर विचार कीजिए।

---

## 1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

1. सांख्य दर्शन के प्रमुख एवं वैज्ञानिक सिद्धांत सत्कार्यवाद के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि अपने उद्भव के पूर्व प्रकृति में ही अव्यक्त रूप में अवस्थित/ वर्तमान रहता है।
2. सांख्य दर्शन के अनुसार दृश्यमान जगत दो स्वतंत्र तत्वों— पुरुष और प्रकृति से मिलकर निर्मित हुई है।

3. सत्व, रजस एवं तमस् – इन तीनों गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं।
4. असत्य
5. सत्य
6. असत्य
7. प्रकृति को प्रधान, अव्यक्त, मूल प्रकृति इत्यादि अन्यन्य नामों से भी जाना जाता है।
8. प्रकृति को अनाश्रित कहा जाता है क्योंकि प्रकृति की उत्पत्ति का कोई कारण नहीं है। प्रकृति का कोई कार्य नहीं है जिस पर वह आश्रित रहे।
9. सत्य
10. असत्य

---

### 1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

1. गैरोला, वाचस्पति (2009) ; भारतीय दर्शन, पंचम संस्करण. इलाहाबाद : लोक भारती प्रकाशन.
2. तिवारी, नरेश प्रसाद (2009) ; भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य दर्शन, तृतीय संशोधित एवं परिवर्तित संस्करण. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स एवं प्राइवेट लिमिटेड.
3. सिन्हा, डॉ० हरेंद्र प्रसाद (2012) ; धर्म दर्शन की रूपरेखा, संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशक प्राइवेट लिमिटेड.
4. सिन्हा, जदुनाथ (2014) ; भारतीय दर्शन, पंचम पुनर्मुद्रण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड.
5. चट्टोपाध्याय, श्री सतीश चंद्र एवं श्री धीरेंद्र मोहन दत्त (2014)य भारतीय दर्शन, नवीन संस्करण. पटना : पुस्तक भंडार पब्लिशिंग हाउस.
6. सिंह, डॉ० बी० एन० (2016) ; भारतीय दर्शन की समस्याएं, और समकालीन दर्शन तृतीय संस्करण. वाराणसी ; आशा प्रकाशन.
7. महर्षि चरक रचितचरक संहिता, बनारस, भार्गवपुस्तकालय
8. महर्षि सुश्रुत रचित सुश्रुत संहिता, (niimh.nic.in/e पर उपलब्ध)

---

## इकाई –02 व्यैक्तिक प्रकृति के आधारभूत तत्व के रूप में बुद्धि और अहंकार का सम्प्रत्यय

---

### इकाई की संरचना

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 इकाई के उद्देश्य
- 2.3 सृष्टि विकास क्रम में बुद्धि और अहंकार का स्थान
- 2.4 बुद्धि का सम्प्रत्यय
- 2.5 अहंकार का सम्प्रत्यय
- 2.6 सारांश
- 2.7 अभ्यास के प्रश्न
- 2.8 चर्चा के बिंदु
- 2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

### 2.1 प्रस्तावना

---

भारतीय दर्शन सृष्टि विकास क्रम पर अनूठी व्याख्या प्रस्तुत करता है। सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि का विकास प्रकृति एवं पुरुष के संयोग से होती है। इसके अनुसार पुरुष कारण और कार्य से परे है किन्तु विकास का निमित्त कारण और प्रयोजन कारण दोनों है। पुरुष बिना प्रकृति के सहयोग के सृष्टि नहीं होती है। साथ ही सृष्टि की रचना ही पुरुष के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए होती है। पुरुष निष्क्रिय, तटस्थ तथा निर्गुण है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है तथा पुरुष के लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए ही कार्य करती है। प्रकृति निमित्त तथा उपादान कारण दोनों है। इन्हीं के संयोग से महत्, अहंकार इत्यादि तत्वों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सांख्य का विकासवाद प्रकृति एवं चौबीस तत्वों का खेल है प्रकृति समस्त संसार की मूलावस्था है। प्रकृति का व्यक्त रूप कि परिणति यह संसार है। प्रस्तुत इकाई में हम बुद्धि और अहंकार के सम्प्रत्यय का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

---

### 2.2 इकाई के उद्देश्य

---

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि –

- सृष्टि के विकास के क्रम की व्याख्या प्रस्तुत कर सकेंगे।
- बुद्धि एवं अहंकार तत्वों के उद्भव की समझ विकसित कर सकेंगे।
- सृष्टि के विकास के क्रम में बुद्धि और अहंकार के महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे।
- बुद्धि और अहंकार की विभिन्न विशेषताओं को चिन्हित कर सकेंगे।
- बुद्धि और अहंकार के परस्पर सम्बन्ध की विवेचना कर सकेंगे।
- अहंकार के विविध अनुभागों की व्याख्या कर सकेंगे।

---

### 2.3 सृष्टि विकास क्रम में बुद्धि और अहंकार का स्थान

---

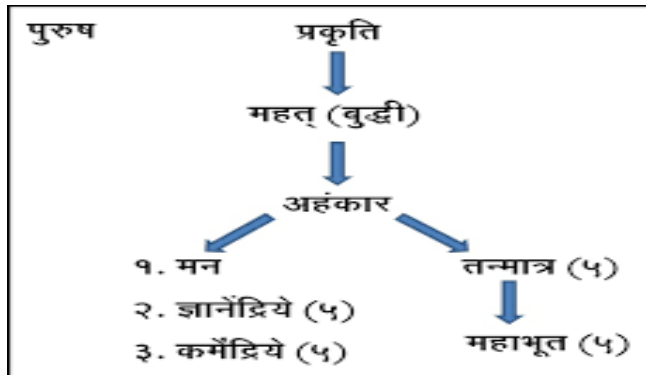
सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिरु प्रकृतेर्महान,  
महतोऽहंकारोऽहंकारात् पंचतन्मात्राण्युभयमिनिन्द्रियं  
तन्मात्रेभ्यः स्थूल भूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः॥ (६१)

### (सांख्य दर्शन, प्रथम अध्याय, ६१)

प्रकृति पुरुष के संयोग से संसार का विकास करती है। सम्पूर्ण जगत् के मूल का कारण प्रकृति है। सत्त्व रज तम मूल प्रकृति के तीन गुण हैं जो किसी समय साम्यावस्था में रहते हैं और कभी विषम अवस्था में। सृष्टि के पूर्व प्रकृति के सभी गुण साम्यावस्था में रहते हैं। गुणों की सम्मिलित मात्रा न घट सकती है न बढ़ सकती है। प्रकृति और पुरुष का सानिध्य होने पर गुणों की साम्यावस्था में विकार उत्पन्न होता है। इस अवस्था में उथल-पुथल मचती है। प्रकृति के तीनों गुण आपस में आपस में मिलते हैं तथा उनके संयोग से सांसारिक विषय उत्पन्न होते हैं। पुरुष चेतन, अपरिणामी एवं नित्य है। सांख्य के अनुसार सृष्टि (संसार) की उत्पत्ति नहीं होती वरन् विकास होता है। संसार का आविर्भाव अव्यक्त कारण का व्यक्त कार्य में रुपान्तरण के परिणामस्वरूप होता है। साम्यावस्था सृष्टि के उद्घटन के पूर्व की अवस्था है। यह मूल प्रकृति तीन गुणों सत्त्व रज तम की न्यूनाधिक के कारण जगत् के विभिन्न तत्त्वों तथा नाम रूपों में प्रकट होकर विश्व-रचना करती रही है। उससे पूर्व मूल प्रकृति और पुरुष के अतिरिक्त और नहीं होता फिर जब प्रकृति में छिपा होता है तो तीनों गुणों में न्यून अधिकता होने लगती है सर्वप्रथम सत्त्वगुण की प्रधानता से महत्त्व अथवा बुद्धि तत्त्व की उत्पत्ति होती है जब बुद्धि तत्त्व में रजोगुण की प्रबलता होती है तो अहंकार की उत्पत्ति होती है अहंकार में जब तमोगुण की प्रबलता होने लगती है तो शब्द स्पर्श रूप रस तथा गन्ध की उत्पत्ति होती है जब तम की अधिकता बढ़ती है तब इन सूक्ष्म तन्मात्राओं से पांच स्थूल भूतों अर्थात् आकाश वायु अग्नि जल तथा पृथ्वी उत्पन्न होते हैं इन्हीं पांच महाभूतों के मिलने और तीनों गुणों की न्यून अधिकता के फल स्वरूप भांति भांति के स्थावर जंगम सृष्टि होती है। संसार की सभी वस्तुएं अव्यक्त अवस्था से व्यक्त अवस्था में परिलक्षित होती है। इस परिलक्षण की प्रक्रिया में सर्वप्रथम त्रिगुणत्मिका प्रकृति से महत् या बुद्धि का आविर्भाव होता है।

प्रकृति के तीनों गुण यद्यपि एक दूसरे के विरुद्ध स्वभाव वाले हैं पर वे सदा एक साथ रहते हैं उनके मिलने से ही सृष्टि की उत्पत्ति और विकास संभव होता है। इसे समझाने के लिए सांख्य के ऋषि दीपक का उदाहरण लेते हैं और कहते हैं कि जिस प्रकार तेल बत्ती और अग्नि पृथक् पृथक् पदार्थ हैं जो एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं परन्तु इन तीनों के संयोग से प्रकाश की उत्पत्ति होती है यदि इन तीनों में से एक भी ना हो तो प्रकाश का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता है इसी प्रकार सत्त्व रज तम भी विरोधी होते हुए सृष्टि निर्माण के कार्य को करते रहे हैं। इसका आशय यही है कि जब तक जगत् की स्थिति है उसके प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक जीव आत्मा में तीन गुणों का अस्तित्व अवश्य पाया जाएगा यह जीवात्मा ज्ञान द्वारा गुणों के रूप को समझकर योग द्वारा प्रयत्न करके तीनों गुणों से छुटकारा पा सकता है तब वह मुक्त पुरुष कहलाता है।

सांख्य दर्शन में वर्णित सृष्टि क्रम को इस प्रकार उल्लेखित किया जा सकता है।



#### बोध प्रश्न

##### टिप्पणी :

- (क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।
- (ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

1. सांख्य के अनुसार सृष्टि (संसार) की उत्पत्ति नहीं होती वरन विकास होता है। (सत्य/असत्य)

2. संसार की सभी वस्तुएं व्यक्त अवस्था से अव्यक्त अवस्था में परिलक्षित होती है (सत्य/असत्य)

3. मुक्त पुरुष से क्या आशय है?

## 2.4 बुद्धि का सम्प्रत्यय

सृष्टि के विकास के क्रम में सर्वप्रथम प्रकृति और पुरुष के संयोग से प्रथम तत्त्व बुद्धि या महत् तत्त्व उत्पन्न होता है।

### महदाख्यं आद्यं कार्यं तन्मनः। सांख्यसूत्र—१.७१

प्रकृति का प्रमुख कार्य महत् (बुद्धितत्त्व) है। मनन और चिंतन स्वरूप होने के कारण वह बुद्धि कहलाता है। इसका स्वरूप ही किसी विषय का मनन अथवा निश्चय करना है। विराट् बाह्य जगत् इसमें बीज रूप में निहित है। इसलिए इसे महत् कहा गया है। समष्टि रूप में इसे महत् एवं व्यष्टि रूप में इसे बुद्धि कहते हैं। व्यष्टि रूप में यह प्रत्येक व्यक्ति में बुद्धि के रूप में मौजूद है। यह प्रकृति का सूक्ष्मतम तत्त्व है जो पुरुष के चौतन्त्र्य को दर्पण के समान प्रतिबिम्बित करता है जिससे अचेतन बुद्धि चेतनवत् प्रतीत होती है और निर्गुण पुरुष ज्ञाता और भोक्ता जीव के रूप में प्रतीत होता है। महत् से अचेतन बुद्धि चेतनवत् प्रतीत होती है। पुरुष विवेकी, चेतन, अपरिणायी और ज्ञाता है। वह न ही किसी का कार्य है और न ही किसी का कारण। प्रकृति अपने कार्यों एवं परिणामों को पुरुष के सामने प्रदर्शित करती है। अतः पुरुष उनका साक्षी बनता है। पुरुष के सामने बुद्धि अपने वृत्तियों का प्रदर्शन करती है। चूँकि बुद्धि गुणात्मक है अतः कर्तव्य से युक्त है। बुद्धि के सान्निध्य के कारण पुरुष कर्ता प्रतीत मात्र होता है जबकि वास्तव में वह अकर्ता है। बुद्धि स्वयं में अचेतन है परन्तु पुरुष के सान्निध्य से चेतन प्रतीत होता है। पाप-पुण्य, सुख बुद्धि की अचेतन वृत्तियाँ हैं। यह पुरुष को स्पर्श नहीं करते। अविवेक के कारण पुरुष अपने को दुःखी मानता है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति से उत्पन्न महत् या बुद्धि ही इस संसार का बीज रूप है। इसके द्वारा ही हम सभी वस्तुओं का स्वरूप निश्चय करते हैं। इसकी प्रकृति भी त्रिगुणात्मिक है। सत्त्व, रज, और तम इसके तीन गुण हैं। धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य इत्यादि बुद्धि के सात्त्विक गुण हैं। अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्चय इसके तामसिक गुण हैं। रजोगुण प्रेरक या गति प्रदान करने वाला है। इसका कार्य सत्त्व और तम दोनों को गति प्रदान करना है। पुरुष या आत्मा के भोग का प्रधान साधन बुद्धि है। बुद्धि के कारण ही यथार्थ में अभोगी पुरुष भोक्ता बन जाता है। महत् या बुद्धि पुरुष/आत्मा के भोग का प्रधान साधन है। बुद्धि के माध्यम से ही पुरुष भोक्ता बन जाता है। बुद्धि कि सहायता से प्रकृति और पुरुष में भेद समझ पाता है।

योग सूत्र के विभूतिपाद में अंतिम सूत्र में कहा गया है कि जब बुद्धि भी इतनी विशुद्ध हो जाती है जितना की पुरुष तो मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् इति॥ ५५॥

(पतंजलि योग सूत्र विभूति पाद)

बुद्धि के द्वारा पुरुष और प्रकृति का सम्पूर्ण ज्ञान तथा उनके परस्पर भेद का भी ज्ञान सम्भव होता है। जब तब बुद्धि स्वार्थ परक उद्देश्यों तथा विशेष प्रयोजनों से रंचित रहती है तब तक हम सत्य को नहीं जान सकते। पुरुष बुद्धि को प्रकाशित करता है क्योंकि बुद्धि अत्यंत सूक्ष्म स्वरूप की है और उसमें सत्व गुण प्रचुर मात्रा में है प्रकृति के अन्य पदार्थों की अपेक्षा बुद्धि पुरुष के प्रकार को प्रतिबंधित करने के लिए सर्वाधिक अनुकूल है बुद्धि में तमोगुण सबसे न्यूनतम और सत्वगुण सबसे अधिक इसलिए इसके अंदर पारदर्शकता का गुण है। यदि बुद्धि के अंदर केवल सत्व और रजस गुण के ही अवयव रहते तो वह एक ही समय में समस्त पदार्थों को प्रकाशित कर देती परंतु तमस के अंश के कारण वह ऐसा नहीं कर सकती। बुद्धि अपने आप में तो अचेतन है किंतु ज्यों ही पुरुष द्वारा प्रकाशित होती है त्योंही वह चेतन का अंतस तत्व हो जाती है।

सांख्य के अनुसार समस्त जगत सत् प्रकृति का ही परिणाम है जैसे सूक्ष्मा अंतः करण अर्थात् बुद्धि अहंकार तथा मन प्रकृति के परिणाम है वैसे ही स्थूल आकाश इत्यादि पंचमहाभूत तथा उनका भी विशिष्ट परिणाम यह पञ्चभौतिक जगत भी प्रकृति का परिणाम है महत् तत्व अहंकार का कारण और मूल प्रकृति का कार्य है अहंकार तत्व पांच तन्मात्राओं और ग्यारह इंद्रियों का कारण है और महत्त्व का कार्य है। इसी प्रकार पांच तन्मात्राएँ आकाश इत्यादि पांच भूतों के कारण और अहंकार के कार्य है। सांख्य कारिका के अनुसार **“परतन्त्रं बुद्ध्यादी”** बुद्धि आदि व्यक्ति दूसरे पर आश्रित हैं अपने कार्य अहंकार को उत्पन्न करने में बुद्धि को प्रकृति की सहायता की आवश्यकता होती है अन्यथा की स्थिति में अहंकार को उत्पन्न नहीं कर सकती।

**अध्यवसायो बुद्धिधर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्य ।**

**सात्त्विकमेतदरूपम् तामसमस्माद्विपर्यसत् ॥ 23**

**(सांख्यकारिका)**

निश्चय अर्थात् निश्चयात्मक अथवा निश्चय करने वाला बुद्धि है। धर्म ज्ञान वैराग्य तथा ऐश्वर्य इसके सात्त्विक रूप है इसके विपरीत अर्थात् अधर्म, अज्ञान और अवैराग्य या राग तथा अनैश्वर्य इसके तामस रूप हैं त्रिगुणात्मक प्रकृति तथा पुरुष के विवेक या भेद का साक्षात्कार ही ‘ज्ञान’ है कार्य और कार्य करने वाले में भेद करने वाले में अभेद विविक्षा से अध्यवसाय या निश्चय को ही बुद्धि कहा जाता है –

**अध्यवसायो बुद्धिः । सांख्यसूत्र–२.१३ ।**

**तत्कार्यं धर्मादि । सांख्यसूत्र–२.१४ ।**

समस्त विषयों के संबंध में होने वाले पुरुष के भोग को बुद्धि संपादित करती है वही प्रकृति एवं पुरुष के सूक्ष्म वेद को प्रकट करती है इसलिए बुद्धि ही प्रधान है बुद्धि ही पुरुषार्थ का साक्षात् साधन है इसलिए वही प्रधान है पुरुष के समीप होने के कारण उसका प्रतिबिंब पड़ने से बुद्धि पुरुष सी प्रतीत होती हुई उसके समस्त विषय–भोग को संपादित करती है भोग सुख और दुख का अनुभव है वह बुद्धि से संपन्न होता है वह पुरुष को विषयों का भोग कराती है। श्रीमद्भागवत गीता में बुद्धि तत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि—

**व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।**

**बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ 2.41 ॥**

व्यवसायात्मिका निश्चय स्वभाववाली बुद्धि एक ही है। कार्य एवं अकार्य अर्थात् क्या करना चाहिए। क्या नहीं करना चाहिए ? इस प्रकार के निर्णय लेने को अध्यवसाय कहा जाता है। समस्त व्यवहारों में प्रवृत्ति का निर्णय इस बुद्धि द्वारा ही होता है, जिसे गीता में व्यवसायात्मिकता बुद्धि कहा गया है। प्रकृति के त्रिगुणात्मक होने के कारण बुद्धि या महत् भी त्रिगुणात्मक लक्षण वाला होता है। महत् या बुद्धि प्रकृति का विकार है इसमें तीनों गुण विमान रहते हैं परंतु न्यूनाधिकता के आधार पर इसके लक्षण अभिव्यक्त होते हैं तथा इस त्रिगुणात्मक लक्षण के न्यूनाधिकता का प्रभाव सृष्टि विकास क्रम में उत्पन्न बाद के तत्वों पर भी पड़ता है जिससे जीवन व्यवहार में भी बुद्धि त्रिगुणात्मक रहती है तथा उत्तर तत्वों की उत्पत्ति इस बुद्धि या महत् से होने के कारण अन्य तत्वों की वृत्तियाँ भी बुद्धि तत्व के अनुरूप ही होती हैं अतः जीवन व्यवहार में उत्तर तत्वों के आधार पर व्यवसायात्मिका बुद्धि कोई निर्णय लेती है तो वह निश्चयता भी सत्व, रज व तम से प्रभावित रहती है जिसे सात्त्विक बुद्धि, राजसिक बुद्धि या तामसिक बुद्धि कहा जाता है। श्रीमद्भागवत गीता में व्यवसायात्मिका बुद्धि के तीनों प्रकारों का वर्णन किया गया है तत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि—

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।

बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥18.30॥

जो बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति, कार्य और अकार्य, भय और अभय तथा बन्ध और मोक्ष को तत्त्वतः जानती है, वह बुद्धि सात्त्विकी है।

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।

अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥31॥

मनुष्य जिस बुद्धि के द्वारा धर्म और अधर्म को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को भी यथार्थ नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है।

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।

सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥32॥

जो तमोगुण से घिरी हुई बुद्धि अधर्म को भी 'यह धर्म है' ऐसा मान लेती है तथा इसी प्रकार अन्य सम्पूर्ण पदार्थों को भी विपरीत मान लेती है, वह बुद्धि तामसी है।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

- (क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।  
(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।
4. समष्टि रूप में महत् एवं व्यष्टि रूप में बुद्धि कहते हैं। (सत्य/असत्य)

.....  
.....  
.....

5. अध्यवसाय किसे कहते हैं ?

.....  
.....  
.....

6. बुद्धि स्वयं में .....है परन्तु पुरुष के सान्निध्य से .....प्रतीत होता है।

.....  
.....  
.....

7. सात्त्विकी बुद्धि का क्या आशय है ?

.....  
.....  
.....

### 2.5 अहंकार का संप्रत्यय

प्रकृति-पुरुष-संयोग से 'महत्' उत्पन्न होता है। महत् से अहंकार की उत्पत्ति है। अहंकार से ही सूक्ष्म स्थूल सृष्टि उत्पन्न होता है तथा इसी में क्रिया होती है, पुरुष में नहीं। पुरुष से चेतन प्राप्त कर प्रकृति सृष्टि उत्पन्न करती है इस प्रकार प्रकृति सर्वप्रथम बुद्धि या महत् उत्पन्न करती है जो सृष्टि उत्पत्ति का बीज रूप होता है इसके द्वारा कार्य व कार्य का निश्चयात्मक निर्णय लिया जाता है इस महत् से अहंकार की उत्पत्ति होती है।

## चरमो ऽहङ्कारः । सांख्यसूत्र-१.७२ ।

यह व्यक्तित्व का तत्व है। बुद्धि का 'मैं' और 'मेरा' का अभिमान ही अहंकार है। अहंकार के कारण ही पुरुष अपने को कर्ता, कामी और स्वामी अर्थात् वस्तुओं का अधिकारी समझने लगता है। यह अहंकार ही संसार के समस्त व्यवहारों का मूल है।

**प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।**

**अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ (भग. गीता, २७)**

अर्थात् जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी कर्म प्रकृति के गुणों के द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं, अहंकार के प्रभाव से मोह-ग्रस्त होकर अज्ञानी मनुष्य स्वयं को कर्ता मानने लगता है। सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं, परन्तु अहंकार के कारण से अज्ञानी मनुष्य 'मैं कर्ता हूँ' - ऐसा मानता है। सत्त्व रजस् और तमस् इन तीनों गुणों की जो साम्यावस्था है उसका नाम प्रधान या प्रकृति है उस प्रकृतिके गुणोंसे अर्थात् कार्य और करणरूप समस्त विकारों से लौकिक और शास्त्रीय सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से किये जाते हैं। परन्तु अहंकारविमूढात्मा कार्य और करण के संघातरूप शरीरमें आत्मभावकी प्रतीति का नाम अहंकार है उस अहंकार से जिसका अन्तःकरण अनेक प्रकार से मोहित हो चुका है ऐसा देहाभिमानी मनुष्य अविद्या के कारण प्रकृति के कर्मों को अपने को कर्ता मानता है।

अहंकार के कारण पुरुष प्रकृति के कार्यों से तादात्म्य अनुभव करता है। अहंकार ही अनुभवों को पुरुष तक पहुँचाता है। इसके सत्त्वगुणप्रधान होने पर सत्कर्म होते हैं, रजः प्रधान होने पर पापकर्म होते हैं तथा तमः प्रधान होने पर मोह होता है। सात्विक अहंकार से मन, पंच ज्ञानेन्द्रियों तथा पंच कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। तामस अहंकार से पंच तन्मात्राएँ होती हैं। अहंकार को दर्शनों में पतन का कारण माना गया है क्योंकि प्रायः सभी भारतीय दर्शन अनुभवगम्य आत्मा के रूप को आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं मानते। अतः 'मैं' की भावना से किया गया कार्य आत्मा के मिथ्या ज्ञान से प्रेरित है। मानव तंत्र के सभी अंग प्रकृति या भौतिक शक्ति द्वारा निर्मित होते हैं जिसमें तीन गुण-सत्त्व, रजस्, और तमस् सम्मिलित हैं। जैसे लहर समुद्र से विलग नहीं होती अपितु उसमें समाकर उसका अंश बनी रहती है, उसी प्रकार से शरीर उसी प्रकृति का अंग है जिससे इसकी रचना होती है। इस प्रकार से प्रकृति अर्थात् माया शक्ति ही संसार में होने वाले सभी कार्यकलापों की कर्ता है। तब फिर आत्मा स्वयं को कर्मों का कर्ता क्यों समझती है। इसका कारण यह है कि मिथ्या अभिमान के बोध से आत्मा भ्रम के कारण स्वयं को शरीर समझ लेती है। इसलिए उसे कर्ता होने का भ्रम हो जाता है। पारमार्थिक जगत् में अहंकारमुक्त होना चाहिए किंतु व्यावहारिक जगत् में अहंकार के बिना निर्वाह संभव नहीं है।

अहंकार के तीन प्रकार सात्विक, राजस और तामस है। सात्विक अहंकार जिसमें सत्त्वगुण की प्रधानता होती है, से 11 इन्द्रियों, 5 ज्ञानेन्द्रिय, 5 कर्मेन्द्रियां तथा 1 मन तथा तामस अहंकार से पांच तन्मात्राओं का आविर्भाव होता है। राजस अहंकार, सात्विक और तामस दोनों को प्रेरणा प्रवाहित करता है। चक्षु, श्रोत, घ्राण, रसना और त्वक् पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं जिनसे रूप, शब्द, गन्ध रस और स्पर्श का ज्ञान प्राप्त होता है। वाक्, पाणि, पायु और उपस्थ पांच कर्मेन्द्रियां जिनके कार्य वचन, ग्रहण, गमन, मल-निसरण और प्रजनन। ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों में रहने के कारण उभयात्मक है जिसका कार्य संकल्प, एवं विकल्प है। पांच तन्मात्राओं का आविर्भाव तामस अहंकार से हुआ है। तन्मात्राएँ अत्यन्त सूक्ष्म हैं अतः इनका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं होकर परोक्ष होता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध से आकाश वायु, तेज, जल पृथ्वी पंच भूत उत्पन्न होते हैं। अतः सांख्य के अनुसार सृष्टि का विकास प्रकृति से प्रारम्भ होकर तन्मात्राओं तक समाप्त हो जाता है। प्रकृति कार्य नहीं मात्र कारण है। पुरुष न तो कार्य है ना कारण यह मात्र द्रष्टा है। महत् (बुद्धि), अहंकार और तन्मात्राएँ कार्य और कारण दोनों हैं। पंचमभूत केवल कार्य है, कारण नहीं। अहंकार - महत् या बुद्धि से अहंकार उत्पन्न होता है। अहंकार तीन प्रकार के होते हैं :

1. **सात्विक**— इसमें सत्त्व गुण प्रधान होता है। विश्व रूप में यह मन, पांच ज्ञानेन्द्रियों (आंख, कान, नाक, जीभ, तथा त्वचा) तथा पांच कर्मेन्द्रियों (मुख, हाथ, पैर, मलद्वार तथा जननेन्द्रिय) को उत्पन्न करता है। व्यष्टि रूप में यह अच्छे कर्म उत्पन्न करता है।
2. **तामस**— इसमें तमोगुण प्रधान होता है। विश्व रूप में यह पञ्च तन्मात्राओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध) को उत्पन्न करता है। व्यष्टि अथवा मनोवैज्ञानिक रूप से यह आलस्य, प्रमाद, तथा उदासीनता उत्पन्न करता है।

3. **राजस**— इसमें रजोगुण की प्रधानता रहती है। विश्व रूप में यह सात्विक और तामसिक गुणों को शक्ति प्रदान करता है। यह सात्विक तथा तामस को गति प्रदान करता है। व्यष्टि रूप में यह बुरे या अशुभ कर्मों को उत्पन्न करता है।

**तत्रैवज्जातिरूपवित्तवृत्तबुद्धिशीलवि॥भिजनवयोवीर्यप्रभावसम्पन्नोऽहमित्यहङ्कारः**

**(चरक संहिता, शारीरस्थानम्, पुरुषविचयशारीरं, १०)**

अर्थात् मैं इस जाति का हूँ, मैं रूपवान हूँ, मैं धनी हूँ, मैं बुद्धिमान हूँ, मैं वि॥वान हूँ, मैं शक्तिशाली हूँ, मेरा कुल उत्तम है, मैं युवा हूँ, आदि आदि। इस तरह का अभिमान करना अहंकार कहा जाता है मान शब्द मनु अवबोधने धातु से बना है इसका तात्पर्य यह है कि, जब अपने अस्तित्व की अनुभूति या अवबोधन होता है, तो उसे अभिमान कहा जाता है यह अभिमान पृथक्कारी होता है अर्थात् जैसे कोई व्यक्ति यह अनुभव करता है कि मैं बुद्धिमान हूँ तो वह अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा बुद्धि के अर्थ में अपने आप को सबसे पृथक् समझता है। स्वसत्ता या स्वत्व का उद्बोधन होते ही वह अपने को अव्यक्त या प्रकृति से पृथक् समझने लगता है तथा अहंकार तत्व के कारण स्वत्व आ जाने से विकास हेतु इसकी अपनी प्रवृत्ति हो जाती है इसकी उत्पत्ति त्रिगुणात्मक बुद्धि या महत से होती है, अतः अहंकार भी त्रिगुणात्मक है अहंकार तीन गुणों को पृथक् पृथक् कर सृष्टि रचना करता है यह अहंकार सात्विक से वैकारिक, राजस से तैजस और तामस से भूतादि होकर सृष्टि रचना करता है।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

- (क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।
- (ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।
8. पुरुष से चेतन प्राप्त कर प्रकृति सृष्टि उत्पन्न करती है। (सत्य/असत्य)
- .....
- .....
- .....
9. अहंकार द्वारा कार्य व कार्य का निश्चयात्मक निर्णय लिया जाता है। (सत्य/असत्य)
- .....
- .....
- .....
10. बुद्धि या महत त्रिगुणात्मक है परन्तु अहंकार त्रिगुणात्मक नहीं है। (सत्य/असत्य)
- .....
- .....
- .....
11. अहंकार कितने प्रकार के होते हैं? प्रकारों के नाम लिखिए।
- .....
- .....
- .....

### 2.6 सारांश

सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि का विकास प्रकृति एवं पुरुष के संयोग से होती है। इसके अनुसार पुरुष कारण और कार्य से परे है किन्तु विकास का निमित्त कारण और प्रयोजन कारण दोनों हैं। सत्त्व रज तम मूल प्रकृति के तीन गुण हैं जो किसी समय साम्यावस्था में रहते हैं और कभी विषम अवस्था में। साम्यावस्था सृष्टि के उद्घटन के पूर्व की अवस्था है। यह मूल प्रकृति तीन गुणों सत्त्व रज तम की न्यूनाधिक के कारण जगत के विभिन्न

तत्त्वों तथा नाम रूपों में प्रकट होकर विश्व-रचना करती रही है। उससे पूर्व मूल प्रकृति और पुरुष के अतिरिक्त और नहीं होता फिर जब प्रकृति में छिपा होता है तो तीनों गुणों में न्यून अधिकता होने लगती है सर्वप्रथम सतोगुण की प्रधानता से महत्व अथवा बुद्धि तत्त्व की उत्पत्ति होती है। इसप्रकार प्रकृति का प्रमुख कार्य महत (बुद्धितत्त्व) है। मनन और चिंतन स्वरूप होने के कारण वह बुद्धि कहलाता है। इसका स्वरूप ही किसी विषय का मनन अथवा निश्चय करना है। विराट बाह्य जगत् इसमें बीज रूप में निहित है। इसलिए इसे महत कहा गया है जब बुद्धि तत्त्व में रजोगुण की प्रबलता होती है तो अहंकार की उत्पन्न होती उत्पत्ति होती है अहंकार में जब तमोगुण की प्रबलता होने लगती है तो शब्द स्पर्श रूप रस तथा गन्ध की उत्पत्ति होती है। जब तम की अधिकता बढ़ती है तब इन सूक्ष्म तन्मात्राओं से पांच स्थूल भूतों अर्थात् आकाश वायु अग्नि जल तथा पृथ्वी उत्पन्न होते हैं इन्हीं पांच महाभूतों के मिलने और तीनों गुणों की न्यू नाधिकता के फल स्वरूप सृष्टि का विकास होता है।

---

## 2.7 अभ्यास के प्रश्न

---

1. सृष्टि के विकास के क्रम की व्याख्या कीजिये।
2. बुद्धि एवं अहंकार तत्त्वों के उद्भव की चर्चा कीजिये।
3. सृष्टि के विकास के क्रम में बुद्धि और अहंकार के महत्व का विश्लेषण कीजिये।
4. बुद्धि और अहंकार की विभिन्न विशेषताओं को चिन्हित कीजिये।
5. बुद्धि और अहंकार के परस्पर सम्बन्ध की विवेचना कीजिये
6. अहंकार के विविध अनुभागों की विस्तृत व्याख्या कीजिये।

---

## 2.8 चर्चा के बिंदु

---

1. बुद्धि की प्रमुख विशेषताओं पर चर्चा कीजिए।
2. भगवत् गीता में सात्त्विक बुद्धि के क्या लक्षण बताए गए हैं, शिक्षार्थियों को संकलित करने एवं उस चर्चा विचार विमर्श कीजिए।
3. सृष्टि विकास क्रम में अहंकार के प्रयोजन का चर्चा के माध्यम से विश्लेषण कीजिए।

---

## 2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

1. सत्य
2. असत्य
3. जब तक जगत् की स्थिति है उसके प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक जीव आत्मा में तीन गुणों का अस्तित्व अवश्य पाया जाएगा यह जीवात्मा ज्ञान द्वारा गुणों के रूप को समझकर योग द्वारा प्रयत्न करके तीनों गुणों से छुटकारा पा सकता है तब वह मुक्त पुरुष कहलाता है।
4. सत्य
5. कार्य एवं अकार्य अर्थात् क्या करना चाहिए। क्या नहीं करना चाहिए ? इस प्रकार के निर्णय लेने को अध्यवसाय कहा जाता है।
6. अचेतन, चेतन
7. जो बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति, कार्य और अकार्य, भय और अभय तथा बन्ध और मोक्ष को तत्त्वतः जानती है, वह बुद्धि सात्त्विकी है।
8. सत्य
9. असत्य
10. असत्य

11. अहंकार तीन प्रकार के होते हैं :

1. सात्विक 2. तामस 3. राजस

---

## 2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

1. मिश्र, आद्याप्रसाद (1956), सांख्यतत्व कौमुदी—प्रभा, सत्य प्रकाशन मंदिर, प्रयाग.
2. पातंजलयोगप्रदीप (1979), गोरखपुर गीता प्रेस
3. शास्त्री, राकेश (1998), श्री ईश्वरकृष्ण विरचित सांख्य कारिका, दिल्ली, संस्कृत ग्रन्थागार
4. शर्मा, श्रीराम (2002), सांख्यदर्शन, बरेली, संस्कृत संस्थान
5. गैरोला, वाचस्पति (2009) ; भारतीय दर्शन, पंचम संस्करण. इलाहाबाद: लोक भारती प्रकाशन.
6. तिवारी, नरेश प्रसाद (2009) ; भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य दर्शन, तृतीय संशोधित एवं परिवर्तित संस्करण. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स एवं प्राइवेट लिमिटेड.
7. शर्मा, श्रीराम (2011), सांख्य एवं योगदर्शन, मथुरा, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि
8. सिन्हा, डॉ० हरेंद्र प्रसाद (2012) ; धर्म दर्शन की रूपरेखा, संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशक प्राइवेट लिमिटेड.
9. सिन्हा, जदुनाथ (2014) ; भारतीय दर्शन, पंचम पुनर्मुद्रण. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड.
10. चट्टोपाध्याय, श्री सतीश चंद्र एवं श्री धीरेंद्र मोहन दत्त (2014) ; भारतीय दर्शन, नवीन संस्करण. पटना : पुस्तक भंडार पब्लिशिंग हाउस.
11. सिंह, डॉ० बी० एन० (2016) ; भारतीय दर्शन की समस्याएं, और समकालीन दर्शन तृतीय संस्करण. वाराणसी : आशा प्रकाशन.
12. राधाकृष्णन (2022), भारतीय दर्शन, दिल्ली, राजपाल एंड सन्ज
13. हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 1। प्रकाशक : नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी। संकलन : भारत डिस्कवरी पुस्तकालय। पृष्ठ संख्या : 316—17
14. महर्षि चरक रचितचरक संहिता, बनारस, भार्गव पुस्तकालय
15. महर्षि सुश्रुत रचित सुश्रुत संहिता, (niimh.nic.in/e पर उपलब्ध)

---

## इकाई – 03 अहंकार के अनुभाग—मन (मस्तिष्क), कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, तन्मात्रा (सूक्ष्म शरीर)

---

### इकाई की संरचना

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 इकाई के उद्देश्य
- 3.3 अहंकार के अनुभाग
- 3.4 मन (मस्तिष्क)
- 3.5 कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय एवं तन्मात्रा (सूक्ष्म शरीर)
- 3.6 सारांश
- 3.7 अभ्यास प्रश्न
- 3.8 चर्चा के बिंदु
- 3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 3.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

### 3.1 प्रस्तावना

हम पहले की इकाई में अध्ययन कर चुके हैं प्रकृति और पुरुष दो अनादि तत्व हैं। प्रकृति सक्रिय परन्तु अचेतन है जबकि पुरुष निसक्रिय लेकिन चेतन है। प्रकृति पुरुष के प्रयोजनों की सिद्धि हेतु कार्यरत रहती है। प्रकृति पुरुष के भोग के लिए जगत रूप में प्रकट होती हैं सत्य, रज और तम इन तीनों गुणों की साम्यावस्था प्रकृति है। प्रकृति के ये तीनों गुण जिस समय साम्यावस्था में रहते हैं। उस समय जगत का कोई रूप दृष्टिगोचर नहीं होता है। जब ये तीन गुण विषम स्थिति में आने लगते हैं। तब सृष्टि की उत्पत्ति आरम्भ हो जाती है। अव्यक्त प्रकृति से सर्वप्रथम बुद्धि उत्पन्न हुई बुद्धि से अहंकार, अहंकार से पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय पांच तन्मानायें उत्पन्न हुई। उसके पश्चात् तन्मात्राओं से आकाश, वायु, अग्नि, जल पृथ्वी में पंचभूत उत्पन्न हुए।

इस प्रकार, प्रकृति व पुरुष के संयोग से त्रिगुणात्मक प्रकृति से सर्वप्रथम बुद्धित्व (महन्तत्व) की उत्पत्ति है बुद्धितत्व से 'अहंकार का प्रादुर्भाव होता है। प्रस्तुत इकाई में हम अहंकार के विविध अनुभागों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

---

### 3.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि

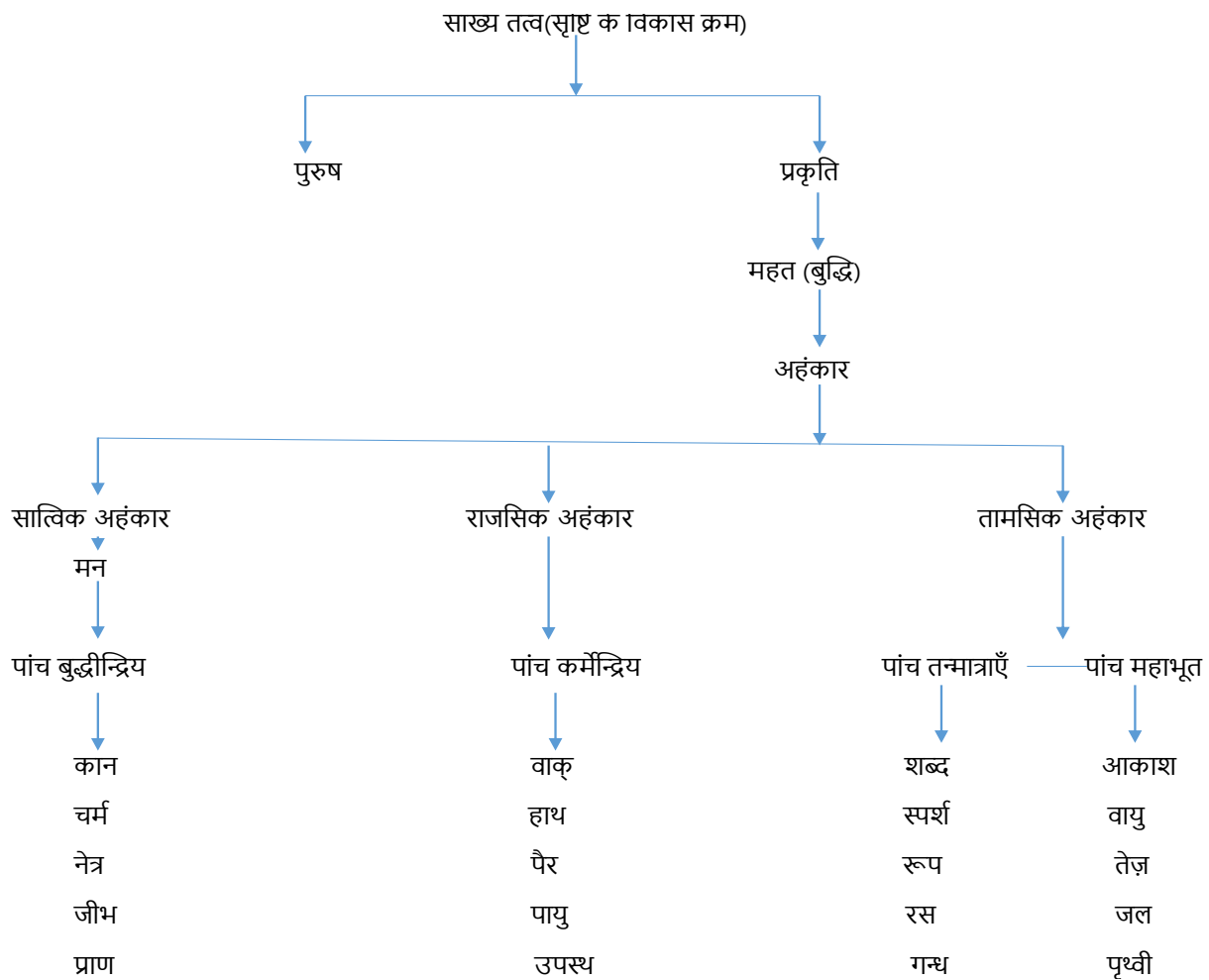
1. सृष्टि के विकास के क्रम में अहंकार के विविध अनुभागों की व्याख्या कर सकेंगे।
2. सृष्टि के विकास में अहंकार के स्थान को अपने शब्दों में बता सकेंगे।
3. अहंकार के विविध अनुभागों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
4. कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय व तन्मात्रा की उत्पत्ति का कारण बता सकेंगे।

---

### 3.3 अहंकार के अनुभाग

बुद्धितत्व में जब अवस्थिति रजोगुण प्रबल होती है तो अहंकार की उत्पत्ति होती है। इसी कारण अहंकार को बुद्धि का विकार माना जाता है। क्योंकि बुद्धितत्व की भाँति अहंकार में सत्व, रज और तम तीनों गुण वर्तमान रहते हैं, इसलिए सात्विक राजस और तामस, दृष्टि से अहंकार के तीन प्रभेद होते हैं। जिस अहंकार में सात्विक गुण की प्रधानता होती है उसे 'वैकृत', जिसमें तमोगुण की प्रधानता होती है उस 'भूतादि' और जिसमें रजोगुण की प्रधानता होती है उसे 'तैजस' कहते हैं। सात्विक अहंकार से ग्याहर इन्द्रियों (पाँच इन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और एक

मन) की उत्पत्ति होती है। तामस अहंकार से पाँच तन्मात्राओं की सृष्टि होती है।



### बोध प्रश्न

**टिप्पणी :** (क) नीचे दिये हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. अहंकार के कितने प्रभेद हैं और कौन-कौन से प्रभेद हैं?

.....

.....

.....

2. सात्विक, राजस और तामस गुणों की प्रधानता वाले अहंकार को किन नामों से जाना जाता है ?

.....

.....

.....

3. सात्विक अहंकार और तामस अहंकार किनकी उत्पत्ति होती है ?

.....

### 3.4 मन (मस्तिष्क)

सृष्टि क्रम में अव्यक्त पृथ्वी से महत्त्व की उत्पत्ति हुई है महत्त्व से अहंकार की, अहंकार से मन उत्पन्न हुआ जो पंचभूत और शब्द आदि के गुण स्वरूप है मन से 5 महाभूत उत्पन्न हुए यह मानसी सृष्टि, सृष्टि विकास क्रम का चतुर्थ सर्गसोपान है। प्रेरणा देने के तत्व को बुद्धि कहते हैं। “मैं” की भावना जो तत्व करें उसे अहंकार कहते हैं तथा संकल्प करने की वृत्ति को मन कहते हैं यह तीनों मिलकर अंतःकरण कहलाते हैं पांच कर्मेन्द्रियों और पांच ज्ञानेन्द्रियों को मिलाकर दस वाह्य करण होते हैं स इन्द्रियों के साथ मन का तालमेल होने पर ही वे अपने विषयों करने से सक्षम होती हैं, क्योंकि अनेक बार हम कोई वस्तु देख रहे होते हैं, कोई बात सुन रहे होते हैं, किन्तु मन की अन्यत्र स्थिति होने से वह हमें दिखाई नहीं देती, सुनाई नहीं देती इससे यह सिद्ध होता है कि मन में अधिष्ठित होने पर ही इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्यों को करने में सक्षम होती हैं। मन संकल्पात्मक होता है (मनरु संकल्पम) य इन्द्रियाँ अपने – अपने विषय के ज्ञान को ‘कुछ है’ इस रूप में ‘निर्विकल्पक’ रूप में ग्रहण करती हैं। संकल्प –विकल्प द्वारा मन उस ज्ञान को सविकल्पक बनाता है।

उपरोक्त एकादश इन्द्रियों में मन को उभयात्मक (ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय) कहा गया है। (उभयात्मकमत्र मन : सङ्कल्पमिन्द्रियं च साधर्म्यात्, सांख्यकारिका, 27) एवं (उभयात्मकं च मनः, सांख्यसूत्र-२.२६) ज्ञानेन्द्रिय के साथ कार्य करने से वह ज्ञानेन्द्रिय का रूप धारण कर लेता है और कर्मेन्द्रिय के साथ कार्य करते समय वह कर्मेन्द्रिय के समान हो जाता है। यह सात्विक अहंकार से उत्पन्न आंतरिक इन्द्रिय है। इसका सहयोग ज्ञान और कर्म के लिए आवश्यक है। इसके अभाव में ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय अपने विषयों को ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं। यही अन्य इन्द्रियों को उनके विषयों की ओर प्रेरित करता है। यह सूक्ष्म होते हुए भी सावयव है और अनेक इन्द्रियों के साथ एक साथ संयुक्त हो सकता है। ज्ञानेन्द्रियां तथा कर्मेन्द्रियां बाह्यकरण हैं। मन, बुद्धि और अहंकार अंतःकरण हैं। संकल्प और विकल्प उसके विषय हैं, कर्म है, स्वरूप है। किसी कार्य को किया जाय या न किया जाय इसको संकल्प-विकल्प कहते हैं, जो मन की क्रिया है। यह सात्विक अहंकार से उत्पन्न आंतरिक इन्द्रिय है। इसका सहयोग ज्ञान और कर्म के लिए आवश्यक है। इसके अभाव में ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय अपने विषयों को ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं। यही अन्य इन्द्रियों को उनके विषयों की ओर प्रेरित करता है। यह सूक्ष्म होते हुए भी सावयव है और अनेक इन्द्रियों के साथ एक साथ संयुक्त हो सकता है।

अव्यक्ताच्च महानात्मा समुत्पद्यति पार्थिव।

प्रथमं सर्गमित्येतदाहुः प्राधानिकं बुधाः॥

महतश्चाप्यहंकार उत्पद्यति नराधिप।

द्वितीयं सर्गमित्याहुरेतद्बुद्ध्यात्मकं स्मृतम्॥

अहंकाराच्च संभूतं मनो भूतगुणात्मकम्।

तृतीयः सर्ग इत्येष आहंकारिक उच्यते॥

—(महाभारत, शान्ति पर्व, अध्याय ३१५ श्लोक १६-१८)

महाभारत के शांति पर्व में सांख्य की सृष्टिविकास का सुंदर वर्णन मिलता है इन्द्रिय विषयों से जुड़ी होती हैं और मन इन्द्रियों से और इस पूरी यंत्रावली का संचालन बुद्धि करती है इन्द्रियों से जुड़ा होने के कारण मन स्थिर होता है मन को जो सूचना प्राप्त होती है बुद्धि उसके आधार पर निर्णय लेती है साथ ही साथ के तीन गुणों के अनुपात के अनुसार बुद्धि की अवस्था भी परिवर्तित होती रहती है। सात्विक से तामसिक के स्तर पर।

पुरुष सूक्त के अनुसार इस विराट पुरुष के मन से चंद्रमा की उत्पत्ति हुई है "चंद्रमा मनसो जातः"

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) नीचे दिये हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

4. अंतःकरण से आप क्या समझते हैं ?

.....

.....

.....

5. "उभयात्मकमत्र मनः" को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

6. मन के अभाव में ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय अपने विषयों को ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं।(सत्य/असत्य)

.....

.....

.....

7. मन तामसिक अहंकार से उत्पन्न आंतरिक इंद्रिय है।(सत्य/असत्य)

.....

.....

.....

8. इंद्रिय विषयों से जुड़ी होती हैं और मन इंद्रियों से और इस पूरी यंत्रावली का संचालन.....करती है।

.....

.....

.....

### 3.5 कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय एवं तन्मात्रा (सूक्ष्म शरीर)

सृष्टि विकास के क्रम में सात्विक अहंकार से मन के साथ ही पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और पांच कर्मेन्द्रिया अर्थात् कुल ग्यारह इन्द्रिया उत्पन्न होती है। (एकादश पञ्चतन्मात्रं तत्कार्यं सांख्यसूत्र-२.१७) सत्व गुण की प्रधानता वाले अहंकार को वैकृत के नाम से जाना जाता है वैकृत अर्थात् विकार को प्राप्त हुए अहंकार से एकादश इन्द्रियां प्रवृत्त होती है। (सात्विकं एकादशकं प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात् , सांख्यसूत्र-२.१८) छ इंद्रियों का कारण अहंकार है इंद्रियां अहंकार द्वारा उत्पन्न हुई है इसलिए अहंकारी कहीं जाती हैं इंद्रियों का भूतों के द्वारा प्रकट होना सिद्ध नहीं होता इस कारण यह भौतिक नहीं हो सकती क्योंकि जब इंद्रियों का प्राकट्य हुआ तब तक पंच भूतों की सत्ता ही प्रत्यक्ष रूप में नहीं हुई थी तब ऐसी स्थिति में इंद्रियों का प्राकृतिक भूतों के द्वारा किस प्रकार माना जा सकता है। (आहङ्कारिकत्वश्रुतेः न भौतिकानि। सांख्यसूत्र-२.२०) छ सांख्य सूत्र के साथ ही सांख्य कारिका में इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया

अभिमानोऽहंकारः तस्माद्विविधरूपं प्रवर्तते सर्गः।

एकादशकश्च गणस्तन्मात्रपञ्चकश्चौव ॥ २४ ॥

सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहंकारात् ।

भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम् ॥ २५ ॥

बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनत्वगाख्यानि ।

वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाण्याहुः ॥ २६ ॥

जैसा की पूर्व में भी चर्चा हुई है कि (क) सात्त्विक (ख) तैजस (ग) तामस अथवा भूतादि अहंकार के तीन स्वरूपों है। इसमें सात्त्विक अहंकार से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन ये कुल ग्यारह इन्द्रियाँ उत्पन्न होती है। (कर्मेन्द्रिय बुद्धीन्द्रियैरान्तरमेकादशकं, सांख्यसूत्र-२.१६)। ज्ञान की साधक होने से इन्हें 'ज्ञानेन्द्रिय' कहा जाता है। इसकी संख्या पाँच है – नेत्रेन्द्रिय, श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय तथा त्वगिन्द्रिय जो क्रमशः रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श आदि विषयों को ग्रहण करती है। ये ज्ञानेन्द्रियाँ क्रमशः आँख, कान, नाक, जीभ और खाल में निवास करती है। इनका केवल अनुमान के द्वारा होता है, कभी प्रत्यक्ष नहीं होता।

सात्त्विक अहंकार से उत्पन्न होने वाली कर्मेन्द्रियों संख्या भी पाँच है – वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ ये क्रमशः मुख, हाथ, पैर, मलद्वार तथा जननेन्द्रिय में निवास करती हैं तथा बोलना, किसी वस्तु को पकड़ना, चलना, मल बाहर निकालना तथा सन्तान उत्पन्न करना एवं आनन्द प्रदान करना क्रमशः इन कार्यों को सम्पन्न करती है।

### तन्मात्राएँ

'तन्मात्र' शब्द का अर्थ है 'तदेव इति तन्मात्रम्' अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों के जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पाँच विषय हैं वे ही पाँच तन्मात्राएँ हैं, किन्तु ज्ञानेन्द्रियों की अपेक्षा तन्मात्राओं में कुछ विशेषता होती है, अन्यथा उनकी आवश्यकता को ज्ञानेन्द्रियाँ ही पूरा कर लेती। जिसमें तमोगुण प्रधानता रहती है, उस तामस अहंकार से ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति। तन्मात्र से अभिप्राय है – सूक्ष्मतत्त्व। अर्थात् सूक्ष्म-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पाँच तन्मात्र तामस अहंकार से उत्पन्न होते हैं। अत्यन्त सूक्ष्म होने से इनका ज्ञान केवल अनुमान प्रमाण द्वारा होता है।

अहंकार में जो तामस अंश होता है उससे पाँच तन्मात्राओं की अभिव्यक्ति होती है। वे तन्मात्राएँ इतनी सूक्ष्म हैं कि उनका प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। अनुमान के द्वारा ही उनको जाना जा सकता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँच तत्त्व अहंकार से उत्पन्न होते हैं, किन्तु वे स्थूल हैं उनसे जो पाँच तन्मात्राएँ अभिव्यक्त हैं वे 'अविशेष' और सूक्ष्म हैं। तन्मात्राओं के परस्पर योग से पाँच स्थूल महाभूतों की उत्पत्ति होती है। जैसे –

1. 'शब्दमात्र' से शब्द गुण वाले 'आकाश' की
2. शब्द एवं स्पर्श तन्मात्र से वायु की
3. शब्द-स्पर्श और रूपतन्मात्र से अग्नि (तेज) की
4. शब्द-स्पर्श-रूप और रस तन्मात्राओं से जल की
5. शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध तन्मात्राओं के योग से पृथ्वी की उत्पत्ति है।

इसी कारण 'आकाश' में केवल शब्द गुण विद्यमान रहता है। 'वायु' में शब्द तथा 'अग्नि' में शब्द, स्पर्श और रूप गुण विद्यमान रहते हैं। इसी प्रकार जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस इन चारों गुणों की उपस्थिति रहती है तथा पृथिवी रूप महाभूत में पाँचों गुण – शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध विद्यमान रहते हैं। वस्तुतः ये पञ्चमहाभूत – आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन विशिष्ट (विषय रूप) गुणों को धारण करने वाले होते हैं।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) नीचे दिये हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

9. सात्त्विक अहंकार से किसकी उत्पत्ति होती है ?

---

---

---

10. किन तन्मात्राओं के संयोग से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है ?

---

---

---

11. तन्मात्रा से क्या अभिप्राय है ?

---

---

---

### 3.6 सारांश

सांख्यदर्शन के अनुसार मन ग्यारहवीं इन्द्रिय है। इसकी उत्पत्ति भी सात्त्विक अहंकार से ही मानी गयी है। ये ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों होने के कारण उभयात्मक होती है, क्योंकि इसका कार्य ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों को अनेक कार्यों में प्रवृत्त करना है।

सात्त्विक अहंकार से ही पांच ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रिय उत्पन्न होती हैं। नेत्र, श्रवण, घ्राण रसना और त्वचा ये पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं जिनसे क्रमशः रूप, रस, गंध स्पर्श और शब्द की उपलब्धि होती है। वास्तव में इंद्रियां अप्रत्यक्ष शक्ति हैं जो प्रत्यक्ष अवयवों में रहती हैं और विषयों को ग्रहण करती हैं। अर्थात् आंख इंद्रिय नहीं बल्कि देखने की शक्ति है। इस प्रकार इंद्रियां प्रत्यक्ष नहीं बल्कि अनुमान का विषय है। इसी प्रकार पांच कर्मेन्द्रियां पांच अप्रत्यक्ष शक्तियां हैं जो शरीर के इन अंगों में स्थित हैं— मुख, हाथ, पैर, मलद्वार और जननेन्द्रिय। इनसे क्रमशः ये काम होते हैं — वाक् अर्थात् बोलना, ग्रहण करना, गमन अर्थात् जाना, मल निःसारण, और जनन। वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ— ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनके द्वारा क्रमशः जो कार्य सम्पादित होते हैं उनके नाम हैं : वर्णोच्चारण, आदान, गमन, मलत्याग और सन्तानोत्पत्ति। ये दसों इन्द्रियाँ सात्त्विक अहंकार से पैदा हुई हैं। आत्मा अर्थात् पुरुष इनका अधिष्ठाता है। इन्द्रियाँ प्रत्यक्ष अवयवों में रहती हुई भी अप्रत्यक्ष रहती हैं। तामस अहंकार से पंचतन्मात्राएं उत्पन्न होती हैं। ये तन्मात्राएं रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द के सूक्ष्म तत्त्व हैं। ये पंचमहाभूत को अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश को उत्पन्न करती हैं और उनके विशिष्ट गुणों को भी उत्पन्न करती हैं। पाँच तन्मात्राओं से पाँच भूतों की स्वतन्त्र रूप से सृष्टि होती है।

### 3.7 अभ्यास प्रश्न

- सृष्टि के विकास के क्रम में अहंकार के विविध अनुभागों की व्याख्या कीजिये।
- सृष्टि के विकास के क्रम में अहंकार किसका कार्य और किसका कारण है स्पष्ट कीजिये।
- सृष्टि के विकास में अहंकार का क्या स्थान है ?
- अहंकार के विविध अनुभागों का सचित्र वर्गीकरण कीजिये।
- कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय व तन्मात्रा की उत्पत्ति का कारण बताइये।

### 3.8 चर्चा के बिंदु

1. सांख्यशास्त्र के तत्वों की चर्चा कीजिए।
2. सत्त्व, रज एवं तम अहंकार की विशेषताओं पर चिंतन कीजिए।

---

### 3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

1. अहंकार के तीन प्रभेद होते हैं। सात्विक, राजस और तामस उसके तीन प्रभेद हैं।
2. सात्विक गुण की प्रधानता वाले अहंकार को 'वैकृत', जिसमें तमोगुण की प्रधानता होती है उसे 'भूतादि' और जिसमें रजोगुण की प्रधानता होती है उसे 'तैजस' कहते हैं।
3. सात्विक अहंकार से ग्याहर इन्द्रियों (पाँच इन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और एक मन) की उत्पत्ति होती है। तामस अहंकार से पाँच तन्मात्राओं की सृष्टि होती है।
4. बुद्धि, अहंकार तथा मन, यह तीनों मिलकर अंतःकरण कहलाते हैं
5. एकादश इन्द्रियों में मन को उभयात्मक (ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय) कहा गया है। ज्ञानेन्द्रिय के साथ कार्य करने से वह ज्ञानेन्द्रिय का रूप धारण कर लेता है और कर्मेन्द्रिय के साथ कार्य करते समय वह कर्मेन्द्रिय के समान हो जाता है।
6. सत्य
7. असत्य
8. बुद्धि
9. सात्विक अहंकार से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन ये कुल ग्यारह इन्द्रियाँ उत्पन्न होती है।
10. शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध तन्मात्राओं के योग से पृथ्वी की उत्पत्ति है।
11. तमोगुण की प्रधानता वाले तामस अहंकार से पञ्चतन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। तन्मात्र से अभिप्राय है – सूक्ष्मतत्त्व अर्थात् सूक्ष्म-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पाँच तन्मात्राएँ तामस अहंकार से उत्पन्न होते हैं। अत्यन्त सूक्ष्म होने से इनका ज्ञान केवल अनुमान प्रमाण द्वारा होता है।

---

### 3.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

1. मिश्र, आद्याप्रसाद (1956), सांख्यतत्व कौमुदी-प्रभा, सत्य प्रकाशन मंदिर, प्रयाग.
2. पातंजलयोगप्रदीप (1979), गोरखपुर गीता प्रेस
3. शास्त्री, राकेश (1998), श्री ईश्वरकृष्ण विरचित सांख्य कारिका, दिल्ली, संस्कृत ग्रन्थागार
4. शर्मा, श्रीराम (2002), सांख्यदर्शन, बरेली, संस्कृत संस्थान
5. गैरोला, वाचस्पति (2009) ; भारतीय दर्शन, पंचम संस्करण. इलाहाबादरू लोक भारती प्रकाशन.
6. तिवारी, नरेश प्रसाद (2009) ; भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य दर्शन, तृतीय संशोधित एवं परिवर्तित संस्करण. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स एवं प्राइवेट लिमिटेड.
7. शर्मा, श्रीराम (2011), सांख्य एवं योगदर्शन, मथुरा, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि
8. सिन्हा, डॉ० हरेंद्र प्रसाद (2012) ; धर्म दर्शन की रूपरेखा, संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशक प्राइवेट लिमिटेड.
9. सिन्हा, जदुनाथ (2014) ; भारतीय दर्शन, पंचम पुनर्मुद्रण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड.
10. चट्टोपाध्याय, श्री सतीश चंद्र एवं श्री धीरेंद्र मोहन दत्त (2014) ; भारतीय दर्शन, नवीन संस्करण. पटना : पुस्तक भंडार पब्लिशिंग हाउस.
11. सिंह, डॉ० बी० एन० (2016) ; भारतीय दर्शन की समस्याएं, और समकालीन दर्शन तृतीय संस्करण. वाराणसी : आशा प्रकाशन.
12. राधाकृष्णन (2022), भारतीय दर्शन, दिल्ली, राजपाल एंड सन्ज

13. महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर
14. महर्षि चरक रचितचरक संहिता, बनारस, भार्गवपुस्तकालय
15. महर्षि सुश्रुत रचित सुश्रुत संहिता, (niimh.nic.in/e पर उपलब्ध)

---

## इकाई – 04 : ज्ञान की प्रकृति एवं प्रक्रिया

---

### इकाई की संरचना

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 इकाई के उद्देश्य
- 4.3 ज्ञान का सम्प्रत्यय
- 4.4 ज्ञान की प्रकृति
- 4.5 ज्ञान की प्रक्रिया
- 4.6 सारांश
- 4.7 अभ्यास के प्रश्न
- 4.8 चर्चा के बिंदु
- 4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 4.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

### 4.1 प्रस्तावना

---

हम जानते हैं कि भारतीय दर्शन में ज्ञान को ब्रह्म सत्य माना गया है। भारतीय अध्यात्मिक दर्शन के अनुसार ज्ञान मनुष्य की मुक्ति का साधन है। ज्ञान के माध्यम से मनुष्य अंधविश्वास, आडंबर, अंधकार आदि से मुक्ति प्राप्त कर अपने जीवन को अनुशासित करता है। ज्ञान का अध्ययन ज्ञान मीमांसा के अंतर्गत करते हैं। दर्शनशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य सत्य के स्वरूप को प्रकट करना है। दर्शन सभी विषयों कि जननी है। वर्तमान में जितने भी विषय या अनुशासन हैं सबका उद्गम दर्शन से ही हुआ है। अतः प्राचीन काल से ही ज्ञान और ज्ञान की प्रकृति दर्शनशास्त्र में केंद्रीय विषय रहा है। विज्ञान का सिद्धांत दर्शनशास्त्र की एक शाखा है जिसे हिंदी में ज्ञान मीमांसा और अंग्रेजी में एपिस्टेमोलॉजी (epistemology) के रूप में जाना जाता है। दर्शनशास्त्र की मुख्यतया तीन शाखाएं हैं— तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं मूल्य मीमांसा। ज्ञान मीमांसा के अंतर्गत ज्ञान की उत्पत्ति, उसकी संरचना, प्रकृति आदि का अध्ययन किया जाता है। ज्ञान मीमांसा या epistemology दो शब्दों के संयोग से बना है जहां 'एपिस्टिमो' का अर्थ है 'ज्ञान' तथा 'लागोस' का अर्थ 'विज्ञान'। अर्थात् 'एपिस्टिमोलॉजी' का अर्थ है 'ज्ञान का विज्ञान'। ज्ञान मीमांसा का अर्थ है ज्ञान के प्राप्ति कैसे होता है। अथवा ज्ञान का स्रोत क्या है। प्रस्तुत इकाई में हम ज्ञान का सम्प्रत्यय, ज्ञान की प्रकृति एवं प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

---

### 4.2 इकाई के उद्देश्य

---

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि :

1. ज्ञान की अवधारणा की व्याख्या कर सकेंगे।
2. ज्ञान के विविध परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
3. ज्ञान के स्रोतों कि विवेचना कर सकेंगे।
4. ज्ञान कि प्रकृति कि व्याख्या कर सकेंगे।
5. ज्ञान प्राप्ति के तरीकों की व्याख्या कर सकेंगे।
6. ज्ञान के विविध प्रकारों में अंतर कर सकेंगे।
7. ज्ञान के वर्गीकरण का वर्णन कर सकेंगे।

### 4.3 ज्ञान का सम्प्रत्यय

ज्ञान की एक सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है क्योंकि दर्शन की अलग अलग विचारधारा ज्ञान को अलग-अलग रूप में परिभाषित करती है फिर भी सभी विचारधाराएं यह अवश्य मानती हैं कि ज्ञान सत्य पर ही आधारित है। ज्ञान एक अनुभूति है। यह एक बौद्धिक अनुभव है। अनुभव के द्वारा अथवा स्वयं किसी क्रिया को करके जो जानकारी प्राप्त करते हैं वही ज्ञान है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही हम शिक्षा ग्रहण करते हैं। शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति है इसमें सभी विद्वान एकमत हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार सत्य और ज्ञान में कोई भेद नहीं है क्योंकि सत्य और ज्ञान एक ही है। ज्ञान भौतिक जगत से भी संबंधित है एवं आध्यात्मिक जगत से भी, ज्ञान सूक्ष्म भी है और स्थूल भी, ज्ञान सक्रिय भी है और असक्रिय भी। ज्ञान के दो पक्ष हैं—

1. प्रत्यक्ष ज्ञान
2. अप्रत्यक्ष ज्ञान

व्यक्ति जिन्हें अपने ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से ज्ञात करता है वह अप्रत्यक्ष ज्ञान के अंतर्गत आता है। भारतीय चार्वाक दर्शन इसी प्रकार के ज्ञान को सत्य ज्ञान के अंतर्गत रखता है। चार्वाक दर्शन नास्तिक दर्शन है एवं यह वास्तविक जगत को ही सत्य मानता है। यथार्थवादी दर्शन भी प्रत्यक्ष ज्ञान को ही ज्ञान मानता है मानता है

ज्ञान शब्द 'ज्ञ' धातु से बना है जिसका अर्थ 'जानना', बोध, अनुभव एवं प्रकाश है। साधारण शब्दों में कहा जाए तो कोई वस्तु वास्तविक रूप में जैसी है बिल्कुल वैसा ही अनुभव करना ज्ञान कहलाता है। अर्थात् किसी व्यक्ति या वस्तु के विषय में यथार्थ जानकारी प्राप्त करना ही ज्ञान है। जैसे यदि हमें दूर से रस्सी दिखाई देती है और पास जाने पर भी वह रस्सी दिखाई दे तो हमें यहां पर रस्सी का वास्तविक ज्ञान हुआ, परंतु यदि हम उसके पास जाने पर सर्प दिखाई दे तो यह ज्ञान गलत है। इसी प्रकार यदि हमें दूर से पानी दिखाई दे और पास जाने पर भी वहां पर पानी हो तो यह वास्तविक ज्ञान है, परंतु यदि पास जाने पर हमें रेत दिखाई दे तो यह वास्तविक ज्ञान नहीं है। ज्ञान छतरीनुमा शब्द है अर्थात् इसमें अनेक शब्द समाहित हैं। अनुमान, उपमान प्रत्यक्ष एवं शब्दों के माध्यम से हमें ज्ञान की प्राप्ति होती है। भारतीय दर्शन के अनुसार अनुमान, प्रत्यक्ष एवं शब्द के माध्यम से ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। उपमान को कुछ ने स्वीकार किया है कुछ ने स्वीकार नहीं किया है। भारतीय परंपरा के अनुसार ज्ञान जड़ नहीं अपितु प्रवाहमान है। ज्ञान दो प्रकार के होते हैं पहला वह जो कि उपलब्ध है इन्हें बार-बार प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं होती है और दूसरा वह जो कि नवीन है जिसकी पुष्टि की आवश्यकता होती है। प्लेटो के अनुसार, "विचारों की दैवीय व्यवस्था और आत्मा परमात्मा के स्वरूप को जानना ही सच्चा ज्ञान है।"

शिक्षा एक उद्देश्य पूर्ण प्रक्रिया है जिसका लक्ष्य ज्ञान प्रदान करना है। अच्छी तरह से सोच विचार कर अपने बुद्धि एवं विवेक का इस्तेमाल करके किसी कार्य को करने की क्षमता ही ज्ञान है। इस ज्ञान के माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन को उन्नत, सुव्यवस्थित एवं गतिशील बनाता है। ज्ञान की कुछ परिभाषाएं निम्नवत हैं—

बर्ट्रेड रसेल की थ्योरी ऑफ नॉलेज (1913) विभिन्न संज्ञानात्मक संबंधों (जैसे ध्यान, संवेदना, स्मृति और कल्पना) के बीच हो सकने वाले अंतरों का विश्लेषण है। रसेल बताते हैं कि कैसे ज्ञान में तार्किक या अनुभवजन्य तत्वों से परिचित होना शामिल हो सकता है। रसेल सत्य ज्ञान एवं असत्य ज्ञान के बीच अंतर तथा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ज्ञान के बीच अंतर को बताते हैं। ज्ञान की सीमा से संबंधित एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या ज्ञान उन चीजों से प्राप्त किया जा सकता है जो हमारे अपने व्यक्तिगत अनुभव से परे हैं। रसेल का तर्क है कि ऐसा पारलौकिक ज्ञान संभव है क्योंकि कुछ मामलों में हम उन चीजों का वर्णन करने में सक्षम हो सकते हैं जिसका हमने अनुभव नहीं किया है।

**चौधरी (2008) के अनुसार,** "ज्ञान मुख्य रूप से किसी संगठन के कर्मचारियों का सामूहिक अनुभव होता है।"

**क्वार्टरप (2006) के अनुसार,** ज्ञान की परिभाषा पर कोई सहमति नहीं है। हमें ध्यान देना चाहिए कि ज्ञान शब्द से अस्पष्टता उत्पन्न होती है। अधिकांश सिद्धांतों में ज्ञान की स्पष्ट, सामाजिक रूप से प्रासंगिक परिभाषा अनुपस्थित है।

**स्मिथ एंड बेबस्टर (2000) के अनुसार,** "ज्ञान वह सब कुछ है जो एक संगठन जानता है और अपने व्यवसाय को चलाने में उपयोग करता है।"

डेवेनपोर्ट और प्रुसक (1998, पृष्ठ 24) के अनुसार, "ज्ञान लोगों के दिमाग में उत्पन्न होता है और रहता है।"

फॉस्केट (1997) के अनुसार, "ज्ञान वह है जो मैं जानता हूँ सूचना वह है जिसे हम जानते हैं।"

स्टोनियर (1990) के अनुसार, "ज्ञान लोगों के दिमाग में संगठित सूचना है।"

अल्बर्ट आइंस्टीन (1979–1955) के अनुसार, "ज्ञान अनुभव है बाकी सब कुछ सिर्फ जानकारी है।"

**प्लेटो के अनुसार ज्ञान –**

1. इंद्रिय जनित ज्ञान – इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त ज्ञान।
2. अनुभवजन्य ज्ञान – अनुभव अथवा वातावरण के माध्यम से प्राप्त ज्ञान
3. चिंतन जन्य ज्ञान – संबंधित तथ्य के विश्लेषणात्मक तथा संश्लेषण तर्क एवं विचार विमर्श से प्राप्त ज्ञान ऐसा ज्ञान विश्वसनीय एवं वैध होता है।

**ज्ञान का उद्देश्य :** ज्ञान एक वृहद शब्द है जिसके उद्देश्य गूढ़ हैं। उद्देश्यों का वर्गीकरण करने पर निम्नलिखित घटकों में विभक्त किया जा सकता है।

1. समस्या समाधान की युक्ति प्रदान करना।
2. घटना या परिस्थिति की गहन समझ प्रदान करना।
3. व्यक्तिगत विकास।
4. सामाजिक विकास।
5. मानसिक विकास।
6. संवेदनात्मक विकास।
7. आध्यात्मिक विकास।
8. नैतिक विकास।
9. सूचना अथवा जानकारी को व्यवस्थित करना।
10. व्याख्या करना।
11. सिद्धांत एवं नियमों का निर्माण करना।
12. इतिहास व संस्कृति का विकास करना।

**बोध प्रश्न**

**टिप्पणी:**

(क) नीचे दिये हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. साधारण शब्दों में ज्ञान का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

2. प्लेटो के अनुसार ज्ञान के कितने प्रकार होते हैं?

.....

.....

3. ज्ञान के किन्हीं छः उद्देश्यों को लिखिए।

#### 4.4 ज्ञान की प्रकृति

ज्ञान कि प्रकृति को हम ज्ञान के अर्थ, विविध विद्वानों तथा दार्शनिकों द्वारा दिये गए परिभाषाओं एवं उसके उद्देश्यों से निकाल सकते हैं। ज्ञान की प्रकृति निम्नलिखित है –

1. ज्ञान सैद्धांतिक भी होते हैं और व्यवहारिक भी। सैद्धांतिक ज्ञान हम समय के साथ भूल सकते हैं परंतु जो व्यावहारिक ज्ञान होता है वह अधिक स्थाई होता है और जीवन के निर्वाह में इसका बहुत बड़ा योगदान होता है। जिस व्यक्ति को व्यावहारिक ज्ञान अधिक होगा वह व्यक्ति अपने जीवन को अधिक सहजता से व्यतीत कर पाएगा। ज्ञान हमें अंतर्दृष्टि प्रदान करता है जिससे आंतरिक एवं बाह्य दोनों विकास होता है।
2. ज्ञान विचारों का समूह है जो कि विषय के वास्तविक गुण से मेल खाता है। यदि यह विचारों का समूह विषय के वास्तविक गुण से मेल नहीं खाता है तो इसे हम संज्ञान नहीं कह सकते हैं। ज्ञान स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाता है। ज्ञान के माध्यम से हमारा भौतिक, सामाजिक व आध्यात्मिक विकास होता है। समय के साथ-साथ ज्ञान के स्वरूप में परिवर्तन होता है।
3. ज्ञान समय से परे है। अर्थात् समय बीतने के साथ-साथ हो सकता है कि वह उपयोगी ना रहे परंतु वह ज्ञान अभी भी रहेगा भले ही वह उपयोगी ना हो। जितना अधिक हमें ज्ञान होगा उतना अधिक हम अपनी सृष्टि या प्रकृति के साथ जुड़ते जाएंगे। यह ज्ञान विश्लेषण एवं संश्लेषण की प्रक्रिया के माध्यम से ज्ञात किया जाता है।
4. ज्ञान के माध्यम से वास्तविक प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। यह वातावरण के साथ व्यक्ति के समायोजन में सहायक होती है। व्यक्ति निरंतर अपने पुराने ज्ञान के साथ नवीन ज्ञान को जोड़ता जाता है और इस प्रकार सदैव विकास की ओर अग्रसर रहता है।
5. ज्ञान को सामान्य ज्ञान एवं विशिष्ट ज्ञान में विभाजित किया जा सकता है— सामान्य ज्ञान— भौतिक जगत से संबंधित ज्ञान को सामान्य ज्ञान कहते हैं जोकि इंद्रियों की सहायता से प्राप्त किया जाता है साथ ही कुछ सामान्य ज्ञान ऐसे भी होते हैं जिन्हें हम बिना इंद्रियों के भी ज्ञात कर सकते हैं। इसे हम आसानी से सीख सकते हैं। यह व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करता है। विशिष्ट ज्ञान के अंतर्गत आध्यात्मिक ज्ञान को रखा जाता है जो कि तर्क बुद्धि कल्पना अनुभव आदि के द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसे प्राप्त करना कठिन है। इनके साक्ष्य प्रस्तुत करना अत्यंत दुष्कर कार्य है, या यूं कहें कि इसके साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए जा सकते हैं।
6. ज्ञान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में प्राप्त किया जा सकता है। यदि हम किसी घटना, तथ्य, विषय वस्तु आदि के बारे में ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो यह ज्ञान सत्य पर आधारित होता है। अर्थात् ज्ञान सत्य पर आधारित होता है। हम ऐसा कह सकते हैं कि सत्य के माध्यम से हम ज्ञान तक पहुंच सकते हैं। ज्ञान एवं सत्य एक सिक्के के दो पहलू हैं। ज्ञान एवं सत्य एक दूसरे के पूरक है। विचार ज्ञान के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। किसी भी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भाषा का सहारा लिया जाता है। ज्ञान सुनिश्चित होता है साथ ही इसकी पुष्टि भी की जा सकती है।
7. ज्ञान सूक्ष्म भी हो सकता है और स्थूल भी, ज्ञान भौतिक भी हो सकता है आध्यात्मिक भी हो सकता है।
8. अमूर्त प्रकृति— यह शाश्वत सत्य पर आधारित होती है।
9. सामाजिक प्रकृति – मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और यह समाज में अपने ज्ञान को साझा करता है और इस प्रकार से उसके ज्ञान में निरंतर वृद्धि होती रहती है अतः ज्ञान सामाजिक गतिविधियों में व्याप्त होता

है।

10. ज्ञान की संचयी प्रकृति— ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक धीरे-धीरे बढ़ती जाती है।
11. ज्ञान सीमित भी है एवं सीमा से परे भी।
12. ज्ञान प्रेक्षक है — ज्ञान सर्वांगीण विकास करता है यह बाह्य एवं आंतरिक दोनों प्रकार से विकास करता है।
13. ज्ञान अनुभवजन्य होता है।
14. ज्ञान सदैव गतिशील होता है।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी:

(क) नीचे दिये हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

4. ज्ञान सिर्फ अनुभवजन्य होता है। (सत्य/असत्य)

.....

.....

.....

5. ज्ञान सैद्धांतिक होते हैं। (सत्य/असत्य)

.....

.....

.....

6. ज्ञान भौतिक भी हो सकता है आध्यात्मिक भी हो सकता है। (सत्य/असत्य)

.....

.....

.....

7. "ज्ञान समय से परे है" का क्या अर्थ है ?

.....

.....

.....

### 4.5 ज्ञान की प्रक्रिया

ज्ञान दो रूप से प्राप्त होता है— प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष ज्ञान हम ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से प्राप्त करते हैं। भारतीय दर्शन में प्रत्यक्ष ज्ञान को प्रमा तथा परोक्ष ज्ञान को अप्रमा कहा गया है। भारतीय दर्शन के अनुसार सभी प्रकार के दुखों का कारण अज्ञान है दूसरी ओर ज्ञान मनुष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाती है। ज्ञान वह है जो व्यक्ति को मोक्ष प्रदान करती है 'सा विद्या या विमुक्तये'। भारतीय दर्शन के अनुसार ज्ञान दो प्रकार के हैं—1. परा विद्या 2. अपरा विद्या

भौतिक ज्ञान, लौकिक ज्ञान अपरा विद्या के अंतर्गत आते हैं। इन्हें हम इंद्रियों की सहायता से प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञान का एक बहुत बड़ा भाग हमारा अपरा विद्या के अंतर्गत आता है। अपरा अर्थात् 'संसार से परे'। संसार से परे अथवा अलौकिक ज्ञान को अपरा विद्या के अंतर्गत रखा जाता है। जैसे— आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, जीवन की गति कैसे होती है, इस प्रकार के ज्ञान को हम अपरा विद्या के अंतर्गत रख सकते हैं। भारतीय

दर्शन के अनुसार इसे श्रेष्ठ ज्ञान के अंतर्गत रखा जाता है।

इसके विपरीत। *postreiori* मूलतः लैटिन भाषा का शब्द है जो कि *A priory* का विरोधी शब्द है।

ज्ञान के मुख्य दो प्रकार हैं

1. प्रागअनुभाविक ज्ञान
2. प्रायोगिक ज्ञान

प्रागअनुभाविक ज्ञान वैसे ज्ञान को कहते हैं जिसके लिए किसी अनुभव की आवश्यकता नहीं होता है, इन्हें हम तर्कों के आधार पर प्राप्त कर सकते हैं। अर्थात् आगमन तर्क एवं निगमन तर्क के आधार पर। जैसे— 4 का वर्गमूल 16 होगा, 8 का 4 गुना 32 होगा, इसके लिए हमें किसी अनुभव की आवश्यकता नहीं है। दूसरी तरफ प्रायोगिक ज्ञान इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। अर्थात् बाह्य जगत के अवलोकन के माध्यम से हम अपनी इंद्रियों से यह ज्ञान प्राप्त करते हैं।

ज्ञान के अन्य प्रकार इस प्रकार हैं—

1. आपत वचन या आधिकारिक ज्ञान
2. प्रयोग या सूझ-बूझ पर आधारित ज्ञान
3. तर्कसंगत ज्ञान
4. वैज्ञानिक ज्ञान
5. क्रियात्मक ज्ञान
6. सहजबोध अथवा अंतः प्रज्ञा
7. श्रुति ज्ञान

आधिकारिक ज्ञान उस प्रकार के ज्ञान को कहते हैं जो हमें अपने से कोई श्रेष्ठ व्यक्ति हमें प्रदान करता है और हम उस पर ही विश्वास करते हैं। उदाहरण स्वरूप— फतेहपुर सीकरी की स्थापना अकबर ने की थी, बुध एवं शुक्र के कोई उपग्रह नहीं है आदि। ज्ञान का एक बड़ा हिस्सा आपत ज्ञान से ही प्राप्त होता है। इसे ना हम खुद महसूस करते हैं अपितु दूसरों से सुन कर उस पर विश्वास करते हैं एवं उसे मानते हैं। प्रायोगिक ज्ञान ऐसे ज्ञान को कहते हैं जिसको व्यक्ति अपने सूझ-बूझ, निरीक्षण, अवलोकन आदि के आधार पर ज्ञान प्राप्त करता है। यह अपने इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होते हैं। तर्कसंगत ज्ञान इस प्रकार के ज्ञान को कहते हैं जो कि आगमन एवं निगमन तर्क पर आधारित होते हैं। तर्क के आधार पर हम अनुमान भी लगा सकते हैं कि पहले क्या हुआ होगा या भविष्य में क्या होगा। वैज्ञानिक ज्ञान इस प्रकार के ज्ञान है जिसमें हम अपने इंद्रियों एवं परीक्षणों के आधार पर या दोनों के आधार पर ज्ञान प्राप्त करते हैं इसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण योगदान होता है इसमें इंद्रियअनुभव एवं तर्क दोनों का सहारा लिया जाता है। वैज्ञानिक इसी प्रकार के ज्ञान का प्रयोग करते हैं। क्रियात्मक ज्ञान जॉन डीवी के प्रयोजनवादध्रप्रयोगवाद पर आधारित है। इसमें स्वयं करके सीखना सिखाया जाता है इसमें स्वयं करके अनुभव करके, प्रयोग या निरीक्षण के आधार पर ज्ञान प्राप्त किया जाता है। उपयोगी ज्ञान को इसमें महत्त्व प्राप्त होता है। सहजबोध या अंतरूप्रज्ञा ऐसे ज्ञान को कहा जाता है जो कि भविष्य में होने वाली घटनाओं आदि के बारे में अनुमान होता है। श्रुतिज्ञान या पौराणिक ज्ञान— इसे परंपरागत ज्ञान को या धार्मिक ग्रंथों पर आधारित ज्ञान को श्रुति ज्ञान कहते हैं। ज्ञान प्राप्त करने के तरीके के आधार पर ज्ञान के तीन विभाग हैं। इस आधार पर ज्ञान को तीन प्रमुखों के तहत वर्गीकृत किया जा सकता है।

**प्रागअनुभाविक ज्ञान :** प्रागअनुभाविक एवं अनुभवआश्रित ज्ञान *A Priory* लैटिन भाषा का शब्द है। यह अनुभव निरपेक्ष ज्ञान को समर्थन देता है। प्रागअनुभाविक ज्ञान से तात्पर्य ऐसे ज्ञान से है जिसकी सत्यता, प्रमाणिकता, स्वीकार्यता आदि अनुभव पर आश्रित नहीं है एक प्रागअनुभाविक ज्ञान वह ज्ञान है जिसकी सच्चाई या असत्यता पहले से ही बिना अनुभव का आश्रय लिए तय की जा सकती है (*a priori* या प्राग का अर्थ है 'पहले')। प्रागअनुभाविक ज्ञान की वैधता सार्वभौमिक होती है और एक बार सत्य के रूप में पहचाने जाने के बाद किसी और साक्ष्य या प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। तार्किक और गणितीय सत्य प्रकृति में एक प्रागअनुभाविक ज्ञान है।

उन्हें अनुभवजन्य सत्यापन की आवश्यकता नहीं है। प्रागनुभाविक ज्ञान वैसे ज्ञान को कहते हैं जिसके लिए किसी अनुभव की आवश्यकता नहीं होता है, इन्हें हम तर्कों के आधार पर प्राप्त कर सकते हैं। अर्थात् आगमन तर्क एवं निगमन तर्क के आधार पर। जैसे— 4 का वर्गमूल 16 होगा, 8 का 4 गुना 32 होगा, इसके लिए हमें किसी अनुभव की आवश्यकता नहीं है।

**एक पश्च ज्ञान :** *postreior* मूलतः लैटिन भाषा का शब्द है जो कि *A priory* का विलोम शब्द है। प्रागनुभाविक ज्ञान अवलोकन और अनुभव पर आधारित ज्ञान है। यह सटीक अवलोकन और सटीक विवरण पर बल देता है अतः वैज्ञानिक पद्धति का ज्ञान है। इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाले कथनों को इस दृष्टिकोण से बंद किया जा सकता है कि क्या नियोजित मानदंडों के दृष्टिकोण से उनमें कोई तथ्यात्मक सामग्री है और उनके सत्य या असत्य को तय करने के लिए उदाहरण स्वरूप, हमारे पास कथन हैं जैसेरू पानी गर्म करने पर भाप में परिवर्तित होती है और रंगहीन होती है। धातुएं गर्मी और बिजली का संचालन करती हैं। ये कथन हमें तथ्यात्मक जानकारी देते हैं जिनकी सच्चाई या असत्य का निर्णय केवल अवलोकन और सत्यापन के माध्यम से किया जा सकता है।

**अनुभवजन्य ज्ञान :** अनुभवजन्य ज्ञान हमेशा अस्थायी होता है और अनुभव से पहले मौजूद नहीं हो सकता है या अवलोकन से संचालित नहीं किया जा सकता है। ज्ञान प्राप्त करने के कई तरीके हैं। ज्ञान प्राप्त करने के कुछ प्रमुख स्रोत व्यक्तिगत अनुभव, कारण, परंपरा, अधिकार और पूछताछ हैं। कुछ अन्य स्रोत अंतर्ज्ञान, तप, तर्कवाद, रहस्योद्घाटन, विश्वास, अनुभववाद और विज्ञान हैं। ज्ञान प्राप्त करने की कुछ विधियाँ निम्नलिखित हैं—

**अंतर्ज्ञान के माध्यम से ज्ञान :** अंतर्ज्ञान मस्तिष्क में आया हुआ, एक अचानक अनुभव है। अंतः प्रज्ञा/अंतर्ज्ञान हमारे भीतर निहित एक सहज क्षमता है। जो कभी-कभार अचानक ही हमारे अंदर ज्ञान की ज्योति के रूप में उत्पन्न होती है। और हमें किसी विषय का सहज ज्ञान या प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। इस हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं य जैसे कभी-कभार हमलोग गणित के कठिन प्रश्न का उत्तर निकालने में लगे रहते हैं। अंतर्ज्ञान कई बार कोशिश के बाद भी उत्तर की प्राप्ति नहीं हो पाती। परंतु फिर कुछ घंटों या कुछ दिनों बाद अचानक हमारे दिमाग के अंदर एक प्रकाश सा उत्पन्न होता है और हमें उस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। अंतर्ज्ञान कभी-कभी परस्पर विरोधी भी होता है सम्भवतः अंतर्ज्ञान अनुभव के माध्यम से प्राप्त होता है। किसी एक ही विषय के सम्बन्ध में दो अलग अलग व्यक्तियों के अंतर्ज्ञान भिन्न भिन्न हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, आगामी दिनों के मौसम के बारे में दो लोगों के अंतर्ज्ञान अलग-अलग हो सकते हैं। हम कैसे तय करते हैं कि उस मामले में कौन सा सत्य है? कोई यह सोच सकता है कि कल बरसात का दिन होगा जबकि दूसरा यह अनुमान लगा सकता है कि कल धूप वाला दिन होगा। इस मामले में, किसी के अंतर्ज्ञान को स्वीकार करना हमेशा मुश्किल होता है। इसे अनुभव के द्वारा ही स्वीकार किया जा सकता है। फिर, अंतर्ज्ञान के माध्यम से जानना वास्तव में श्रम की व्याख्या नहीं करता है। अंतर्ज्ञान के माध्यम से प्राप्त ज्ञान को मान्य करना मुश्किल है फिर भी कई बार अंतर्ज्ञान से प्राप्त ज्ञान मान्य एवं वैध होता है। यह सत्यापन प्रक्रिया के बारे में नहीं बताता है। कई बार सहज ज्ञान को बाद में सत्य के रूप में मान्य किया जाता है। उदाहरण के लिए, वैज्ञानिक जांच (आर्किमिडीज सिद्धांत), जो एक अंतर्ज्ञान था, को बाद में सत्य के रूप में मान्य किया गया था। इस प्रकार अंतर्ज्ञान ज्ञान प्राप्त करने का एक तरीका है। किसी तथ्य को अपने मन में पा जाना अंतः प्रज्ञा है। इस ज्ञान पर हमारा पूर्ण विश्वास होता है। इसको किसी तर्क की आवश्यकता नहीं होती। न ही हमें इसकी निश्चितता या वैदता पर कोई होता है। अंतः दृष्टि ज्ञान प्राप्त करने का ऐसा साधन है जिसका उल्लेख दार्शनिकों द्वारा किया गया है। अंतः दृष्टि प्रतिभाशाली लोगों को अकस्मात् ही अनुभव हो जाता है। जैसे उदाहरण के लिए, महात्मा बुद्ध को बोधि वृक्ष के नीचे बैठ कर ज्ञान प्राप्त हुआ। एक बिजली की कौंध की तरह ऐसा ज्ञान मस्तिष्क में अचानक ही उदय हो जाता है।

**प्रभुत्व के माध्यम से ज्ञान :** बच्चे अपने प्रारम्भिक जीवन से ही घर, विद्यालय और समुदाय तथा समाज से विभिन्न ज्ञान प्राप्त करते हैं। वे अपने माता-पिता, घर के बड़े-बुजुर्गों, शिक्षकों/ध्याचार्यों, धार्मिक और सामाजिक नेताओं से जो कुछ भी सुनते हैं, वह उनके लिए ज्ञान है। हम कह सकते हैं कि जिस किसी के सम्पर्क में बच्चे आते हैं वह उसके लिए ज्ञान का स्रोत बन जाता है। लेकिन प्राधिकरण से ज्ञान प्राप्त करने के मामले में कुछ सावधानियों की आवश्यकता होती है। जिस व्यक्ति से हम ज्ञान प्राप्त करते हैं वह वास्तव में एक अधिकारी होना चाहिए या अपने ज्ञान के क्षेत्र में विशेषज्ञ होना चाहिए। फिर से, प्राधिकरण के स्रोत से प्राप्त ज्ञान को मान्य करने

के लिए सत्यापन तंत्र उपलब्ध होना चाहिए। इस साधन के उपयोग में भी यही कमी है कि हम उनके विचारों से इतना प्रभावित न हों कि हमारा स्वतन्त्र चिन्तन ही समाप्त हो जाये। हम इतने अन्धविश्वासी न हो जायें कि ज्ञान से विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाये।

**दृढ़ आस्था के माध्यम से ज्ञान :** दृढ़ आस्था एक ऐसी चीज है, जो मनोवैज्ञानिक रूप से लोगों को इसे स्वीकार करने के लिए मजबूर करती है। आपने विभिन्न राजनीतिक दलों के नारे, विभिन्न व्यावसायिक उत्पादों के विज्ञापन और किसी चीज के लिए बार-बार किये जाने वाले प्रचार को देखा होगा। जब इस तरह की बातें कई बार मीडिया में दोहराई जाती हैं जैसे अखबारों, टेलीविजन या रैलियों में तो लोग उन्हें सच मान लेते हैं। लेकिन दृढ़ आस्था के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने में समस्या यह है कि हम नहीं जानते कि किया गया दावा सही है या नहीं, और हम यह भी नहीं जानते कि प्राप्त ज्ञान की पुष्टि कब की जा सकती है।

**तर्क के माध्यम से ज्ञान :** प्रायः सभी प्रकार के ज्ञान हमें ज्ञानेंद्रियां से प्राप्त नहीं होते बल्कि कुछ ज्ञान हमें तर्क बुद्धि के माध्यम से भी प्राप्त होते हैं। तर्क बुद्धि मनुष्य के अंदर मौजूद एक ऐसी क्षमता है जिसके बिना कोई भी ज्ञान प्राप्त कर पाना संभव नहीं है। यह हमारे अंदर अवधारणाओं के निर्माण करने और उनके आधार पर वस्तुओं में अंतर करने की क्षमता विकसित करती है। तर्क एक मानसिक प्रक्रिया है और हमारा अधिकांश तर्क पर आधारित होता है। तर्क द्वारा हम अनुभव से प्राप्त ज्ञान की संवेदनाओं को संगठित करके संपूर्ण ज्ञान का निर्माण करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि तर्क अनुभव पर कार्य करता है और उसे ज्ञान में परिवर्तित करता है। तर्क अनुमान को प्रायः दो प्रकार का माना गया है — निगमनात्मक तथा आगमनात्मक तर्क।

**निगमनात्मक तर्क** — तर्क की जिस प्रक्रिया में एक या अधिक ज्ञात सामान्य कथनों के आधार पर किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है। जैसे— सभी मनुष्य मरणशील हैं। राम एक मनुष्य है। अतः राम भी मरणशील है। निगमनात्मक तर्क में, निष्कर्ष तार्किक रूप से परिसर से अनुसरण करता है। यदि परिसर सत्य है, तो जो निष्कर्ष निकलता है वह सत्य होना चाहिए। उदाहरण के लिए रुक रुक यदि बारिश हो रही है, तो सड़कें गीली हैं। बरस गया बादल का पानी। इसलिए सड़कें गीली होंगी।

**आगमनात्मक तर्क** — तर्क के जिस प्रक्रिया में एकांकी कथनों को आपस में जोड़ कर अधिक व्यापक कथन का निर्माण किया जाता है। आगमनात्मक तर्क में, परिसर निष्कर्ष के लिए साक्ष्य प्रदान करता है। उदाहरण के लिए लोहा गर्मी और बिजली का संचालन करता है। कॉपर गर्मी और बिजली का संचालन करता है। एल्युमीनियम गर्मी और बिजली का संचालन करता है। (और इसी तरह सभी धातुओं के लिए)। इसलिए, सभी धातुएं गर्मी और बिजली का संचालन करती हैं। इस मामले में, आगमनात्मक तर्क के संदर्भ में तथ्य सही है, लेकिन यह गलत भी हो सकता है। धातु हो सकती है। जो गर्मी और बिजली का संचालन नहीं करती है।

दोनों प्रकार के तर्कों में तर्क और तर्क के माध्यम से ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इसलिए, हम निगमनात्मक और आगमनात्मक तर्क के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करते हैं।

**इन्द्रियअनुभव के माध्यम से ज्ञान :** अवलोकन और अनुभवों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया को अनुभववाद कहा जाता है। मनुष्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही संसार की वस्तुओं सम्पर्क में आता है। जब कोई वस्तु हमारे सम्पर्क में आती है तो वह एक संवेदना उत्पन्न करती यह संवेदना ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजना मिलने के ही कारण होती है। यह संवेदना वस्तु का इ प्रदान करती है। इन संवेदनाओं का अर्थ प्रदान हो जाता है और अब हमें वस्तु का प्रत्यक्षीकरण जाता है। यह प्रत्यक्षीकरण हमें उस वस्तु की जानकारी देते हैं। वैज्ञानिक प्रयोग, सत्यापन, पुनः सत्यापन, परीक्षण आदि के माध्यम से हमें जो ज्ञान प्राप्त होता है वह अनुभवजन्य ज्ञान पर आधारित होता है। वैज्ञानिक जांच के व्यवस्थित तरीकों के माध्यम से वैज्ञानिक रूप से अनुभवजन्य ज्ञान प्राप्त किया जाता है। फिर से देखने, सुनने, चखने, सूँघने और छूने आदि जैसी संवेदी प्रक्रियाओं के माध्यम से हम जो ज्ञान प्राप्त करते हैं, वह अनुभववाद के माध्यम से ज्ञान के उदाहरण हैं। अनुभवजन्य ज्ञान सर्वोत्तम ज्ञान है जिसका परीक्षण, सत्यापन, अवलोकन, प्रयोग किया जा सकता है और अनुभव भी किया जा सकता है। यहां अंतर्निहित शर्तें यह हैं कि सत्यापन की प्रक्रिया वस्तुनिष्ठ और व्यवस्थित होनी चाहिए। यदि जांच में त्रुटि है, तो ज्ञान का सत्यापन संभव नहीं हो सकता है।

आस्था के माध्यम से ज्ञान रूप हमारी आस्था और विश्वास कभी-कभी ज्ञान प्राप्त करने का आधार बन जाता है। बहुत बार हम कहते हैं कि, मैं इसमें विश्वास करता हूँ, यह काम करेगा, मैं इसे विश्वास के माध्यम से

जानता हूँ, मुझे इसमें विश्वास है, इसलिए यह सच होना चाहिए, और मैं इसे विश्वास के माध्यम से मानता हूँ, और यह विश्वास मुझे ज्ञान देता है। अंतर्ज्ञान की तरह, यहाँ भी वही कठिनाई उत्पन्न होती है। लोगों का अलग-अलग चीजों में विश्वास होता है और जिन चीजों को वे विश्वास के माध्यम से जानने का दावा करते हैं वे अक्सर एक दूसरे के साथ संघर्ष करते हैं। आस्था किसी ऐसी चीज में दृढ़ विश्वास है जिसका कोई प्रमाण नहीं है।

बोध प्रश्न

**टिप्पणी:**

(क) नीचे दिये हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

8. भारतीय दर्शन के अनुसार ज्ञान कौन दो प्रकार हैं ?

.....

.....

9. प्रागअनुभाविक ज्ञान किसे कहते हैं ?

.....

.....

10. आधिकारिक ज्ञान का क्या अर्थ है?

.....

.....

## 4.6 सारांश

प्राचीन काल से ही ज्ञान और ज्ञान की प्रकृति दर्शनशास्त्र में केंद्रीय विषय रहा है। 'ज्ञान का सिद्धांत' दर्शनशास्त्र की एक शाखा है जिसे हिंदी में ज्ञान मीमांसा और अंग्रेजी में एपिस्टेमोलॉजी (Epistemology) के रूप में जाना जाता है। ज्ञान मीमांसा के अंतर्गत ज्ञान की उत्पत्ति, उसकी संरचना, प्रकृति आदि का अध्ययन किया जाता है। ज्ञान शब्द 'ज्ञ' धातु से बना है जिसका अर्थ 'जानना', बोध, अनुभव एवं प्रकाश है। साधारण शब्दों में कहा जाए तो कोई वस्तु वास्तविक रूप में जैसी है बिल्कुल वैसा ही अनुभव करना ज्ञान कहलाता है। अर्थात् किसी व्यक्ति या वस्तु के विषय में यथार्थ जानकारी प्राप्त करना ही ज्ञान है।

ज्ञान दो रूप से प्राप्त होता है— प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष ज्ञान हम ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से प्राप्त करते हैं। भारतीय दर्शन में प्रत्यक्ष ज्ञान को प्रमा तथा परोक्ष ज्ञान को अप्रमा कहा गया है। भारतीय दर्शन के अनुसार सभी प्रकार के दुखों का कारण अज्ञान है दूसरी ओर ज्ञान मनुष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाती है। ज्ञान वह है जो व्यक्ति को मोक्ष प्रदान करती है 'सा विद्या या विमुक्तये'। भारतीय दर्शन के अनुसार ज्ञान दो प्रकार के हैं—1. परा विद्या, 2 . अपरा विद्या

भौतिक ज्ञान, लौकिक ज्ञान अपरा विद्या के अंतर्गत आते हैं। इन्हें हम इंद्रियों की सहायता से प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञान का एक बहुत बड़ा भाग हमारा अपरा विद्या के अंतर्गत आता है। अपरा अर्थात् 'संसार से परे'। संसार से परे अथवा अलौकिक ज्ञान को अपरा विद्या के अंतर्गत रखा जाता है। जैसे— आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, जीवन की गति कैसे होती है, इस प्रकार के ज्ञान को हम अपरा विद्या के अंतर्गत रख सकते हैं।

ज्ञान प्राप्त करने के कई तरीके हैं। ज्ञान प्राप्त करने के कुछ प्रमुख स्रोत व्यक्तिगत अनुभव, कारण, परंपरा, अधिकार और पूछताछ हैं। कुछ अन्य स्रोत अंतर्ज्ञान, तप, तर्कवाद, रहस्योद्घाटन, विश्वास, अनुभववाद और विज्ञान हैं।

---

#### 4.07 अभ्यास के प्रश्न

---

1. ज्ञान की अवधारणा की व्याख्या अपने शब्दों में कीजिए।
2. ज्ञान के स्रोतों की विस्तार से विवेचना कीजिए।
3. ज्ञान के विविध परिभाषाओं का विश्लेषण कीजिए।
4. ज्ञान की प्रकृति की व्याख्या कीजिए।
5. ज्ञान प्राप्ति के तरीकों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
6. ज्ञान के विविध प्रकारों में अंतर को उदाहरण सहित बताइये।

---

#### 2.8 चर्चा के बिंदु

---

1. भारतीय चिंतन के ज्ञान की अवधारणा पर परिचर्चा कीजिए।
2. "ज्ञान प्राप्ति की सबसे वैध विधि कौन सी है" इस विषय पर शिक्षार्थियों के मंतव्य प्राप्त कीजिए।

---

#### 4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

1. साधारण शब्दों में कोई वस्तु वास्तविक रूप में जैसी है बिल्कुल वैसा ही अनुभव करना अर्थात् किसी व्यक्ति या वस्तु के विषय में यथार्थ जानकारी प्राप्त करना ज्ञान कहलाता है।
2. प्लेटो के अनुसार ज्ञान के तीन प्रकार होते हैं
  - (i) इंद्रिय जनित ज्ञान— इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त ज्ञान।
  - (ii) अनुभवजन्य ज्ञान— अनुभव अथवा वातावरण के माध्यम से प्राप्त ज्ञान
  - (iii) चिंतन जन्य ज्ञान— संबंधित तथ्य के विश्लेषणात्मक तथा संश्लेषण तर्क एवं विचार विमर्श से प्राप्त ज्ञान ऐसा ज्ञान विश्वसनीय एवं वैध होता है।
3. ज्ञान के छः निम्नलिखित उद्देश्य हैं।
  - (1) घटना या परिस्थिति की गहन समझ प्रदान करना।
  - (2) व्यक्तिगत विकास।
  - (3) सामाजिक विकास।
  - (4) मानसिक विकास।
  - (5) संवेदनात्मक विकास।
  - (6) आध्यात्मिक विकास।
4. असत्य
5. असत्य
6. सत्य
7. ज्ञान समय से परे है अर्थात् समय बीतने के साथ-साथ हो सकता है कि वह उपयोगी ना रहे परंतु वह ज्ञान सदैव रहेगा भले ही वह उपयोगी ना हो।
8. भारतीय दर्शन के अनुसार ज्ञान दो प्रकार हैं—1. परा विद्या और 2. अपरा विद्या
9. प्रागअनुभाविक ज्ञान वह जिसके लिए किसी अनुभव की आवश्यकता नहीं होता है, इन्हें हम तर्कों के आधार पर प्राप्त कर सकते हैं।

10. आधिकारिक ज्ञान उस प्रकार के ज्ञान को कहते हैं जो हमें अपने से कोई श्रेष्ठ व्यक्ति हमें प्रदान करता है और हम उस पर ही विश्वास करते हैं।

---

#### 4.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

1. जोएसी, ब्रूसी, आर. एवं वेल मार्श (1986), जुरिस प्रड्युंशल इंकवायरी मॉडल, इन मॉडलस ऑफ टीचिंग, तृतीय संस्करण, बोस्टन एम एरू एलन एंड वॉकन।
2. रुसल. बी., (1992). ह्यूमन नॉलेज : इट्स स्कोप एंड लिमिट्स. लंदन : राउटलॉज।
3. स्किफलर, आई. (1999) इपीसटमॉलॉजी एंड एजुकेशन इन मैक कॉर्ननिक, आर. एवं पिश्टर, सी. (संपा). लर्निंग एंड नॉलेज, लंदन : सेज।
4. ट्रयूनसीलिटो. डी. ए. (2007). इपीसटमॉलॉजी, इंटरनेट इंसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलोसफी, वेबसाइट <http://www.iep.utm.edu/epistemo/> से 2 मई 2012 को लिया गया है।
5. इग्नू (2007). इकाई 5, कंसेप्ट एंड नेचर ऑफ नालेज, इन नालेज इन एजुकेशन (खंड 2). (एमईएस 012, एजुकेशनल नेचर एंड परपजस), नई दिल्ली : इग्नू।
6. इग्नू (2007). इकाई 2, नॉलेज जनरेशन : हिस्ट्रिकल पर्सपेक्टिव- 1- इन पर्सपेक्टिव ऑफ नालेज, खंड 1). (एमईएस 016 , एजुकेशनल रिसर्च), नई दिल्ली : इग्नू।
7. गैरोला, वाचस्पति (2009) ; भारतीय दर्शन, पंचम संस्करण. इलाहाबाद : लोक भारती प्रकाशन।
8. तिवारी, नरेश प्रसाद (2009) ; भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य दर्शन, तृतीय संशोधित एवं परिवर्तित संस्करण. नई दिल्ली मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स एवं प्राइवेट लिमिटेड।
9. तिवारी, नरेश प्रसाद (2009)य भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य दर्शन, तृतीय संशोधित एवं परिवर्तित संस्करण. नई दिल्लीरू मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स एवं प्राइवेट लिमिटेड।
10. सिन्हा, डॉ० हरेंद्र प्रसाद (2012)य धर्म दर्शन की रूपरेखा, संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण. नई दिल्लीरू मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशक प्राइवेट लिमिटेड।
11. हीदरइंगटो, एस. (2012). नालेज, इंटरनेट इंसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलोसफी, वेबसाइट <http://www.iep.utm.edu/epistemo/> से 3 मई 2012 को लिया गया है।
12. सिन्हा, जदुनाथ (2014) ; भारतीय दर्शन, पंचम पुनर्मुद्रण. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।
13. चट्टोपाध्याय, श्री सतीश चंद्र एवं श्री धीरेंद्र मोहन दत्त (2014) ; भारतीय दर्शन, नवीन संस्करण. पटना : पुस्तक भंडार पब्लिशिंग हाउस।
14. सिंह, डॉ० बी० एन० (2016) ; भारतीय दर्शन की समस्याएं, और समकालीन दर्शन तृतीय संस्करण. वाराणसी : आशा प्रकाशन।

---

## योग का दर्शन और व्यक्तिगत तथा सामाजिक उन्नयन में इसका सम्बन्ध

---

### खण्ड परिचय

योग दर्शन छः आस्तिक दर्शन में से एक है। इसे षड्दर्शन के नाम से के नाम से भी जानते हैं। यह दर्शन सांख्य दर्शन के पूरक के रूप में भी जाना जाता है। इस दर्शन का प्रमुख लक्ष्य मनुष्य को वह मार्ग दिखाता है जिसपर चल कर मनुष्य परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। अन्यान्य दर्शनों की भाँति योग दर्शन तत्त्व मीमांसा में न उलझकर मोक्ष प्राप्ति के उपाय बताने वाले दर्शन की प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत खण्ड 2 को चार इकाईयों में विभक्त कर उसका प्रस्तुतीकरण किया गया है।

### इकाई — 5

सभी भारतीय धर्मों और दर्शनों से योगशास्त्र का अटूट सम्बन्ध है। प्रत्येक व्यक्ति के उसके लक्ष्य तक पहुँचने के लिए इनमें सर्वत्र अपनी-अपनी योगविधि निर्धारित की गयी है। चित्त की वृत्तियों या इंद्रियों की आसक्ति का निरोध करना पातंजलि योग सूत्र के अनुसार समाधि या योग है। योग शब्द की उत्पत्ति 'युज' या 'युजिर' धातु से हुई है जिसका आशय जोड़, मेल, मिलाप, एकता, एकत्र, अवस्थिति आदि से लगाया जाता है जिसका अर्थ सम्मिलित करना अथवा एक होना है।

सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित योग एक आध्यात्मिक विषय है जिसके उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नयन के साथ-साथ, वैज्ञानिक भी हैं। यही कारण है कि योग का एक नाम सेश्वरवाद है। एक आध्यात्मिक विषय के रूप में योग वह माध्यम है जो शरीर एवं मन के मध्य सामंजस्य स्थापित करते हुए व्यक्ति को ईश्वर के साथ जोड़ता है। यदि व्यावहारिक रूप में योग को देखा जाए तो यह वह कला है जो व्यक्ति को जीवन जीने का ढंग सिखाती है साथ ही योग विज्ञान भी है जो स्वस्थ जीवन जीने की ओर अग्रसित करती है।

प्रस्तुत अध्याय में हमने योग के विभिन्न अर्थों के साथ योग के लिए दी गयी भिन्न-भिन्न परिभाषाओं का अध्ययन किया। योग जिसकी उत्पत्ति संस्कृत भाषा के युजिर धातु से हुई है, का अर्थ अत्यंत विशद और व्यापक है। शाब्दिक अर्थ के रूप में हम योग का आशय बाँधना, युक्त करना, जोड़ना, सम्मिलित करना यहीं तक सीमित नहीं है। योग का आशय उस एकीकरण से है जहाँ जीवात्मा तथा परमात्मा का एकीकरण अथवा मनुष्य के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं या पक्षों जैसे शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, आध्यात्मिक आदि का सम्मिलन हो जाता है। योग वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति के ज्ञान-चक्षु खुलते हैं और वह अपने अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करते हुए विवेकवान बनता है।

प्रस्तुत इकाई में योग का अर्थ, वेदों, श्रीमद्भागवतगीता, उपनिषदों, पुराणों, विभिन्न धर्मों और दर्शनों तथा विद्वानों के अनुसार दी गई परिभाषाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है।

### इकाई — 6

योग कोई व्यवस्था नहीं अपितु एक अवस्था है। इसलिए योगसूत्र का आरंभ करते हुए महर्षि पतंजलि लिखते हैं कि "अथ योगानुशासनम्" अर्थात् अब योग किया जाता है, अथवा मैं योग का अभ्यास करने जा रहा/रही हूँ।

सही अर्थों में योग जीवन जीने का एक तरीका है। यह व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक तथा आध्यात्मिक रूप से अनुशासित रखने का एक माध्यम है। जैसा कि महर्षि पतंजलि द्वारा लिखा गया है तथा जिनका उल्लेख इस अध्याय के प्रारंभ में किया गया है कि योग एक प्रकार का अनुशासन है जिसके द्वारा शारीरिक या दैहिक स्वास्थ्य संबंधी लाभ प्राप्त करना न्यून स्तर का लाभ है। योग का अंतिम तथा वास्तविक लक्ष्य समाधि की स्थिति की प्राप्ति है जो मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है जो लगभग सभी भारतीय दर्शनों का अंतिम लक्ष्य है।

वर्तमान समय में जहाँ प्रत्येक व्यक्ति भौतिकता के पीछे भाग रहा है। उसे लगता है कि जीवन को सुखी बनाने के लिए पैसे आवश्यक हैं और पैसे के बल पर हर प्रकार के सुख और शांति को प्राप्त किया जा सकता है और एस हेतु वह ऐसी प्रतिस्पर्धा में लगा है जिसका कोई भी अंत नहीं है। यह भाग-दौड़ भरी जिंदगी, यह

गतिशीलता उसमें रजस गुणों को अत्यधिक बढ़ा दे रही हैं और इसकी तुलना में अन्य गुणों विशेषकर सत्व गुणों की कमी होती जा रही है जिससे व्यक्ति का जीवन असंतुलित हो रहा है। सत्व गुण शांति, सामंजस्य, स्थिरता, सौम्यता, सृजन से संबंधित है वहीं राजस गुण वेग तथा गतिविधि तथा तमस गुण निष्क्रियता और अकर्मण्यता से संबंधित कहे जा सकते हैं। ऐसे में गुणों का असंतुलन व्यक्ति को शारीरिक तथा मानसिक रूप से असंतुलित बना देता है और व्यक्ति के जीवन से तारतम्यता समाप्त हो जाती है।

योग आत्म-नियंत्रण के माध्यम से मुख्य रूप से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीन स्तरों पर सामंजस्य बनाए रखने और इष्टतम कामकाज को प्राप्त करके पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करने का एक तरीका है। योग क्रिया, आसन और प्राणायाम योग के भौतिक आधार हैं। योगसाधना आंतरिक स्वास्थ्य और सद्भाव को बढ़ावा देती है और यह कई सामान्य बीमारियों को रोकने और ठीक करने और शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनाव को खत्म करने में मदद करती है और व्यक्ति को एक स्वस्थ तथा एकीकृत जीवन प्रदान करती है।

प्रस्तुत इकाई में आधुनिक जीवन में स्वास्थ्य की संकल्पना, स्वास्थ्य जीवन की आवश्यकताएँ, स्वास्थ्य पर योग अभ्यासों का प्रभाव, स्वास्थ्य के सम्बन्ध में योग के उद्देश्य तथा योग द्वारा स्वस्थ तथा एकीकृत जीवन की प्राप्ति जैसे कई प्रत्ययों का विवेचन किया गया है।

## इकाई – 7

योग अत्यंत प्राचीन समय से ही भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। योग मात्र हमारी अमूल्य विरासत ही नहीं बल्कि स्वास्थ्यलाभ हेतु एक अनमोल उपहार भी है जो मनुष्य को जीवन जीने की कला भी सिखाता है यह मात्र व्यायाम करने का ही का एक तरीका मात्र ही नहीं बल्कि वह कला भी है जो मनुष्य के जीवन को आनंदमय भी बनाता है। योग के मात्र एक अंग को देखते हुए सम्पूर्ण योग की व्याख्या कर दी जाती है या इसे ही सम्पूर्ण योग मान लेते हैं। योग को मात्र साँस लेने का तरीका या शरीर को मात्र विशेष रूप से मोड़ने या बैठने तक ही सीमित कर देते हैं। जबकि योग का अर्थ है जुड़ना अथवा जोड़ना। वस्तुतः योग वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने शरीर को अपनी आत्मा से जोड़ पाता है और शरीर तथा आत्मा के एक-दूसरे से जुड़ जाने के पश्चात् यह दो अलग नहीं रह जाते हैं।

प्रस्तुत पाठ मानव के सामाजिक तथा नैतिक उन्नयन में योग की भूमिका से संबंधित है ऐसे में पहले यह समझ लेना आवश्यक है कि सामाजिक तथा नैतिक शब्दों के क्या अर्थ हैं ? सामाजिक शब्द समाज से बना है तथा नैतिक शब्द की उत्पत्ति नीति शब्द से हुई है। अतः सामाजिक तथा नैतिक शब्दों को समझने के लिए पहले समाज तथा नीति शब्द के क्या अर्थ हैं, उसका वर्णन करना आवश्यक है।

मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी कहते हैं परन्तु जब एक बच्चा जन्म लेता है उस समय वह ना तो सामाजिक होता है और ना ही असामाजिक। उसमें सामाजिकता का विकास समाज में रहने के फलस्वरूप होता है। ऐसे कई उदाहरण हमें मिल जाते हैं जिनमें समाज में न रहने के कारण बच्चों में सामाजिकता का विकास या अन्य शब्दों में कहें तो मानवीय गुणों का विकास हो ही नहीं पाया और उन बच्चों का व्यवहार या आदतें पशुवत रहीं। अर्थात् हम समाज को एक ऐसे विद्यालय की संज्ञा दे सकते हैं जो मनुष्यों को सही अर्थों में मनुष्य बनाता है यानि मानवीय मूल्यों के विकास में सहयोग देता है।

इस इकाई में मानव के सामाजिक एवं नैतिक उन्नयन तथा सामाजिक एवं नैतिक उन्नयन में योग की भूमिका का विस्तृत व्याख्या की गई है।

## इकाई – 8

आध्यात्मिक उन्नति के विषय में जानने से पहले यह जानना आवश्यक है कि अध्यात्म क्या है? अध्यात्म शब्द दैनिक बोलचाल में प्रयुक्त होने वाला एक शब्द है जिससे हम सभी भलीभांति परिचित हैं। यदि इस शब्द का अर्थ हमसे पूछा जाए तो हम अध्यात्म का अर्थ 'ईश्वर' या 'ईश्वर संबंधी' से लेते हैं। परन्तु इसका अर्थ इससे अलग कुछ अधिक गुह्य तथा रहस्यमय है। अध्यात्म शब्द को सही रूप में वही समझ पाते हैं जो उच्चतर प्रज्ञा और कठोर साधना में संलग्न होते हैं। यदि अध्यात्म शब्द की व्युत्पत्ति को देखें तो आत्मानि-इति-विग्रह के द्वारा अव्ययीभाव समास करके 'अध्यातमम्' शब्द की निष्पत्ति होती है, जिसका अर्थ 'आत्मा में स्थित' होता है। 'आत्मन्' शब्द की सप्तमी विभक्ति में एकवचन में 'आत्मनि' शब्द बनता है और अव्यय का 'इति'— 'अधि' शब्द के रूप में 'सामासिक

सूत्र' में परिवर्तित होता है। इसका सही अर्थ है— 'आत्मा में स्थित'। 'अध्यात्म' शब्द के मूल में आत्मन् शब्द नित्य पुल्लिङ्ग है, जिसका रूप 'आत्मा' है।

योग के द्वारा व्यक्ति को आध्यात्मिक उन्नति, आत्मानुभूति, प्रत्यक्षानुभूति की प्राप्ति होती है। योग बतलाता है कि ब्रह्म या ईश्वर जब आत्मा से अलग नहीं है तब ईश्वर या ब्रह्म को जानने के लिए हमें अपनी आत्मा की ओर जाना होगा। और फिर आध्यात्मिक उन्नति, आत्मानुभूति तथा प्रत्यक्षानुभूति जैसी स्थितियों की प्राप्ति के लिए मन का एकाग्र होना परमावश्यक है। व्यक्ति को सारी इंद्रियों, मन, अहंकार, बुद्धि को बाह्य जगत से मोड़कर अपने अंदर अवस्थित करना होगा। स्वयं को या ईश्वर को कहीं और नहीं स्वयं में ढूँढना होगा। व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति तथा आत्मानुभूति होने के साथ ही प्रत्यक्षानुभूति या अपरोक्षानुभूति हो जाती है।

इस इकाई के अन्तर्गत आध्यात्मिक उन्नति, आत्मानुभूति तथा प्रत्यक्षानुभूति में योग की क्या भूमिका है। इसका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

---

## इकाई — 05 योग—अर्थ व परिभाषाएँ

---

### इकाई की संरचना

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 इकाई के उद्देश्य
- 5.3 योग का अर्थ
- 5.4 योग की विभिन्न परिभाषाएँ
  - 5.4.1 वेदों में योग की परिभाषाएँ
  - 5.4.2 श्रीमद्भागवतगीता में योग की परिभाषाएँ
  - 5.4.3 विभिन्न उपनिषदों में योग की परिभाषाएँ
  - 5.4.4 विभिन्न पुराणों में योग की परिभाषाएँ
  - 5.4.5 विभिन्न धर्मों और दर्शनों में योग की परिभाषाएँ
  - 5.4.6 अन्य विद्वानों के अनुसार योग की कुछ अन्य परिभाषाएँ
- 5.5 सारांश
- 5.6 अभ्यास के प्रश्न
- 5.7 चर्चा के बिंदु
- 5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

### 5.1 प्रस्तावना

---

योग का शाब्दिक अर्थ है जुड़ना या जोड़ना। वस्तुतः सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित योग एक आध्यात्मिक विषय है जिसके उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नयन के साथ-साथ, वैज्ञानिक भी हैं। यही कारण है कि योग का एक नाम सेश्वरवाद है। एक आध्यात्मिक विषय के रूप में योग वह माध्यम है जो शरीर एवं मन के मध्य सामंजस्य स्थापित करते हुए व्यक्ति को ईश्वर के साथ जोड़ता है। यदि व्यावहारिक रूप में योग को देखा जाए तो यह वह कला है जो व्यक्ति को जीवन जीने का ढंग सिखाती है साथ ही योग विज्ञान भी है जो स्वस्थ जीवन जीने की ओर अग्रसित करती है। योग षड्दर्शनों में से एक दर्शन है जो सांख्य का पूरक है। ग्रंथों तथा विद्वत जनों द्वारा योग को भिन्न-भिन्न रूपों में परिभाषित किया गया है। इस पाठ के अंतर्गत हम योग से संबंधित उन्हीं परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे।

---

### 5.2 इकाई के उद्देश्य

---

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि—

1. योग के अर्थ की व्याख्या कर सकेंगे।
2. वेदों में वर्णित योग की विभिन्न परिभाषाओं की व्याख्या कर सकेंगे।
3. श्रीमद्भागवतगीता के अनुसार योग को परिभाषित कर सकेंगे।
4. उपनिषदों के आधार पर योग को परिभाषित कर सकेंगे।
5. पुराणों में दी गयी योग की परिभाषाओं की विशद विवेचना कर सकेंगे।
6. विभिन्न धर्म तथा दर्शनों के आधार पर योग को परिभाषित कर सकेंगे।

### 5.3 योग का अर्थ

सभी भारतीय धर्मों और दर्शनों से योगशास्त्र का अटूट सम्बन्ध है। प्रत्येक व्यक्ति के उसके लक्ष्य तक पहुँचने के लिए इनमें सर्वत्र अपनी-अपनी योगविधि निर्धारित की गयी है। चित्त की वृत्तियों या इंद्रियों की आसक्ति का निरोध करना पातंजलि योग सूत्र के अनुसार समाधि या योग है। योग शब्द की उत्पत्ति 'युज्' या 'युजिर्' धातु से हुई है जिसका आशय जोड़, मेल, मिलाप, एकता, एकत्र, अवस्थिति आदि से लगाया जाता है जिसका अर्थ सम्मिलित करना अथवा एक होना है।

पातञ्जल महाभाष्य की पद्धति के समान ही योगसूत्र का प्रारंभ भी 'अथ योगानुशासनम्' से हुआ है जिसका अर्थ है कि अब परम्परागत योगविषयक शास्त्र आरम्भ करते हैं। प्रस्तुत सूत्र में महर्षि पतंजलि ने योग के साथ अनुशासन पद का प्रयोग करके योग शिक्षा की अनादिता सूचित की है और अथ शब्द से उसके आरम्भ करने की प्रतिज्ञा करके योग साधना की कर्तव्यता सूचित की है। योग का सम्बन्ध तप से रहा है। प्राचीन वैदिक ग्रंथों में कई स्थानों पर तप और उससे संबंधित परिणामों का उल्लेख किया गया है। योग का उल्लेख 'संन्यासाश्रम' से भी है परन्तु 'योग' की उत्पत्ति चतुर्थाश्रम की उत्पत्ति से योगाभ्यास को संन्यासाश्रम तक ही सीमित समझना त्रुटिपूर्ण है।

योग शब्द तीन धातुओं से निकला है। ये तीन धातु हैं; 'यूजिर् योगे' (अधदिगणीय), 'युज् समाधौ' (दिवादिगणीय), तथा 'युज् संयमने' (चुरादिगणीय)। यहाँ ये तीन धातु तीन संदर्भों में प्रयुक्त हुए हैं। 'यूजिर् योगे' एक साथ मिलने या युक्त होने के अर्थ में, 'युज् समाधौ' एकाग्रता के अर्थ में, और 'युज् संयमने' नियंत्रित अथवा निरुद्ध होने के संदर्भ में लिया जाता है। योग शब्द का 'युक्त' अर्थ दो परस्पर विरोधी दिशाओं में प्रयुक्त हुआ है। ब्राह्मण योग के परवर्ती ग्रंथों में जीवात्मा एवं परमात्मा का मिलन 'योग' कहा गया है। परमहंस उपनिषद् (1-2) में "परमात्मात्मनोरेकत्वं" तथा योगतत्त्वोपनिषद् श्लोक संख्या 107 में लिखा है 'समतावस्था जीवात्मापरमात्मनोः' को योग अथवा समाधि कहा गया है। भक्तिमार्गी परंपराओं में योग का यही सामान्य अर्थ है। इस दृष्टि से यदि योग के अर्थ को देखें तो योग मिलन, एकता अथवा संयोग का पर्यायवाची है। अनेक ग्रंथों में योग का शब्द का अर्थ इसके बिल्कुल प्रतिकूल है। पालि निकायों में योग बंधन का पर्याय है। 'चत्तारो योगा' 'चत्तारो आसवा' काम, भव, दिट्ठि तथा अविद्या नामक योग एवं आस्रव हैं जो मार के पाश कहे गए हैं। सांख्य मत में पुरुष का प्रकृति से संबंध अथवा मिलन 'योग' है। इस संयोग से वियोग को कैवल्य कहा गया है। जैन मत में भी आत्मा (जीव) का जड़ (अजीव) पदार्थों के साथ सम्मेलन 'योग' कहलाता है।

आचार्य धर्मोत्तर ने लिखा है 'योगः समाधिः स यस्यास्ति स योगी'। इस के अनुसार योग और समाधि समानार्थक हैं। तीसरा समानार्थक शब्द ध्यान है। इस परंपरा में 'योगी' शब्द श्रमण, मुनि, ध्यानी, समाहित एवं प्रतिसंलीन का पर्यायवाची है।

उपनिषदों में योग के विषय में कहा गया है कि युज्यते अनेन इति योगः — जिसका अर्थ है, "जो जोड़ता है वह योग है"। योग व्यक्तिगत चेतना (या जीवात्मा) को सार्वभौमिक चेतना (परमात्मा) से जोड़ रहा है।

योग जुड़ने की एक प्रक्रिया है। योग का अर्थ है जुड़ना — यह मन, शरीर और आत्मा का जुड़ना है या फिर आत्मा का परमात्मा के साथ जुड़ाव। यह टुकड़ों को जोड़े जाने से संबंधित नहीं है यह वह साधना या अभ्यास है जिससे व्यक्ति यह साक्षात्कार करता है कि सब कुछ एक ही है। शरीर आत्मा की अभिव्यक्ति का एक तात्कालिक रूप है किन्तु आत्मा ही नित्य, शुद्ध, आनंदस्वरूप तथा अपरिवर्तनीय है। यह अनुभूति करना, तादात्म्य होना, यानि कि योग।

मन, वचन, कर्म का आत्मा के साथ मिल जाना और आत्मा के अनुकूल चलना योग है। मनुष्य की भौतिक ऊर्जा जब आध्यात्मिक ऊर्जा के साथ मिल जाती है तो अनन्त शक्ति का रहस्य खुलने लगता है। यह मिलन ही योग है।

कठोपनिषद् के द्वितीय अध्याय के तृतीय वल्ली के श्लोकों (छः से लेकर ग्यारह) में योग का सर्वप्रथम पारिभाषिक प्रयोग हुआ है। 'तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्' यह ग्रंथ 'योगविधि' का एवं 'अध्यात्मयोगाधिगमेन' प्राप्त होने वाली हर्ष व शोक से रहित अवस्था का उल्लेख करता है। श्वेताश्वर उपनिषद्

(1-3) में 'ध्यानयोग' द्वारा 'देवात्मशक्ति' देखने का उल्लेख किया गया है। इस उपनिषद् में ध्यान व योग से संबंधित अनेक तत्वों, सिद्धियों, योगाग्निमय शरीर, कपिल ऋषि एवं 'सांख्ययोग' के अतिरिक्त 'भक्ति' शब्द का भी उल्लेख करता है। मुंडकोपनिषद् जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है यह मुंडकों या भिक्षुओं की कृति है। इस ग्रंथ में चारों वेदों तथा छः वेदांगों को 'अपरा विद्या' के अंतर्गत रखा गया है और उसे अक्षर अर्थात् ब्रह्म को जानने की 'पराविद्या' के अन्तर्गत रखा गया है और उसे अक्षर अर्थात् ब्रह्म को जानने की 'पराविद्या' से हीनतर कहा गया है। मैत्रायणी उपनिषद् में ऊँ तथा प्राण की एकता को 'योग' कहा गया है। गीता में योग का प्रयोग कई अर्थों में किया गया है। जैसे समत्व का ही नाम योग है या कर्मों की कुशलता को ही योग कहते हैं। गीता में योग वह विद्या है जो आत्मा को ईश्वर से मिलाने के लिए अनुशासन एवं भिन्न-भिन्न मार्गों का उल्लेख करती है। गीता का मुख्य उद्देश्य योग है इसलिए गीता को योग शास्त्र कहा जाता है।

योग को वह मार्ग माना जाता है जो मोक्षप्रदायिनी, धर्ममार्ग और निर्वाण की ओर ले जाने वाली है। योग का वर्णन इसी संदर्भ में विभिन्न धर्मों, और दर्शनों जैसे जैनधर्म, वैदिक परम्पराओं, ब्राह्मण परम्पराओं, बौद्ध धर्म तथा दर्शनों में किया गया है। योग भारतीय धार्मिक साधना-पद्धतियों की विशेषता है। ऐतिहासिक एवं सैद्धांतिक दृष्टि से योग को 'श्रमणयोग' और 'ब्राह्मणयोग' इन दो प्रकारों के रूप में देखा जा सकता है। यह प्रकारभेद योग के ईश्वरवादी एवं अनीश्वरवादी दोनों दिशाओं के विकास-क्रम से संबंधित है। श्रमणयोग का बौद्ध-संस्करण न केवल अनीश्वरवादी है वरन अनात्मवादी भी है। दूसरी ओर ब्राह्मणयोग ब्रह्मात्मवादी, ईश्वरवादी, पुरुषवादी है इस प्रकार हम देखते हैं कि योग का अलग-अलग अर्थ विभिन्न धर्म तथा दर्शनों में है।

## 5.4 योग की परिभाषाएँ

पतंजलि के द्वारा लिखित योगसूत्र योग दर्शन का मूल ग्रन्थ है। योगसूत्रों की रचना के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। कई स्थानों पर ऐसा वर्णित है कि योगसूत्रों की रचना आज से लगभग 3000 वर्ष पूर्व पतंजलि के द्वारा की गयी थी वहीँ पर Prof. Jacobi अपनी पुस्तक *Dates of Philosophical Sutras*, JAOS (1911) में योगसूत्र का समय 5 वीं शताब्दी के अंत के आस-पास का माना है। यदि इस बात की सत्यता स्वीकार की जाती है तो सर्वमान्य विश्वास की योगसूत्रों की रचना वैयाकरण पतंजलि ने की थी यह निराधार हो जाता है क्योंकि वैयाकरण पतंजलि का काल दूसरी शताब्दी का माना जाता है। योगसूत्र में योग को परिभाषित करते हुए पतंजलि ने लिखा है कि **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"** अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना अथवा उनको संयमित करना ही योग है। इसमें तीन ऐसे शब्द हैं जिनका सही अर्थ को जाने बिना इस वाक्य का सही अर्थ नहीं समझा जा सकता है। ये शब्द हैं चित्त, वृत्ति तथा निरोध।

चित्त का अर्थ है अंतःकरण। अंतःकरण के अंतर्गत मन, अहंकार तथा बुद्धि तीनों ही आते हैं। इन तीनों को सम्मिलित रूप में चित्त का नाम दिया गया है। चित्त को प्रकृति का प्रथम प्रसूत तत्व कहा जाता है और इसमें सत्व गुण की प्रधानता होती है। अविभाज्य चेतोव्यापार ही चित्त है। संपूर्णानंद जी ने चेतोव्यापार को स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, स्मृति, राग, द्वेष, संकल्प, आदि परिणामों की निरंतर वर्तिनीमाला ही चेतोव्यापार है। चित्त में प्रज्ञानों का निरंतर प्रवाह होता रहता है। चित्त अथवा अंतःकरण एक ही है परन्तु तीन प्रकार से भिन्न रूपों में काम करने के कारण इसे तीन नाम दिए गए हैं। चित्त के किसी रूप में ज्ञान तत्व की प्रधानता रहती है तो किसी में इच्छा तो किसी रूप में क्रिया की प्रधानता होती है। इस एक तत्व की प्रधानता के साथ बाकी दो अन्य तत्व पूर्णरूपेण अनुपस्थित नहीं हो जाते हैं बल्कि उनकी उपस्थिति बनी रहती है। चित्त की प्रकृति अचेतन होती है पर यह स्वयं में अत्यंत सूक्ष्म है और यह पुरुष के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करता है। पुरुष के प्रतिबिम्ब से प्रकाशित जड़ चित्त पुरुष की चौतन्यता के कारण चेतन प्रतीत होता है। पुरुष की चौतन्यता से प्रकाशित चित्त शुद्धचौतन्य पुरुष की अभिव्यक्ति का माध्यम है।

इंद्रियों के माध्यम से जब चित्त बाहरी विषयों के संपर्क में आता है तब वे विषय का आकार ले लेते हैं। इसी आकार को वृत्ति का नाम दिया गया है। जब चित्त-वृत्ति पुरुष चौतन्य के प्रकाश से प्रकाशित होती है तब उस विषय के सम्बन्ध में हमें ज्ञान होता है। अनित्य वृत्तियों का प्रवाह चित्त में होता रहता है। वृत्तियाँ क्षीण होकर चित्त में अपने संस्कारों का आधान करती हैं तथा ये संस्कार परिपक्व होकर पुनः अन्य वृत्तियों का रूप ले लेती हैं। वृत्तियों का संस्कारों में परिवर्तन और संस्कारों का वृत्तियों की उत्पत्ति का चक्र चलता है। वृत्तियों की संख्या असंख्य हैं परन्तु इन्हें पाँच विभागों में बाँटा गया है। ये हैं— प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृतिद्य ज्ञान के साधन को प्रमाण कहते हैं। मिथ्या ज्ञान को विपर्यय की संज्ञा दी जाती है। वह ज्ञान जिसका आधार मात्र शब्द ही हों

और शब्दों के सिवा उस ज्ञान का कोई अन्य आधार न हो उसे विपर्यय कहते हैं। निद्रा को ज्ञान का अभाव माना जाता है परन्तु इसके वृत्तित्व पर संदेह नहीं किया जा सकता। अंतिम प्रकार स्मृति है और यह एक संस्कारजन्य ज्ञान है।

निरोध का अर्थ है रोकना। पुरुष जब अपनी चेतना से ही प्रकाशित चित्त के प्रतिबिम्ब से तादात्म्य कर लेता है ऐसे में वह बद्ध जीव के रूप में प्रतीत होता है। ऐसे में जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसता है और विभिन्न क्लेशों से होकर गुजरता है। जीव के कर्म क्लेशों की उत्पत्ति के कारक बनते हैं वहीं क्लेशों से कर्म की उत्पत्ति होती है। योग में कुल पाँच क्लेशों का वर्णन किया गया है— अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश। इन क्लेशों को दूर अविद्या निवृत्ति या चित्त वृत्ति निरोध के द्वारा ही किया जा सकता है और पतंजलि ने योग को इसी रूप में परिभाषित किया है।

योग के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करते हुए महर्षि पतंजलि ने आगे कहा है —

### तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ।। 3

उस समय द्रष्टा की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है। जब साधक अपनी चित्त की वृत्तियों का निरोध कर लेता है, तब उस समय द्रष्टा (आत्मा) की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है, अर्थात् वह कैवल्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है। योग की स्थिति में साधक (पुरुष) की चित्तवृत्ति निरुद्धकाल में कैवल्य अवस्था की भाँति चेतनमात्र (परमात्मा) स्वरूप रूप में स्थित होती है। योग को पतंजलि ने योग को “योगः समाधिरू” कह कर परिभाषित किया है। योगः समाधिः का आशय है कि इच्छा, काम—वासना, लोभ, आसक्ति, मद—माया, मत्सर जैसी सभी प्रकार की मलिनता को दूर करके स्वरूप में प्रतिष्ठित हो, जीव का ब्रह्म स्वरूप प्राप्त करना— समाधि है। भारत के ऋषियों, मनीषियों तथा तत्व—चिंतकों ने योग को ऐसे साधन के रूप में स्वीकार करते हैं जो आत्मा को सांसारिकता से मोड़ते हुए पवित्र बनाती है। इसीलिए यहाँ महर्षि पतंजलि ने योग को दो प्रकार से बताया है— संप्रज्ञात योग अथवा समाधि तथा असंप्रज्ञात योग अथवा समाधि।

**संप्रज्ञात योग :** संप्रज्ञात योग की समाधि चार प्रकार की होती है, जो निम्नलिखित है —

1. सवितर्क
2. सविचार
3. सानन्द
4. सास्मित

**असंप्रज्ञात योग :** असंप्रज्ञात योग की समाधि दो प्रकार की होती है,

1. भवप्रत्यय
2. उपायप्रत्यय

संप्रज्ञात योग में तमोगुण गौणतम रूप से नाम रहता है। तथा पुरुष के चित्त में विवेक—ख्याति का अभ्यास रहता है। असंप्रज्ञात योग में सत्त्व चित्त में बाहर से तीनों गुणों का परिणाम होना बन्द हो जाता है तथा पुरुष शुद्ध कैवल्य परमात्मस्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

वेदों के अनुसार योग का उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति तथा आध्यात्मिक उन्नति है।

#### 5.4.1 वेदों में योग की परिभाषाएं

भारतवर्ष में योग—विद्या का महत्व बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। मनुष्य—जीवन के धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के निरूपण में सर्वत्र ही योग की प्रधानता है। प्रयोग तथा फल के अनुसार योग के दो प्रकार बताए गए हैं; लौकिक तथा अलौकिक। वेद विश्व के ऑरचिन्ताम ग्रंथों में से एक हैं और जो अपौरुषेय माने जाते हैं; योग का मूल स्रोत हैं। सभी वेदों में योग का उल्लेख मिलता है। परन्तु दूरदर्शिता के अभाव या अन्य शब्दों में कहें कि समुचित समझ के अभाव के कारण योग को मात्र योग सूत्र, घेरण्ड संहिता, योग दर्शन, गोरक्ष संहिता तथा गीता से ही जोड़ कर देखा जाता है। वेद भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान—विज्ञान का मूल स्रोत हैं। वेदों के विषय में कहा गया है कि ‘वेदोऽखिलोः धर्म मूलम्’ अर्थात् वेदों में सभी विद्याओं के सूत्र विद्यमान हैं। कोई भी ऐसा विषय नहीं है

जैसे देव विद्या, निधि विद्या, ब्रह्मविद्या, नक्षत्र विद्या, चिकित्सा विद्या, निधि विद्या, आयुर्वेद, भूगोल, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, वाणिज्य, दर्शन, कला जो वेदों में वर्णित न हो और इन्हीं वेदों में योग के लौकिक तथा अलौकिक प्रयोग बताते हुए योग को परिभाषित किया गया है जिनकी चर्चा हम यहाँ करेंगे।

योग को भारतीय जीवन के ऋग्वेद के प्रथम मंडल के अठारहवें सूक्त के सातवीं ऋचा में योग की परिभाषा इस प्रकार से दी है।

**यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन्।**

**स धीनां योगमिन्वतिः॥ (ऋग्वेद 1/18/7)**

जिसका आशय है कि विद्वानों का कोई भी कर्म बिना योग के सिद्ध नहीं होता। योग व्यक्ति के कर्म में व्याप्त है। ऋग्वेद में भी यह माना गया है कि योग चित्तवृत्तियों का निरोध है, वह कर्तव्य कर्ममात्र में व्याप्त है।

जिन देवता के बिना प्रकाशपूर्ण ज्ञानी का जीवन—यज्ञ भी सफल नहीं होता, उसी में ज्ञानियों को अपनी बुद्धि एवं कर्मों का योग करना चाहिए, उसी देव में उन्हें अपनी बुद्धि और कर्मों को अनन्यरूप में एकाग्र करना चाहिए। उनकी बुद्धि उस देव के साथ तदाकार हो जाती है और वह उनके कर्मों में भी ओतप्रोत हो जाता है।

प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि जिस देव के बिना कोई यज्ञ सिद्ध नहीं होता, हम उसके शरण में जाते हैं कि वह हमारी बुद्धि तथा चित्तवृत्तियों को योग में प्रेरित करें। योग सिद्धि के लिए धी शक्ति की प्रवृत्ति अत्यंत आवश्यक है। धी बुद्धि का पर्यायवाची है। कर्म और विचार की सम्मिलित शक्ति को वेद में धी कहा गया है। धी का संबंध ध्यान से है। योग के लिए एक ओर मानस ध्यान की आवश्यकता है और दूसरी ओर दृढ़भूमि पर अभ्यास की। यदि समाज वृत्तियों का अभ्यास और वैराग्य से विरोध नहीं किया जाता तो चित्त योग में नहीं ठहरता। यह भी आवश्यक है कि चित्त के जितने स्थूल और सूक्ष्म तत्व हैं उनकी शुद्धि धीरे-धीरे युक्ति से प्राप्त की जाए। इसी साधना को तप कहते हैं। तप की सफलता से ही चित्त को समाधि की स्थिति कि प्राप्ति होती है। ऋषियों ने जब इस प्रकार के अभ्यास का आयोजन किया तो उन्हें सर्वप्रथम चित्त में भरे मलों के निराकरण के उपाय की आवश्यकता प्रतीत हुई। इन्हें ही आसुरी कहते हैं। चित्त की दो प्रवृत्तियाँ प्रधान हैं, दैवी तथा आसुरी। इनके अलावा अन्य प्रवृत्तियाँ भी हैं। इन सभी का शोधन योग के अंतर्गत आता है। योग के अभ्यास का उपक्रम प्रकाश तथा अंधकार के मध्य एक संघर्ष का आरम्भ करता है। अंधकार की समाप्ति और प्रकाश की संप्राप्ति योग का फल है।

ऋग्वेद में ही आगे कहा गया है कि ,

**स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम्।**

**गमद्वाजेभिरा स नः॥ 1/5/3॥**

अर्थात् वह परमात्मा हमारी समाधि के निमित्त अभिमुख हो, उसकी दया से समाधि, विवेक, ख्याति तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा का हमें लाभ हो, अपितु वही परमात्मा अणिमा आदि सिद्धियों के सहित हमारी ओर आगमन करे। वे इन्द्रदेव हमारे पुरुषार्थ को प्रखर बनाने में सहायक हों, धन—धान्य से हमें परिपूर्ण करें तथा ज्ञान प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुये पोषक अन्न सहित हमारे निकट आयें। वह अद्वितीय सर्वशक्तिमान अखण्ड आनन्द परिपूर्ण सत्य सनातन परमतत्व हमारी समाधि की स्थिति में दर्शन देने के निमित्त अभिमुख हो।

अथर्ववेद के बीसवें कांड के छब्बीसवें सूक्त के प्रथम श्लोक में उल्लिखित है कि —

**योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे।**

**सखाय इन्द्रभूतये॥ 20/26/1॥**

अर्थात् हम सखा (साधक) प्रत्येक योग अर्थात् समाधि की प्राप्ति के लिए तथा हर परेशानी में परम ऐश्वर्यवान् इन्द्र का आह्वान करते हैं।

एक सामान्य ज्ञान वाले एक समान गुण कर्म स्वभाव वाले, योग पथ के पथिक, एक ही साधना की राह के राहगीर, हम अपने अपने योग में अर्थात् अपने योग मार्ग के प्रत्येक कर्म में और उस मार्ग में आई हुई प्रत्येक कठिनाई में प्रत्येक संघर्ष में अपनी रक्षा के लिए अपनी सफलता के लिए अत्यंत बलशाली होकर बलवान् इन्द्र परमेश्वर को बुलाते हैं। वेदों में हठयोग के अंगों का वर्णन भी मिलता है।

अथर्ववेद के दसवें काण्ड के द्वितीय सूक्त के इकतीसवें श्लोक में वर्णित है —

**अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।**

**तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ 10/1/31 ॥**

अर्थात् आठ चक्रों, नव द्वारों से युक्त हमारा यह शरीर वास्तव में देवनगरी है। इसमें हिरण्यमय कोश है जो ज्योति व असीम आनन्द से युक्त है। वास्तव में यह असीम आनन्द की प्राप्ति योग से ही सम्भव है। संक्षेप में कहें तो योग का वर्णन वेदों में बिखरा पड़ा हुआ है आत्मकल्याण ही इसका प्रतिपाद्य विषय है।

हमारा यह मानव शरीर आठ चक्रों और नौ द्वारों से युक्त कभी ना पराजित होने वाली देवों की नगरी है। इसी पुरी में ज्योति से आवृत, परिपूर्ण, हिरण्यमय, स्वर्णमय कोश है यह स्वर्ग है। आत्मिक आनन्द का भंडार परमात्मा इसी में अवस्थित हैं।

प्रस्तुत मंत्र में मानव देह की आध्यात्मिक व्याख्या की गयी है। हमारा यह मानव शरीर आठ चक्रों से युक्त है। यह आठ चक्रय मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूरक चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र, ललना चक्र, आज्ञा चक्र, तथा सहस्रार चक्र हैं जो क्रमशः गुदामूल, मूलाधार से कुछ ऊपर, नाभि, हृदय स्थान, कंठमूल, जिह्वामूल, दोनों भवों के मध्य और मस्तिष्क में स्थित है। इनके अलावा जो नौ द्वार कहे गए हैं वह हमारी यह दो आंखें, दो नासिका छिद्र, दो कान, मल और मूत्र के द्वार हैं। इस नगरी में जो हिरण्यमयकोष अर्थात् हृदय है, वहाँ दिव्य प्रकाश से परिपूर्ण आत्मिक आनन्द का भंडार परमात्मा स्थित है योगसाधक योग साधना के माध्यम से इन चक्रों का भेदन करते हुए ज्योतिस्वरूप परमात्मा का दर्शन करते हैं।

**यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूतविजानतः**

**तत्र को मोहः कः शोकऽएकत्वमनुपश्यतः ॥ यजुर्वेद 40/7 ॥**

अर्थात् जो आत्मज्ञानी इस तथ्य को जान लेता है कि यह आत्म तत्व ही समस्त भूतों में प्रकट हुआ है, उसके आगे मोह और शोक नहीं टिक पाते। वह इन सब से बहुत दूर हो जाता है।

अहिंसक व्रती योगी जब सर्वभूतों—प्राणियों के प्रति आत्मभाव की भावना को दृढ़ कर लेता है, तब उससे कोई ऐसा कर्म नहीं होता जिसके लिए उसे शोक अथवा मोह या संदेह उत्पन्न हो। ऐसी उच्च अवस्था प्राप्त करना मानव—मात्र का लक्ष्य होना चाहिए।

#### **5.4.2 श्रीमद्भागवतगीता में योग की परिभाषाएँ**

श्रीमद्भागवतगीता योग के संदर्भ में एक स्पष्ट दृष्टिकोण उपस्थित करती है। योग में कुल 18 अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय को एक विशेष योग की संज्ञा दी गयी है। जैसे प्रथम अध्याय को अर्जुनविषाद योग, द्वितीय को सांख्य योग, तृतीय को कर्मयोग, चतुर्थ को ब्रह्मयोग, पाँचवें को कर्म सन्यास योग, छठे को आत्मसंयम योग, सातवें को ज्ञानविज्ञान योग, आठवें को अक्षरब्रह्म योग, नवें को राजविद्याराजग्रह्य योग, दसवें को विभूति योग, ग्यारहवें को विश्वरूपदर्शन योग, बारहवाँ भक्तियोग, तेरहवाँ क्षेत्र—क्षेत्रज्ञ विभाग योग, चौदहवाँ गुणत्रय विभाग योग, पंद्रहवें को पुरुषोत्तम योग, सोलहवें को दैवासुरसम्पद् विभाग योग, सत्रहवें को श्रद्धात्रय विभाग योग एवं अठारहवें को मोक्षसन्यास योग की संज्ञा दी गयी है।

श्रीमद्भागवतगीता के द्वितीय अध्याय श्लोक संख्या 50 में योग को परिभाषित करते हुए उद्धृत है कि 'योगः कर्मसु कौशलम्' यानि योग से ही कर्मों में कुशलता है। यदि हम सम्पूर्ण श्लोक को देखें तो वह इस प्रकार से है।

**बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।**

**तस्माद्योगाय युज्यस्व योगरु कर्मसु कौशलम् ॥**

अर्थात् समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इसलिए तू समत्वरूप योग में लग जाय यह समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्मबंधन से छूटने का उपाय है।

जो बिना लगाव के काम के विज्ञान का विवेकपूर्ण अभ्यास करता है वह इस जीवन में अच्छी और बुरी दोनों तरह की प्रतिक्रियाओं से छुटकारा पा सकता है। इसलिए, योग के लिए प्रयास करें, जो कुशलता से (उचित चेतना में) काम करने की कला है। अनादि काल से प्रत्येक जीव ने अपने अच्छे और बुरे कर्मों के विभिन्न फलों को संचित किया है। इस प्रकार, वह अपनी वास्तविक संवैधानिक स्थिति से लगातार अनभिज्ञ है। भगवद गीता के निर्देश से किसी का अज्ञान दूर किया जा सकता है, जो व्यक्ति को सभी प्रकार से भगवान श्रीकृष्ण के प्रति समर्पण करने और जन्म-जन्मान्तर कर्म और प्रतिक्रिया के बंधनों से मुक्त होने की शिक्षा देता है। इसलिए भगवान के द्वारा अर्जुन को सलाह दी जाती है कि वह कृष्णभावनामृत में कार्य करे।

श्रीमद्भागवतगीता के दूसरे अध्याय में योग के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है;

**‘समत्वं योग उच्यते’**

अर्थात् सुख-दुःख आदि द्वंदों के बीच चित्त या मन का समान बने रहना। अर्थात् जब योगी का चित्त सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होता है, तब इस अवस्था में योगी का चित्त सुख-दुःख, मान-अपमान, लाभ-हानि, जय-पराजय, शीत-उष्ण, तथा भूख-प्यास आदि द्वन्द्व में समान बना रहता है। इस अवस्था में योगी जगत के समस्त पदार्थों के प्रति समान भाव रखता है। इस अवस्था की प्राप्ति के उपरांत योग साधक का समस्त अज्ञान नष्ट हो जाता है, सभी दुःख समाप्त हो जाते हैं। इसी समत्व भाव का नाम योग है।

यदि सम्पूर्ण श्लोक को देखें तो यह इस प्रकार है –

**योगस्थः कुरु कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजय।**

**सिद्धय-सिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ 2/48 ॥**

अर्थात् हे धनंजय (अर्जुन)! तू आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्य कर्मों को कर, समत्व ही योग कहलाता है। कर्म न करने का आग्रह त्यागकर, यश-अपयश के विषय में समबुद्धि होकर योगयुक्त होकर, कर्म कर, (क्योंकि) समत्व को ही योग कहते हैं।

पाँचवे अध्याय के सातवें श्लोक में उल्लिखित है कि –

**योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।**

**सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ 5/7 ॥**

प्रस्तुत श्लोक का अर्थ है कि जिसका मन अपने वश में है, जो जितेंद्रिय एवं विशुद्ध अन्तःकरणवाला है और सम्पूर्ण प्राणियों का आत्मरूप परमात्मा ही जिसकी आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता।

गीता के छठे अध्याय के श्लोक बीस में लिखा है –

**यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।**

**यत्र चौवात्मनाऽऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ 6/20 ॥**

यह श्लोक मूलतः चित्त की स्थिरता की ओर इंगित करता है। श्लोक का आशय है कि योग के अभ्यास से निरुद्ध चित्त जिस अवस्था में उपराम हो जाता है और जिस अवस्था में परमात्मा के ध्यान से शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा परमात्मा को साक्षात् करता हुआ सच्चिदानन्द परमात्मा में ही संतुष्ट रहता है।

योग की एक अन्य परिभाषा गीता के छठे अध्याय में दी गयी है।

**“दुरुखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्” ॥ 6/23 ॥**

श्रीकृष्ण कहते हैं कि मनुष्य का उसके जीवन पर्यन्त दुरुखों से संयोग बना रहता है। दुरुखों के इसी संयोग का पूर्णतरु वियोग हो जाना, दुरुखों की सदा के लिए समाप्ति हो जाना ही योग कहलाता है।

छठे अध्याय में यह पूरा श्लोक इस प्रकार से है –

**तं विद्याद् दुरुखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।**

**स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ 6/23 ॥**

अर्थात् जो दुःख रूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है उसको जानना चाहिए। उस ध्यानयोगका अभ्यास न उकताये हुए चित्त से अर्थात् धैर्य और उत्साहयुक्त चित्त से निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है।

श्रीकृष्ण पुनः कहते हैं कि —

**असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।**

**वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ 6/36 ॥**

अर्थात् जिसका मन पूरा वशमें नहीं है, उसके द्वारा योग प्राप्त होना कठिन है। परन्तु उपायपूर्वक यत्न करनेवाले वश्यात्माको योग प्राप्त हो सकता है, ऐसा मेरा मत है।

गीता के छठवें अध्याय में ही श्लोक 45 में उल्लिखित है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं

**प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।**

**अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ 6/45 ॥**

अर्थात् परन्तु प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करने वाला योगी तो पिछले अनेक जन्मों के संस्कार बल से इसे जन्म में संसिद्ध होकर संपूर्ण पापों से रहित हो, फिर तत्काल ही परमगति को प्राप्त हो जाता है।

श्लोक का आशय है कि योग वह मार्ग है जो हमारे सम्पूर्ण पापों का संशोधन कर हमें मुक्ति प्रदान करता है।

**तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।**

**कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ 46 ॥**

अर्थात् योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, ज्ञानशास्त्रियों से भी श्रेष्ठ माना गया है और सगाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है, इससे हे अर्जुन! तू योगी हो।

श्लोक से तात्पर्य है कि योग वह माध्यम है जो व्यक्ति को श्रेष्ठता देता है।

गीता के अध्याय नौ के श्लोक पाँच में वर्णित है कि —

**न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।**

**भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ 9/5 ॥**

यह सब संसार मेरे निराकार स्वरूप से व्याप्त है। सम्पूर्ण प्राणी मुझ में स्थित हैं परन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ तथा वे प्राणी भी मेरेमें स्थित नहीं हैं — मेरे इस ईश्वर-सम्बन्धी योग—(सामर्थ्य—) को देख ! सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाला और उनका धारण, भरण—पोषण करने वाला मेरा स्वरूप उन प्राणियों में स्थित नहीं है।

ग्यारहवें अध्याय के श्लोक आठ में योग के विषय में श्रीकृष्ण कहते हैं कि —

**न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।**

**दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ 11.8 ॥**

किंतु, तू मुझे विश्वरूपधारी परमेश्वरको अपने इन प्राकृत नेत्रों से नहीं देख सकेगा। जिन दिव्य नेत्रों द्वारा तू मुझे देख सकेगा? वे दिव्य नेत्र (मैं) तुझे देता हूँ? उनके द्वारा तू मुझे ईश्वर के ऐश्वर्य और योग को अर्थात् अतिशय योग सामर्थ्य को देख।

सामान्य नेत्रों से व्यक्ति ईश्वर को नहीं देख सकता क्योंकि ईश्वर अलौकिक है और अलौकिकता का दर्शन प्राकृत नेत्रों से नहीं हो सकता। ईश्वरीय योग शक्ति को देखने के लिए अलौकिक नेत्र चाहिए अतः श्रीकृष्ण अर्जुन को दिव्य दृष्टि प्रदान करते हैं जिससे वह उनकी ईश्वरीय योग शक्ति को देख सकें।

## बोध प्रश्न

### टिप्पणी:

(क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

1. योग शब्द की उत्पत्ति किस धातु से हुई है ?

.....

.....

.....

2. 'युज् संयमने' का योग के संदर्भ में क्या तात्पर्य है ?

.....

.....

.....

3. जैन धर्म के अनुसार योग का क्या अर्थ है ?

.....

.....

.....

4. योग दर्शन का मूल ग्रंथ क्या है ?

.....

.....

.....

5. योगसूत्र के अनुसार योग क्या है?

.....

.....

.....

### 5.4.3 विभिन्न उपनिषदों में योग की परिभाषा

उपनिषदों का एक नाम वेदांत भी है। उपनिषद सनातन धर्म के मुख्य श्रुति धर्मग्रंथों में सम्मिलित किए जाते हैं। ये वैदिक वाङ्मय के भाग हैं। इनकी कुल संख्या 108 है किन्तु मुख्य उपनिषदों में 13 उपनिषदों को सम्मिलित किया जाता है जो ईशावास्योपनिषद्, केनोपनिषद्, कठोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद्, माण्डूक्योपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, ऐतरेयोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद्, कौशितकी उपनिषद्, एवं मैत्रायणी उपनिषद् हैं। हालाँकि कुछ विद्वान मुख्य उपनिषदों में प्रथम दस को ही रखते हैं और अंतिम तीन उपनिषदों को गौण की श्रेणी में रखा है। सभी 108 उपनिषद् किसी न किसी वेद से संबंधित हैं। कुल 10 उपनिषद् ऋग्वेद, 19 उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद, 32 उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद, 16 उपनिषद् सामवेद और 31 उपनिषद् अथर्ववेद से संबंधित हैं। इन सभी उपनिषदों में योग को अनेकानेक प्रकार से परिभाषित किया है। पाठ के इस भाग में विभिन्न उपनिषदों में योग की परिभाषाओं का उल्लेख और वर्णन किया जाएगा।

कठोपनिषद् के द्वितीय अध्याय के तृतीय वल्ली के श्लोक संख्या 10 तथा 11 में यम योग के विषय में समझाते हुए नचिकेता से कहते हैं कि –

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।

बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्॥ 10॥

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।

अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभावाप्ययौ ।। 11 ।।

अर्थात् जब व्यक्ति की पाँचो इन्द्रियाँ शान्त होकर स्थिर हो जाती हैं तथा मन भी उनके साथ स्थिर हो जाता है, और श्रुद्धि की प्रक्रियाएँ भी शान्त हो जाती हैं तो वह उच्चतम अवस्था (परम गति) होती है, ऐसा मनीषीगण कहते हैं। उस स्थिर इन्द्रियधारणा को 'योग' मानते हैं। क्योंकि तब (वह) प्रमाद रहित हो जाता है (निश्चय ही) योग (शुभ के) उदय और (अशुभ के) अस्त वाला है।

इसका आशय है कि जब सभी पाँच ज्ञानेन्द्रियों मन सहित आत्मा में स्थिर होकर बैठती हैं, बुद्धि भी कोई चेष्टा नहीं करती, तब उस अवस्था को परमगति कहते हैं। उसी स्थिर इन्द्रिय-धारणा को योग कहते हैं। उस अवस्था में साधक प्रमादरहित होता है।

जिस समय पाँचों ज्ञानेन्द्रियां मन के साथ (आत्मा में) स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी चेष्टा नहीं करती उस अवस्था को परमगति कहते हैं। उस स्थिर इन्द्रियधारणा को ही योग कहते हैं। उस समय पुरुष प्रमादरहित हो जाता है, क्योंकि योग ही उत्पत्ति और नाशरूप है।

अर्थात् जिस समय अपने-अपने विषयों से निवृत्त हुई पाँच ज्ञानेन्द्रियां— ज्ञानार्थक होने के कारण श्रोतादि इन्द्रियाँ 'ज्ञान' कहीं जाती हैं— मन के साथ अर्थात् वे जिसका अनुवर्तन करने वाली हैं उस संकल्पादि व्यापार से निवृत्त हुए अंतःकरण के सहित (आत्मा में) स्थित हो जाते हैं और निश्चयात्मिका बुद्धि भी अपने व्यापारों में चेष्टाशील नहीं होती— चेष्टा नहीं करती— व्यापार नहीं करती उस अवस्था को ही परम गति कहते हैं। उस ऐसी अवस्था को ही— जो वास्तव में वियोग ही है— योग मानते हैं, क्योंकि योगी की यह अवस्था सब प्रकार के अनर्थ संयोग की दो वियोगरूपा है। इस अवस्था में ही आत्मा अपने अविद्यादि आरोप से रहित स्वरूप में स्थिर रहता है। उस अवस्था को ही स्थिर इन्द्रियधारणा कहते हैं— स्थिर अर्थात् अचल इन्द्रियधारणा यानी बाह्य और आंतरिक करणों को धारण करना। तब— उस समय साधक पुरुष अप्रमत्त— प्रमादरहित हो जाता है, अर्थात् चित्त समाधान के प्रति सर्वदा प्रयत्नशील रहता है, जिस समय कि वह योग में प्रवृत्त होता है— (उस समय ऐसी स्थिति होती है)— ऐसा इस वाक्य की सामर्थ्य से जाना जाता है, क्योंकि बुद्धि आदि की चेष्टा का अभाव हो जाने पर प्रमाद होना संभव नहीं है। अतः बुद्धि आदि की चेष्टा का अभाव होने से पूर्व ही अप्रमाद का विधान किया जाता है अथवा जिस समय भी इन्द्रियों की धारणा स्थिर होती है उसी समय निरंकुश अप्रमत्तत्व होता है। इसलिए 'उस समय अप्रमत्त हो जाता है' ऐसा कहा जाता है। ऐसी बात क्यों है? क्योंकि योग ही प्रभव और अप्यय यानि उत्पत्ति और लयरूप धर्मवाला है। अतः तात्पर्य यह है कि अपाय (लय)— की निवृत्ति के लिए प्रमाद का अभाव करना चाहिए।

कठोपनिषद् (2.6.11) में ही आगे कहा गया है:

तम योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणम् ।।

इसका अर्थ है कि योग एक ऐसी अवस्था है जहाँ इन्द्रियों (या इन्द्रियों) को स्थिर रखा जाता है। दूसरे शब्दों में यह इन्द्रियों और मन पर अधिकार है।

कैवल्योपनिषद् के अनुसार —

श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैहि ।। 2 ।।

अर्थात् श्रद्धा, भक्ति, ध्यान के द्वारा आत्मा का ज्ञान ही योग है।

अर्थात् परापर तत्व को श्रद्धा, भक्ति, ध्यान और योग के द्वारा जानने का यत्न करना चाहिए। उसकी प्राप्ति न कर्म के द्वारा होती है, न संतान अथवा धन के द्वारा। ब्रह्मज्ञानियों ने त्याग के माध्यम अमृतत्व को प्राप्त किया है। स्वर्गलोक से भी ऊपर गुहा में अर्थात् बुद्धि के गहवर में स्थित होकर जो ब्रह्मलोक प्रकाशित है, उसमें यति— संयमशील योगीजन प्रवेश करते हैं।

योगकुण्डल्युपनिषद् के प्रथम अध्याय में पहले ही दो श्लोकों में योग के विषय में लिखा है,

हेतुद्वयं हि चित्तस्य वासना च समीरणः ।

तयोर्विनष्ट एकस्मिन्तद्वावपि विनश्यतः । 1 ।

तयोरादौ समीरस्य जयं कुर्यान्नरः सदा ।

मिताहारश्चासनं च शक्तिचालस्तृतीयकः । 2 ।

अर्थात् चित्त (की चंचलता) के दो कारण हैं, वासना अर्थात् पूर्वार्जित संस्कार एवं वायु अर्थात् प्राणय इन दोनों में से एक का भी निरोध हो जाने पर दोनों समाप्त (निरुद्ध) हो जाते हैं। दोनों में सबसे पहले वायु अर्थात् प्राण पर विजय प्राप्त करना चाहिए। प्राणों पर विजय प्राप्त करने के तीन साधन हैं—मिताहार, आसन एवं शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास।

चित्त के दो हेतु हैं— वासना और प्राण। इनमें से किसी एक पर नियंत्रण होने से दोनों नियंत्रित हो जाते हैं। यानि कि व्यक्ति जब वासना पर नियंत्रण स्थापित करले तो प्राण स्वयं ही नियंत्रित हो जाता है। इसके विपरीत यदि प्राण पर व्यक्ति नियंत्रण कर ले वह वासना पर नियंत्रण कर लेता है। अगले ही श्लोक में फिर कहा गया है कि प्राण तथा वासना में से सबसे पहले प्राण पर विजय प्राप्त करना चाहिए और प्राण पर विजय प्राप्त करने के लिए तीन साधन बताए गए हैं जो कम आहार, आसन तथा शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास हैं। अतएव योग वह माध्यम है जो वायु अथवा प्राण और वासना अथवा पूर्वार्जित संस्कार पर निरोध करती है।

योगतत्त्वोपनिषद् में मोक्ष की प्राप्ति हेतु ज्ञान तथा योग दोनों को आवश्यक बताया गया है।

तमाद्दोषविनाशार्थमुपायं कथयामि ते ।

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति ध्रुवम् ।। 14 ।।

योगो हि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि

तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुदृढमभ्यसेत् ।। 15 ।।

अर्थात् योग—विहीन ज्ञान मोक्ष देने वाला कैसे हो सकता है? ज्ञानरहित योग से भी मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता। इस कारण मोक्ष के अभिलाषी को ज्ञान और योग दोनों का ही दृढ़ अभ्यास करना चाहिए।

योग के बिना ज्ञान या ध्रुव मोक्ष भला कैसे हो सकता है ? उसी प्रकार ज्ञानहीन योग भी मोक्षकर्म में असमर्थ है। मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान तथा योग दोनों आवश्यक है। इस परिभाषा के अनुसार भी योग मोक्ष प्राप्ति का साधन है।

महोपनिषद् में योग के विषय में वर्णित है कि —

ते स्थिता भूमिकास्वासु स्वात्मलाभपरायणाः ।

मनःप्रशमनोपायो योग इत्यभिधीयते ।। 42 ।।

अर्थात् जैसे मृग—तृष्णा में जल की भ्रान्ति होती है, इसे ही अविद्या कहा गया है, अनिद्या का नाश ही मुक्ति है। परमपद के अधिकारी वही हैं, जो मोहरूपी सागर से पार हो चुके हैं। आत्मसाक्षात्कार के प्रयत्नों में संलग्न पुरुष ही इन भूमिकाओं में प्रतिष्ठित होते हैं। मन की पूर्णतया शान्ति के साधन को योग कहा गया है।

मैत्रायण्युपनिषद् में कहा गया है—

एकत्वं प्राणमनसोरिन्द्रियाणां तथैव च ।

सर्वभाव परित्यागो योग इत्यभिधीयते ।। 6/25

अर्थात् प्राण, मन व इन्द्रियों का एक हो जाना, एकाग्रावस्था को प्राप्त कर लेना, बाह्य विषयों से विमुख होकर इन्द्रियों का मन में और मन आत्मा में लग जाना, प्राण का निश्चल हो जाना योग है।

योगशिखोपनिषद् में कहा गया है —

योगात्परतरं पुण्यं योगात्परतरं शिवम् ।

योगात्परतरं सूक्ष्मं योगात्परतरं नहि ।। 67 ।।

योग से बढ़कर पवित्र कुछ भी नहीं है और योग से बढ़कर शुभ कुछ भी नहीं है। योग से अधिक सूक्ष्म कुछ भी

नहीं है, अर्थात् योग से बढ़कर कुछ नहीं है।

योऽपानप्राणयोरैक्यं स्वरजोरेतसोस्तथा।

सूर्याचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः॥ 68॥

एवं तु द्वन्द्वजालस्य संयोगो योग उच्यते।

अर्थात् अपान और प्राण की एकता कर लेना, स्वरज रूपी महाशक्ति कुण्डलिनी को स्वरेत रूपी आत्मतत्त्व के साथ संयुक्त करना, सूर्य अर्थात् पिंगला और चन्द्र अर्थात् इडा स्वर का संयोग करना तथा परमात्मा से जीवात्मा का मिलन योग है। इस प्रकार द्वैत के जाल के संयोग को योग कहते हैं।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी:

(क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

6. "यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। स धीनां योगमिन्वतिः॥"॥ इस ऋचा के अनुसार योग का क्या अर्थ है?

7. गीता का कौन सा अध्याय कर्मयोग के रूप में जाना जाता है ?

8. गीता के श्लोक 'योगरू कर्मसु कौशलम्' का क्या आशय है ?

9. उपनिषदों की संख्या कुल कितनी है ?

10. 'श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैहि' का अर्थ स्पष्ट करें।

11. चित्त के दो हेतु कौन से हैं ?

#### 5.4.4 विभिन्न पुराणों में योग की परिभाषाएँ

पुराण शब्द का शाब्दिक अर्थ प्राचीन या अतीत से है। पुराण शब्द 'पुरा' तथा 'अण' शब्दों की संधि से उत्पन्न हुआ है इसमें पुरा का अर्थ प्राचीन तथा अण का अर्थ कहना या बतलाना है। इस प्रकार पुराण शब्द का आशय उन ग्रंथों से है जो पुरातन अथवा अतीत के तथ्यों, सिद्धांतों, शिक्षाओं, नीतियों, नियमों और घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करती हैं। पुराण हिन्दू धर्म के प्राचीनतम ग्रंथों में से एक माने जाते हैं। हमारे हिन्दू प्राचीन ग्रंथों में अठारह पुराणों का वर्णन मिलता है ये पुराण ब्रह्मा पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पुराण, वायु पुराण, भागवत पुराण, नारद पुराण, मार्कण्डेय पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, लिंग पुराण, वराह पुराण, स्कन्द पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, गरुड़ पुराण तथा ब्रह्मांड पुराण हैं। नारद पुराण सभी अन्य पुराणों से जुड़ा है और इसमें सभी पुराणों का सार है। पुराणों को मनुष्य के भूत, भविष्य, वर्तमान का दर्पण भी कहा जा सकता है। वास्तविकता में वेदों की भाषा तथा शैली क्लिष्ट हैं जिससे उन्हें समझना कई बार अत्यंत कठिन होता है। साथ ही वेदों में प्रयुक्त भाषा भी शुष्क है। पुराण में वही बातें बहुत ही रोचक तरीके से लिखी हैं। पुराणों में भी योग के सम्बन्ध में अलग-अलग स्थानों पर परिभाषाएं मिलती हैं—

श्रीमद्भागवत महापुराण के तेरहवें अध्याय में उद्धव के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्लोक 14 में श्रीकृष्ण कहते हैं कि—

**एतावान योग आदिष्टो मच्छिश्यैः सनकादिभिः।**

**सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्वाऽऽवेश्यते यथा॥ 14**

अर्थात्, प्रिय उद्धव! मेरे शिष्य सनकादि परमर्षियों ने योग का यही स्वरूप बताया है कि साधक अपने मन को सब ओर से खींचकर विराट् आदि में नहीं, साक्षात् मुझमें ही पूर्णरूप से लगा दें।

श्रीमद्भागवत महापुराण के इस श्लोकके अनुसार मन को इस भौतिक तथा नश्वर जगत के सभी पदार्थों से हटाकर एक परमात्मा में ही पूरी तरह लगाना असल योग है। चित्त की वृत्ति ही है कि वह गुणों की ओर आकृष्ट होता है या यूँ कहें तो विषयों में घुसा ही रहता है और गुण भी चित्त की एक-एक वृत्ति में प्रविष्ट रहते ही हैं। अर्थात् चित्त और गुण आपस में मिले-जुले ही रहते हैं। अर्थात् चित्त और गुण आपस में मिले-जुले ही रहते हैं। ऐसी स्थिति में जो पुरुष इस संसार सागर से पार होकर मुक्तिपद प्राप्त करना चाहता है, वह इन दोनों को एक-दूसरे से अलग कैसे कर सकता है? और यही प्रश्न सनकादि परमर्षियों ने ब्रह्मा जी से पूछा था और उत्तर में यह प्राप्त हुआ कि बार-बार विषयों के सेवन करते रहने से चित्त विषयों में आसक्त हो जाता है और विषय भी चित्त में प्रविष्ट हो जाते हैं इन दोनों को अपने वास्तविक से अभिन्न परमात्मा का साक्षात्कार करके त्याग देना चाहिए और योग यही माध्यम है।

अग्नि पुराण के अध्याय 183 जिसमें यम तथा नियम का वर्णन किया गया है, उसके पहले दो श्लोकों में योग के विषय में लिखा गया है। इन श्लोकों में अग्निदेव कहते हैं कि—

**ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं योगस्तत्रैक चित्तता।**

**चित्तवृत्तिनिरोधश्च जीवब्रह्मात्मनीः परः॥ 183/1-2॥**

अर्थात् ब्रह्म को प्रकाशित करने वाला ज्ञान होता है। और उस ब्रह्म में चित्त की एकाग्रता के होने को ही योग कहा जाता है। और चित्त की वृत्ति का निरोध जीव की आत्मा और ब्रह्म का परम योग हुआ करता है। अन्य शब्दों में कहें तो ब्रह्म में चित्त की एकाग्रता ही योग है।

अग्नि पुराण के आगे के अध्यायों (379) में जहाँ भगवत् स्वरूप का वर्णन तथा ब्रह्मभाव की प्राप्ति का उपाय बताया गया है, वहाँ पुनः कहा गया है कि —

**आत्ममानसप्रत्यक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।**

**तस्या ब्रह्मणि संयोग योग इत्यभिधीयते॥ 379/25॥**

अर्थात् मन की गति जो आत्म-मन की प्रत्यक्षता से भिन्न है। ब्रह्म के साथ उस मिलन को योग कहा जाता है।

योग मन की एक विशिष्ट अवस्था है जब मन मे आत्मा को और स्वयं मन को प्रत्यक्ष करने की योग्यता

आ जाती है। तब उसका ब्रह्म के साथ संयोग हो जाता है। संयोग का अर्थ है कि ब्रह्म की समरूपता उसमें आ जाती है। यह कमरूपता की स्थिति ही योग है। अग्निपुराण के इस योग लक्षण में पूर्वोक्ति याज्ञवल्क्य स्मृति के योग लक्षण से कोई भिन्नता नहीं है। मन का ब्रह्म के साथ संयोग वृत्तिनिरोध होने पर ही सम्भव है।

विषयों में आसक्त हुआ मन बंधन का कारक होता है और वही सब विषयों से निवृत्त हो जाता है तो ज्ञान प्राप्ति में सहायक होता है। अतः मन को विषयों से हटाकर ब्रह्मस्वरूप श्रीहरि का स्मरण करना चाहिए। जैसे चुंबक पत्थर लोहे को अपनी ओर खींच लेता है, उसी प्रकार जो ब्रह्म का ध्यान करता है, उसे वह ब्रह्म अपनी शक्ति से अपने स्वरूप में मिला लेता है। अपने प्रयत्न की अपेक्षा से जो मन की विशिष्ट गति होती है, उसका ब्रह्म से संयोग होना ही 'योग' कहलाता है। जो पुरुष स्थिरभाव से समाधि में स्थित होता है, वह परब्रह्म को प्राप्त होता है।

अग्नि पुराण में आगे के श्लोकों में पुनः कहा गया है कि "अतः यम, नियम, प्रत्याहार, प्राणजय, प्राणायाम, इंद्रियों को विषयों की ओर से हटाने तथा उन्हें अपने वश में करने आदि उपायों के द्वारा चित्त को किसी शुभ आश्रय में स्थापित करें। ब्रह्म ही चित्त का शुभ आश्रय है। वह 'मूर्त' और 'अमूर्त' रूप से दो प्रकार का है। अमूर्त रूप का ध्यान पहले कठिन होता है अतः प्रारंभ में मूर्त काचिंतन करते हुए अमूर्त की ओर जाना चाहिए।

**कूर्म पुराण में लिखा है कि —**

**मदृयेकचित्ता योगो वृत्त्यन्तरनिरोधतः ॥११॥**

अर्थात् वृत्तिनिरोध से प्राप्त एकाग्रता ही योग है।

लिंग पुराण के अध्याय आठ में अष्टांगयोग द्वारा शिव आराधना के सम्बन्ध में महर्षि व्यास ने योग का वर्णन करते हुए कहा है कि

**सर्वार्थज्ञाननिष्पत्तिरात्मनो योग उच्यते ।**

**एकाग्रता एकाग्रता भवेच्चौव सर्वदा तत्प्रसादतः ॥८/३॥**

अर्थात् समस्त अर्थों से संबंध रखने वाले ज्ञान की निष्पत्ति ही आत्मा का योग कहा जाता है। इसलिए योगज धर्म रूप एक अतिरिक्त सन्निकट ज्ञान में स्वीकार किया जाता है। वह योगज युक्त और युज्जान के भेद से दो प्रकार का होता है। जो युक्त होता है उसे तो सर्वदा सभी कुछ का भान होता रहता है और युज्जान योगी जिसमें भी ध्यान करता है उसी समय उसे भान हुआ करता है। उसके प्रमाद से सर्वदा एकाग्रता अर्थात् मन का एक ही स्थान या उपादेय लक्ष्य पर स्थिरता हो जाती है।

आत्मा में उत्पन्न होने वाले सभी विषयों की जागरूकता को योग के रूप में जाना जाता है। यह केवल भगवान की कृपा से है कि कोई अपने मन को योगाभ्यास के लिए केंद्रित कर सकता है। आत्मा को समस्त विषयों की प्राप्ति होना योग कहा जाता है। उक्त श्लोक का अभिप्राय योगसिद्धि के फल का वर्णन करना है। समस्त विषयों को प्राप्त करने का सामर्थ्य योग की एक विभूति है। यह योग का लक्षण नहीं है। वृत्तिनिरोध के बिना यह सामर्थ्य प्राप्त नहीं हो सकता। चित्त वृत्तियों का निरोध मन का संयोग ब्रह्म में करता है। वास्तविकता में योग वह माध्यम है जो आत्मा का संयोग परमात्मा के साथ होना संभव करता है। आत्मा के लिए जाने जाने वाले विषय उसका वास्तविक स्वरूप और ईश्वर का स्वरूप है और इसके जानना ही योग का लक्ष्य है।

स्कन्द पुराण के खण्ड चार काशीखण्ड में लिखा गया है कि—

**यत्समत्वं द्वयोरत्र जीवात्मपरमात्मनोः ।**

**सनष्टसर्वसंकल्पः समाधिरभिधीयते ॥ २७ ॥**

यह श्लोक कहता है कि जीवात्मा और परमात्मा की समता समाधि कहा गया है और यही योग है। वृत्तिनिरोध की अवस्था में ही जीवात्मा और परमात्मा की यह समता और दोनों का अविभाग हो सकता है।

स्कन्द पुराण में ही आगे कहा गया है।

परमात्मा और आत्मा की अभिन्नता को परम योग कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि समाधि ही योग है।

## बोध प्रश्न

### टिप्पणी:

(क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

12. अग्निपुराण में योग को किस प्रकार किया गया है ?

.....

.....

.....

13. 'मदृयेकचित्ता योगो वृत्त्यन्तरनिरोधतः' श्लोक का अर्थ स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

14. स्कन्द पुराण के अनुसार योग क्या है ?

.....

.....

.....

15. वैशेषिक दर्शन के अनुसार योग क्या है ?

.....

.....

.....

### 5.4.5 विभिन्न धर्मों और दर्शनों में योग की परिभाषाएँ

जैन दर्शन जो भारत के सबसे प्राचीन दर्शनों में से एक है। जैन दर्शन में योग को सम्यक जीवन का आधार माना गया है। जैन दर्शन के तीन रत्न हैं जिन्हें रत्नत्रय भी कहा जाता है, वह सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र को मोक्ष के मार्ग के रूप में स्वीकार किया गया है। बौद्ध दर्शन में भी मुक्ति की बात कही गयी है। बौद्ध दर्शन में क्षणिक और दुःखमय संसार से मुक्त हो जाने के प्रयास को योग-जीवन का आरंभ माना गया है जिसकी चरम परिणति 'समाधि' में होती है। प्रज्ञा, शील तथा समाधि को बौद्ध दर्शन योग की संज्ञा देता है।

जैन धर्म सम्बन्धी योगशास्त्र में कहा गया है कि –

**योगः सर्वविविपद् वल्ली-विलाने परशुः शितः।**

**अमूलमन्त्रतन्त्रम् च, कार्मणं निर्वृतिप्रिय॥ 5॥**

अर्थात् योग सर्व-विपत्तिरूप लताओं के समूह को काटने के लिए तीखीधार वाला कुठार है तथा मोक्ष-लक्ष्मी को वश करने के लिए यह जड़ी-बूटी, मन्त्र और तन्त्र से रहित कार्मण वशीकरण है।

योग आध्यात्मिक, भौतिक, दैविक, सर्व-विपत्तिरूपी लता समूह का छेदन करने के लिए तीक्ष्ण परशु के समान है। वह अनर्थ फल का नाश करता है। उत्तरार्द्ध के आधे श्लोक से योग से परम पुरुषार्थरूप मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति बताई है। जगत में कार्मण (जादू) करने के लिए जड़ी-बूटी, मन्त्र-तन्त्र की विधि करनी पड़ती है परन्तु योग जड़ी-बूटी, मन्त्र-तन्त्र के बिना ही मोक्ष-लक्ष्मी को वश में करने का अचूक उपाय है।

**भूयांसोऽपि हि पाप्मानः प्रलयं यान्ति योगतः।**

**चण्डवाताद् घनघना घनाघनघटा इव ।। 6 ।।**

अर्थात् प्रचंड वायु से जैसे घने बादलों की श्रेणी बिखर जाती है। वैसे ही योग के प्रभाव से बहुत से पाप भी नष्ट हो जाते हैं।

वैशेषिक दर्शन में योग को परिभाषित करते हुए लिखा गया है कि –

**तदनारम्भ आत्मस्य मनसि शरीरस्य दुःखाभावः संयोगः ।। (6/2/16)**

अर्थात् मन का आत्मा में स्थित होने पर उस का (मन के कर्म का जो) अनारंभ है, वह योग है, जो शरीर के दुःखाभाव का हेतु है।

जब योगी मन और आत्मा में स्थिर हो जाता है, तब बाह्य विषयों से रहित होकर मन का कार्य रुक जाता है। यह मन के काम का अंत है। इसे ही योग कहते हैं।

महाभारत के शान्तिपर्व में लिखा है कि “विद्या योगेन रक्षति” अर्थात् ज्ञान की रक्षा योग से होती है। योग वह माध्यम है जो ज्ञान की रक्षा करने में सहायक होता है। ज्ञान के उच्च स्तर की प्राप्ति योग से ही हो सकती है। योग के अभाव में परम ज्ञान की प्राप्ति कदापि नहीं की जा सकती।

घेरण्ड संहिता में योग को उस साधन के रूप में देखा गया है जो तत्त्वज्ञान में सहायक होता है। घेरण्ड संहिता के प्रथमोपदेश के श्लोक पाँच में उल्लिखित है –

**अभ्यासात् कादिवर्णानां यथाशास्त्राणि बोधयेत् ।**

**तथायोगसमासाद्य तत्त्वज्ञानं च लभ्यते ।। 5 ।।**

अर्थात् जैसे ककार आदि वर्णों का क्रम से अभ्यास करने से समस्त शास्त्रों का ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार योगाभ्यास करने से तत्त्वज्ञान हो जाता है। यह योगशास्त्र की महत्वपूर्ण सूचना है।

घेरण्ड संहिता में ही आगे के श्लोकों में योग को अग्नि के रूप में संबोधित किया गया है;

**आमकुम्भमिवाम्बस्थो जीर्यमाणः सदाघटः ।**

**योगानलेनसंदह्य घटशुद्धिं समाचरेत् ।। 8 ।।**

अर्थात् जैसे मिट्टी के कच्चे घड़े में जल भरने से घड़ा गल कर नष्ट हो जाता है। उसी को पका कर जल भरने से फिर नहीं गलता तथा जल भी नहीं निकलताय इसी तरह जीव का शरीर प्रतिदिन क्षीण हो रहा है। कच्चे घड़े की तथा शरीर की समानता है। शरीर का पक्कापन योगाग्नि द्वारा ही होता है। इसीलिए शरीर को दृढ़ करने के निमित्त योगाभ्यास करना चाहिए।

हठयोग प्रदीपिका के चतुर्थ अध्याय में कहा गया है कि –

**सलिबे सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगतः ।**

**तयात्ममनसोरैक्यं समाधिरभी धीयते ।। 5 ।।**

**यदा संक्षीयते प्राणो मानसं च प्रलीयते ।**

**तदा समरसत्वं च समाधिरभिधीयते ।। 6 ।।**

अर्थात् जिस प्रकार सिंधु देश में उत्पन्न हुआ लवण जल के विष के संयोग से साम्य को भजता है अर्थात् जल का संयोग होने से जल संग नामक मिल कर एकता को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार से जो आत्मा और मन की एकता है अर्थात् आत्मा में धारण किया हुआ मन आत्माकार होने से आत्मरूप को प्राप्त हो जाता है। आत्मा और मन की ये एकता ही समाधि है।

कहने का आशय यह है कि जिस प्रकार नमक जल में मिलकर जल की समानता को प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार जब मन वृत्तिशून्य होकर आत्मा के साथ ऐक्य को प्राप्त कर लेता है। मन की इस अवस्था का नाम समाधि है।

## योगवासिष्ठ महारामायण के अनुसार योग की परिभाषा –

योगवासिष्ठ की रचना महर्षि वशिष्ठ ने द्वारा की गयी है। योगवासिष्ठ को महारामायण के नाम से जाना जाता है। योगवासिष्ठ में कहा गया है कि योग वह मार्ग है जो साधक को संसार सागर से पार उतरने में सहायक होता है।

“मनः प्रशमनः उपायः योग इति धियते” जिसका अर्थ है कि योग मन को शांत करने की एक कुशल विधि है। योगिक विधियां सूक्ष्म और कुशल हैं और क्रूर बल का उपयोग नहीं करती हैं। मन का ज्ञान कुशल तरीके से इसे वश में करने की कुजी है।

### जैन दर्शन के अनुसार योग की परिभाषा—

योग शब्द जिस अर्थ में महर्षि पतंजलि द्वारा प्रयुक्त किया गया है, प्राचीन जैन वाङ्मय में, आगम-साहित्य में योग का अर्थ उस रूप में नहीं रहा है। जैन दर्शन में योग शब्द का कायिक, वाचिक, तथा मानसिक प्रवृत्तियों के अर्थ में है। जब साधना जगत में चित्त वृत्तियों के परिष्कार, अंतर्जीवन के सम्मार्जन, संशोधन, मन के नियमन आदि अर्थों में योग शब्द का प्रयोग बहुव्याप्त हो गया, तब जैन आचार्यों ने भी जैनदर्शन सम्मत अध्यात्मसाधना क्रम को जैन योग के रूप में एक नया मोड़ दिया। विभिन्न विषयों के महान विद्वान आचार्य हरिभद्र जैन जगत के प्रथम ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने योग शब्द की एक नूतन मौलिक व्याख्या की। ‘योग विशिका’ में उन्होंने उल्लिखित किया है कि ‘मोक्खेण जोयणाओ जोगो सव्वो वि धम्म वावारो’ जिसका सार यह है कि धर्म-साधना के समग्र उपक्रम योग है। योग की परिभाषा बताते हुए जैन आचार्य यज्ञोविजय अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ द्वात्रिंशिका में कहते हैं –

### “मौक्षेण योजनादेव योगो इत्र निरुध्यते” (10— 1)

अर्थात् योग के जिन साधनों से आत्मतत्त्व की शुद्धि होती है, वह साधन योग है। योग साधना के लिए जैन धर्म में महाव्रतों के अनुसरण की बात कही गयी है। ये पंच महाव्रत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह हैं जिनकी बात योगांग यम भी करता है। इनके अतिरिक्त जैन आचार्यों ने 10 धर्मों का पालन बताया है यक्षमा, मृदुला, सरलता, शौच, सत्य, सयंम, त्याग, उदासिन्य, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा।

### बौद्ध दर्शन में योग की परिभाषा –

बौद्ध दर्शन एक नास्तिक दर्शन है जो ईश्वर की सत्ता और वेदों पर विश्वास नहीं करता परन्तु अन्य भारतीय धर्म तथा दर्शनों की भाँति बौद्ध दर्शन भी मोक्ष या निर्वाण प्राप्ति की बात करता है। निर्वाण की प्राप्ति के उपाय बौद्ध दर्शन में बताये गए हैं। निर्वाण समाधि का ही पर्यायवाची शब्द है। योग में जिसे समाधि कहा गया है, उसे महर्षि पतंजलि ने कैवल्य की संज्ञा दी है, जैन मुनियों ने इसे मुक्ति कहा है, और सनातन धर्म में इसे मोक्ष का नाम दिया है। यदि देखा जाए तो निर्वाण के कई नाम हैं परन्तु इसका एक ही अर्थ है कि मोक्ष या समाधि की प्राप्ति। और यही योग भी है। निर्वाण प्राप्ति हेतु बौद्ध दर्शन ने अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करने को कहा है जो निम्नवत हैं –

1. सम्यक् दृष्टि
2. सम्यक् संकल्प
3. सम्यक् वाक्
4. सम्यक् कर्म
5. सम्यक् आजीव या आजीविका
6. सम्यक् व्यायाम
7. सम्यक् स्मृति
8. सम्यक् समाधि

### 5.4.6 अन्य विद्वानों के अनुसार योग की कुछ अन्य परिभाषाएँ

महर्षि व्यास के अनुसार, ‘योगः समाधिः’। महर्षि व्यास ने योग को समाधि बतलाया है। योग समाधि का

दूसरा नाम है। जब आत्मा को सच्चिदानंद परमात्मा का बोध हो जाता है, यही योग है।  
मनुस्मृति में कहा गया है कि —

**ध्यानं योगेन सम्यश्यदगतिस्यान्तरात्मनः (16, 731)**

अर्थात् ध्यान योग से आत्मा को जाना जा सकता है इसलिए ध्यान भी योग के लिए ही होना चाहिए।  
सांख्य दर्शन में वर्णित है कि —

**पुरुष प्रकृत्योतियोगेपि योग इत्यभिधीयते ।।**

अर्थात् पुरुष एवं प्रकृति के पार्थक्य को स्थापित कर पुरुष का स्व स्वरूप में अवस्थित होना ही योग है।  
याज्ञवल्क्य ने लिखा गया है कि —

**संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मा परमात्मनोः ।।**

अर्थात् जीवात्मा तथा परमात्मा का संयोग—एकीकरण—योग है। आत्मा जब परमात्मा से मिल जाती है तो यह मिलन की स्थिति ही योग है। यह आत्मा तथा परमात्मा का मेल मन को पवित्र किये बिना और ऊर्ध्व गति दिए बिना संभव नहीं है। सांसारिकता से मन को हटाकर तथा उसे ऊँचाई पर ले जाकर परमात्मा से प्रेम कर ही जीव अपनी आत्मा का परमात्मा के साथ एकीकरण कर सकता है।

विदुरनीति में कहा गया है कि —

**योगेन रक्षते धर्मो विद्या योगेन रक्षते ।।**

अर्थात् योग से धर्म और विद्या दोनों की रक्षा होती है।

श्रीगुरुग्रंथ साहिब में कहा गया है कि, निष्काम कर्म करने में सच्चे धर्म का पालन, यही वास्तविक योग है। परमात्मा की शाश्वत और अखण्ड ज्योति के साथ अपनी ज्योति को मिला देना ही वास्तविक योग है।  
चरक कहते हैं कि हम सभी अनन्त शक्ति के स्वामी हैं। योग हमें इसी शक्ति के रहस्य से परिचित कराता है।

श्रीराम शर्मा आचार्य ने कहा है कि **‘जीवन जीने की कला ही योग है।’**

रांगेय राघव ने लिखा है कि **‘शिव और शक्ति का मिलन योग है।’**

महादेव देसाई ने योग को शरीर, मन और आत्मा की समग्र शक्तियों को परमात्मा से संयोजित करने का माध्यम माना है।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् जो भारत के दूसरे राष्ट्रपति थे, ने योग को एक प्रकाश के रूप में परिभाषित किया है। डॉ. राधाकृष्णन् ने योग के विषय में कहा है कि— योग वह पुरातन पद्य है, जो व्यक्ति को अँधेरे से प्रकाश में लाता है।

स्वामी शिवानंद सरस्वती के अनुसार, योग उस साधना प्रणाली का नाम है, जिसके द्वारा जीवात्मा एवं परमात्मा की एकता का अनुभव होकर परमात्मा के साथ आत्मा का संयोग होता है।

### **बोध प्रश्न**

#### **टिप्पणी:**

(क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

16. महाभारत के शांति पर्व में योग के स्वरूप की व्याख्या किस रूप में हुई है ?

.....

.....

.....

17. मौक्षेण योजनादेव योगो इत्र निरुध्यते' का अर्थ स्पष्ट करें।

18. मनुस्मृति में योग के संदर्भ में क्या कहा गया है ?

19. 'संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मा परमात्मनोरु' से क्या तात्पर्य है ?

## 5.5 सारांश

प्रस्तुत अध्याय में हमने योग के विभिन्न अर्थों के साथ योग के लिए दी गयी भिन्न-भिन्न परिभाषाओं का अध्ययन किया। हमने देखा की ग्रंथों तथा दर्शनों में योग का उल्लेख हुआ है और यह उल्लेख भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ है। इतना ही नहीं, एक ही ग्रंथ में योग का उल्लेख अलग-अलग अर्थों में किया गया है। योग जिसकी उत्पत्ति संस्कृत भाषा के युजिर् धातु से हुई है, का अर्थ अत्यंत विशद और व्यापक है। शाब्दिक अर्थ के रूप में हम योग का आशय बाँधना, युक्त करना, जोड़ना, सम्मिलित करना, से लेते हैं परन्तु यह अर्थ मात्र यहीं तक सीमित नहीं है। योग का आशय उस एकीकरण से है जहाँ जीवात्मा तथा परमात्मा का एकीकरण अथवा मनुष्य के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं या पक्षों जैसे शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, आध्यात्मिक आदि का सम्मिलन हो जाता है। अन्य अर्थों में मानव का उसके पर्यावरण के साथ समन्वयन योग के नाम से जाना जाता है। योग वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति के ज्ञान-चक्षु खुलते हैं और वह अपने अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करते हुए विवेकवान बनता है।

## 5.6 अभ्यास के प्रश्न

1. योग के अर्थ को स्पष्ट करते हुए वेदों के आधार पर योग को परिभाषित करें।
2. श्रीमद्भागवतगीता में योग के लिए दिए गए विभिन्न अर्थों और परिभाषाओं की व्याख्या करें।
3. उपनिषदों और पुराणों में योग के लिए दी गयी विभिन्न परिभाषाओं का वर्णन करें। आत्मानुभूति से आप क्या समझते हैं?
4. विभिन्न धर्मों और ग्रंथों में योग उपस्थित है। इस कथं के संदर्भ में विभिन्न आस्तिक और नास्तिक दूरक्षाओं और धारों के आधार पर योग के अर्थ को स्पष्ट करें।

## 5.7 चर्चा के बिंदु

1. योग आस्तिक और नास्तिक दोनों ही धर्म तथा दर्शनों में स्वीकार्य है। इस कथन के पक्ष में अपने तर्क प्रस्तुत करें।
2. श्रीमद्भागवतगीता मुख्यतः कर्मयोग का वर्णन करती है। इस तर्क के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करें।

## 5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. योग शब्द की उत्पत्ति युज अथवा युजिर् धातु से हुई है।
2. युज् संयमने' का तात्पर्य नियंत्रित अथवा निरुद्ध होने के संदर्भ में लिया जाता है।

3. जैन मत में भी आत्मा (जीव) का जड़ (अजीव) पदार्थों के साथ सम्मेलन 'योग' कहलाता है।
4. पतंजलि के द्वारा लिखित योगसूत्र योग दर्शन का मूल ग्रन्थ है।
5. योगसूत्र के अनुसार **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"** अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना अथवा उनको संयमित करना ही योग है।
6. इस ऋचा के अनुसार योग का आशय है कि विद्वानों का कोई भी कर्म बिना योग ने सिद्ध नहीं होता। योग व्यक्ति के कर्म में व्याप्त है। ऋग्वेद में भी यह माना गया है कि योग चित्तवृत्तियों का निरोध है, वह कर्तव्य कर्ममात्र में व्याप्त है।
7. गीता का तृतीय अध्याय कर्मयोग के रूप में जाना जाता है।
8. गीता के श्लोक **'योगः कर्मसु कौशलम्'** का आशय है कि योग से ही कर्मों में कुशलता है।
9. उपनिषदों की कुल संख्या 108 है।
10. **'श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैहि'** का आशय है कि श्रद्धा, भक्ति, ध्यान के द्वारा आत्मा का ज्ञान ही योग है।
11. चित्त के दो हेतु वासना और प्राण हैं।
12. अग्निपुराण के अनुसार ब्रह्म में चित्त की एकाग्रता ही योग है।
13. मद्दयेकचित्तता योगो वृत्त्यन्तरनिरोधतः' श्लोक के अनुसार वृत्तिनिरोध से प्राप्त एकाग्रता ही योग है।
14. स्कन्द पुराण के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा की समता समाधि कहा गया है और यही योग है।
15. वैशेषिक दर्शन के अनुसार मन का आत्मा में स्थित होने पर उस का (मन के कर्म का जो) अनारंभ है, वह योग है, जो शरीर के दुःखाभाव का हेतु है।
16. महाभारत के शांति पर्व में योग के स्वरूप की व्याख्या ज्ञान की रक्षा करने वाले साधन के रूप में की गयी है।
17. **'मौक्षेण योजनादेव योगो इत्र निरुध्यते'** का अर्थ है कि अर्थात् योग के जिन साधनों से आत्मतत्त्व की शुद्धि होती है, वह साधन योग है।
18. मनुस्मृति में कहा गया है कि ध्यान योग से आत्मा को जाना जा सकता है इसलिए ध्यान भी योग के लिए ही होना चाहिए।
19. **'संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मा परमात्मनोः'** का तात्पर्य है कि जीवात्मा तथा परमात्मा का संयोग—एकीकरण—योग है।

---

## 5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

1. सिन्हा, जे. (2010). भारतीय दर्शन. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड
2. हिरियन्ना, एम. (2018). भारतीय दर्शन की रूपरेखा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन

---

## इकाई — 06 : स्वास्थ्य व एकीकृत जीवन हेतु योग

---

### इकाई की संरचना

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 इकाई के उद्देश्य
- 6.3 आधुनिक जीवन में स्वास्थ्य की संकल्पना
- 6.4 भारतीय शास्त्रों में स्वास्थ्य संबंधी संकल्पनाएं
- 6.5 स्वस्थ जीवन की आवश्यकताएं
  - 6.5.1 व्यवहार में संयम
  - 6.5.2 भोजन संबंधी आदतें
  - 6.5.3 काम और आराम के बीच संतुलन
  - 6.5.4 स्वच्छता
  - 6.5.5 व्यायाम
- 6.6 स्वास्थ्य पर योग अभ्यासों का प्रभाव
  - 6.6.1 आसन और मुद्रा
  - 6.6.2 प्राणायाम और बंध
  - 6.6.3 शुद्धिक्रिया
    - 6.6.3.1 नेति
    - 6.6.3.2 धौती
    - 6.6.3.3 बस्ती
    - 6.6.3.4 नौली
    - 6.6.3.5 त्राटक
    - 6.6.3.6 कपालभाति
- 6.7 धारणा और ध्यान
- 6.8 समाज के विभिन्न वर्गों के द्वारा विविध लाभों हेतु योग का उपयोग
- 6.9 स्वास्थ्य के संबंध में योग के उद्देश्य
- 6.10 योग द्वारा स्वस्थ तथा एकीकृत जीवन की प्राप्ति
- 6.11 सारांश
- 6.12 अभ्यास के प्रश्न
- 6.13 चर्चा के बिंदु
- 6.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 6.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

## 6.1 प्रस्तावना

---

योग कोई व्यवस्था नहीं अपितु एक अवस्था है। इसलिए योगसूत्र का आरंभ करते हुए महर्षि पतंजलि लिखते हैं कि “अथ योगानुशासनम्” अर्थात् अब योग किया जाता है, अथवा मैं योग का अभ्यास करने जा रहा/रही हूँ। इससूत्र में महर्षि पतंजलि ने योग के साथ अनुशासन पद का प्रयोग करके योग शिक्षा की अनादिता सूचित की है और अथ शब्द से उसके आरंभ करने की प्रतिज्ञा करके योगसाधना की कर्तव्यता का उल्लेख किया है। योग को कई बार हम मात्र व्यायाम की एक शैली के रूप में देखते हैं। पश्चिम में या यूँ कहें कि आधुनिक समय में हम योग को इसी तरह से देखते हैं परन्तु यह पूर्ण परिभाषा नहीं है बल्कि योग का मात्र एक पहलू है। यदि हम इसकी तुलना समुद्र में तैरते उस हिमशैल से करें जिसका मात्र दस प्रतिशत भाग पानी के ऊपर होता है और शेष नब्बे प्रतिशत हिस्सा पानी के भीतर रहता है। योग को मात्र व्यायामकी एक शैली के रूप में देखना समुद्र में तैरते हिमशैल के जल के ऊपर के दस प्रतिशत हिस्से जैसा ही है। योग के कुल आठ अंग हैं और आसन या प्राणायाम उनमें से एक अंग ही हैं। सही अर्थों में योग जीवन जीने का एक तरीका है। यह व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक तथा आध्यात्मिक रूप से अनुशासित रखने का एक माध्यम है। जैसा कि महर्षि पतंजलि द्वारा लिखा गया है तथा जिनका उल्लेख इस अध्याय के प्रारंभ में किया गया है कि योग एक प्रकार का अनुशासन है जिसके द्वारा शारीरिक या दैहिक स्वास्थ्य संबंधी लाभ प्राप्त करना न्यून स्तर का लाभ है। योग का अंतिम तथा वास्तविक लक्ष्य समाधि की स्थिति की प्राप्ति है जो मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है जो लगभग सभी भारतीय दर्शनों का अंतिम लक्ष्य है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि जो मुमुक्षु हो वही मात्र योगाभ्यास करे। मुमुक्षुत्व के बिना भी योगांगों का अनुसरण स्वास्थ्य लाभ हेतु किया जा सकता है। प्रस्तुत पाठ में योग के द्वारा एक स्वस्थ तथा एकीकृत जीवन किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है का वर्णन किया गया है।

---

## 6.2 इकाई के उद्देश्य

---

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि –

1. आधुनिक समय में स्वास्थ्य की संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे।
2. भारतीय शास्त्रों में वर्णित स्वास्थ्य की संकल्पना का वर्णन कर सकेंगे।
3. स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक चीजों का वर्णन कर सकेंगे।
4. स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाले योग अभ्यासों कि व्याख्या कर सकेंगे।
5. स्वस्थ तथा एकीकृत जीवन में योग की भूमिका कि विवेचना कर सकेंगे।

---

## 6.3 आधुनिक जीवन में स्वास्थ्य की संकल्पना

---

आज के विकल्पों और शोर के चक्रव्यूह में, हर जगह लोग काम और जीवन के बीच संतुलन की तलाश कर रहे हैं। यदि संतुलन को परिभाषित करें तो यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। संतुलन व्यक्ति को स्थिरता देती है परन्तु स्वयं में यह कभी भी स्थिर नहीं होती है। जीवन में संतुलन लाने के लिए जिस चीज की वास्तव में आवश्यकता है वह है एकीकृत जीवन की प्राप्ति। अब यहाँ प्रश्न उठता है कि एकीकृत शब्द का क्या अर्थ है। एकीकृत का अर्थ प्रतीत होने वाले असमान भागों का समामेलन है। अगला प्रश्न यह उठता है कि एकीकृत जीवन की प्राप्ति किस प्रकार से की जा सकती है।

हमें एक एकीकृत जीवन की प्राप्ति के लिए अपने व्यवसाय, परिवार, पास-पड़ोस, समुदाय और संगी-साथियों के सहित अपने व्यक्तिगत जीवन और पेशेवर जीवन के प्रमुख तत्वों को एक साथ लाने की आवश्यकता है, ताकि प्रत्येक वातावरण में हमारा व्यक्तित्व एक ही रहे या यूँ कहें कि प्रत्येक स्थिति में हम एक ही व्यक्ति हो सकें। अपने कार्यस्थल तथा व्यक्तिगत जीवन को एकीकृत करना हम सभी के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। जीवन को एकीकृत बनाने में उन घटकों का योगदान होता है जो हमारी आत्मा का पोषण करते हैं, हमें पूरी तरह से कार्य करने वाले मनुष्यों में विकसित होने की अनुमति देते हैं। ये घटक हमें अपने जीवन को एकीकृत बनाते हुए हमें पूर्णता प्रदान करते हैं।

इन दो प्रश्नों के उत्तर के पश्चात् तीसरा प्रश्न उठता है कि योग क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में योग के

विषय में यह कहा जा सकता है कि यह एक शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, भावनात्मक, और आध्यात्मिक अनुशासन है, साथ ही यह जीवन को जीने का एक तरीका भी है। योग को आत्म-परिवर्तन की एक एकीकृत प्रणाली के रूप में जाना जा सकता है जिसका अंतिम या परम उद्देश्य सदेह तथा आध्यात्मिक मुक्ति अथवा ज्ञानोदय है, लेकिन योग का उपयोग जीवन में अन्य लाभों की प्राप्ति के लिए भी किया जा सकता है। योग के अभ्यास के चार मुख्य पहलू हैं। शरीर, श्वास, मन और जीवन। योग वह माध्यम है जो इन सभी पर नियंत्रण रखना सिखाता है जिससे व्यक्ति पशुओं के समान दैहिक सुखों में न फँसा रहे बल्कि अपने जीवन के वृहत्तर लक्ष्यों की प्राप्ति कर सके।

## 6.4 भारतीय शास्त्रों में स्वास्थ्य संबंधी संकल्पनाएँ

भारतीय परिप्रेक्ष्य तथा आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थ होना व्यक्ति की वह स्थिति है जब उसका शरीर, मन, समस्त इंद्रियाँ तथा आत्मा सभी पूर्णतया स्वस्थ हों। यदि स्वस्थ शब्द का संधिविच्छेद किया जाए तो यह स्वस्थ से बना है। स्व का अर्थ स्वयं तथा स्थ का अर्थ है अवस्थित होना। अर्थात् जब व्यक्ति का स्वयं में स्थित होना ही स्वस्थ शब्द का शाब्दिक अर्थ है। स्व के अन्तर्गत शरीर, मन, अंतःकरण तथा आत्मा को सम्मिलित किया जाता है। जब यह सभी स्थिर तथा सही स्थान पर स्थित होते हैं तो व्यक्ति स्वस्थ के रूप में गिना जाता है और जब इनमें से कोई भी अपने नियत स्थान पर नहीं होता तो व्यक्ति की उस स्थिति को अस्वस्थता की संज्ञा दी जाती है। कहा जाता है कि एक स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निवास होता है और एक बीमार शरीर मनुष्य के मन को बीमार बनाता है। अर्थात् एक व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ है तो उसका मन भी स्वस्थ रहता है और यदि व्यक्ति शारीरिक व्याधियों से घिरा हुआ है ऐसे में उसका मन भी रोगग्रस्त हो जाता है। शारीरिक रूप से रोगमुक्त होने पर हमारा मन भी प्रफुल्लित एवं ऊर्जावान महसूस करता है। यही स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मन ही एक स्वस्थ तथा एकीकृत जीवन के कुंजी है।

आयुर्वेद के ग्रंथों में उल्लिखित है कि –

**धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः।**

**सर्वकार्येष्वन्तरङ्गं शरीरस्य हि रक्षणम्॥**

धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष इन चारों ही पुरुषार्थों की प्राप्ति हेतु मुख्य साधन मनुष्य का निरोग और स्वस्थ शरीर है। अतः सभी कार्यों का निष्पादन करने वाले इस शरीर की रक्षा अवश्य ही करनी चाहिए। साथ ही शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य भी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। किसी एक प्रकार के स्वास्थ्य का क्षय होने पर दूसरे का भी क्षय होने लगता है। जब व्यक्ति का शरीर स्वस्थ होता है तब उसका मन भी स्वस्थ रहता है। स्थूल शरीर की अस्वस्थता सूक्ष्म मन को अस्वस्थ बनाती है।

महाभारत के अश्वमेध पर्व के बारहवें अध्याय में वर्णित है कि –

**शरीराज्जायते व्याधिर्मानसो नैव संशयः।**

**मानसाज्जायते व्याधिः शरीरो नैव संशयः॥ 2॥**

अर्थात् जब शरीर में व्याधि उत्पन्न होती है तब मन में भी व्याधि उत्पन्न हो जाएगी, इसी भाँति जब मन में व्याधि उत्पन्न होगी तब शरीर में भी व्याधि उत्पन्न होगी, इस बात में कोई संशय नहीं है।

मोक्ष की प्राप्ति का इच्छुक व्यक्ति आध्यात्मिक ज्ञान का अभिलाषी होता है साथ ही उसे आत्मसाक्षात्कार की आवश्यकता भी होती है। परन्तु इन दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति का माध्यम व्यक्ति का यह शरीर ही है।

वर्तमान समय में विश्व की एक बड़ी जनसंख्या बेहतर स्वास्थ्य हेतु आसनों पर विश्वास करती है और इन आसनों का अभ्यास करती है परन्तु स्वस्थ जीवन के लिए योगासनों का अभ्यास मात्र एक हिमशैल के समान है। वास्तविकता में योग इससे बहुत विस्तृत है। योग वास्तविकता में जीवन जीने की एक शैली है जो हमारे शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक एवं आध्यात्मिक रूप से अनुशासित करती और रखती है। यदि योग के परम लक्ष्य को देखा जाए तो वह हमें आत्म-परिवर्तन की ओर अग्रसित करते हुए समाधि की ओर ले जाती है। समाधि वह अवस्था है जहाँ ज्ञानोदय होता है, हम आत्मवास्तवीकरण को प्राप्त करते हैं परन्तु इसके प्राप्ति के क्रम में हम इससे जुड़े अन्य लाभों को प्राप्त करने में भी सफल होते हैं।

सामान्य रूप में योग को एक ऐसी गतिविधि के रूप में देखा जाता है जिसका आधार आध्यात्मिक है। वस्तुतः योग जीवन जीने की एक कला है जिसकी पृष्ठभूमि मात्र आध्यात्मिक ना होकर दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक भी है। योग के द्वारा समाधि के स्थिति की प्राप्ति की इच्छा सामान्य मनुष्यों के द्वारा नहीं की जाती है। एक सामान्य व्यक्ति के लिए योग के प्रारम्भिक चरणों का अभ्यास करते हुए एक स्वस्थ, शांत तथा सुखी जीवन की कामना करता है। वह योगाभ्यास के माध्यम से अपने शरीर को सक्रिय तथा ऊर्जावान बनाना चाहता है। एक स्वस्थ, निरोग तथा गुणवत्तापूर्ण जीवन के लिए आत्म अनुशासन अनिवार्य है। यदि व्यक्ति अनुशासित नहीं है तो व्यक्ति का शरीर रोगों का घर बन जाता है। व्यक्ति का आत्म अनुशासन उसे योग्य बनाता है कि वह सही और गलत में अंतर कर सके, समय तथा परिस्थिति के अनुसार अपने चित्त को मोड़ सके, संतोषी बने, अवसरों के प्रतिकूल होने पर विचलित ना हो, बल्कि हर एक स्थिति का प्रसन्न भाव से सामना करता है। व्यक्ति के यह गुण उसे शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक रूप से सबल तथा सक्षम बनाते हैं जिससे वह अपने जीवन में आने वाली हर शारीरिक तथा मानसिक समस्याओं का सफलतापूर्वक सामना कर सके।

यदि वर्तमान समय की जीवनशैली को देखा जाए तो मनुष्य की प्रवृत्तियाँ मनुष्योन्मुख रह ही नहीं हैं। व्यक्ति खाद्य-अखाद्य सभी प्रकार के पदार्थों को खा रहा है, दूसरों को परेशान कर या उन्हें कष्ट में देख सुखी होता है, जीव हत्या करता है, दूसरों की चीजें हड़पना चाहता है, रात्रि जागरण करता है, तथा दिन में सोता है। व्यक्ति ने आचार-विचार का त्याग कर पशुवृत्तियों का अंगीकरण कर लिया है। व्यक्ति के यह क्रियाकलाप उसे क्षणिक सुख और हर्ष तो दे रहे हैं परन्तु यह दीर्घकालिक नहीं है। ऐसे क्रियाकलापों ने व्यक्ति को रोगों और व्याधियों का घर बना दिया है। आज हम सभी एक भयावह दौर से गुजर रहे हैं जहाँ व्यक्ति अपने द्वारा सृजित की गयी समस्याओं से घिरा हुआ है। ऐसे में इन समस्याओं के समाधान के लिए योग एक सर्वोपयुक्त माध्यम है जो व्यक्ति के जीवन में सामंजस्य, शांति और संतुलन ला सकता है।

स्वस्थ वह है जिसका चित्त, मन एवं आत्मा स्व में स्थित है। योग के अनुसार रोगों के होने का मूल कारण मन या चित्त की अस्थिरता है। चित्त की वृत्ति स्वयं में चंचल है। पातंजलि योग सूत्र में कहा गया है कि –

**वृत्तिसारूप्यमित्ररत ॥ ४ ॥**

अर्थात् दूसरे समय में (द्रष्टा का) वृत्ति के सदृश स्वरूप होता है।

जब तक योग साधनों के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध नहीं हो जाता है, तब तक द्रष्टा अपने चित्त की वृत्तियों के अनुरूप अपना स्वरूप समझता है। उसे अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है। अतः चित्त वृत्ति निरोध रूप योग का अवश्य कर्तव्य है। इस वृत्तिसारूप्यता के कारण के ही धीरे-धीरे शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। पतंजलि ने चित्त के कुल नौ प्रकार के विक्षेपों की चर्चा की है। ये नौ विक्षेप व्याधि, सत्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, अनवस्थि तत्त्व, अलब्ध भूमिकत्व, भ्रांति दर्शन हैं। इन नौ विक्षेपों के साथ सहभुव भी हैं जिनकी संख्या चार है। ये चार सहभुव दुःख, दोरमनष्य, अंगमेंजयत्व तथा श्वास-प्रश्वास हैं। इन विक्षेपों तथा सहभुवों के कारण ही व्यक्ति को शारीरिक तथा मानसिक कष्ट तथा व्याधियाँ घेरे रहती हैं। योग इनके निवारण का मार्ग है।

घेरण्ड संहिता में श्लोक आठ में उल्लिखित है कि –

**आमकुम्भमिवाम्भस्थो जीर्यमाणरू सदा घटः।**

**योगानलेन सन्दह्य घटशुद्धिं समाचरेत् ॥ ८ ॥**

अर्थात् जिस प्रकार कच्चे घड़े में पानी डालने से वह निरन्तर गलना शुरू हो जाता है। उस कच्चे घड़े के समान ही मनुष्य का शरीर भी प्रतिक्षण कमजोर होता रहता है। जिस तरह से कच्चे घड़े को अग्नि में डालने से घड़ा पक जाता है और उसके पश्चात् वह पानी डालने से नहीं गलता है उसी तरह से शरीर रूपी घड़े को योग रूपी अग्नि में तपाने से वह पूरी तरह से शुद्ध हो जाता है।

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए घेरण्ड संहिता में अगला श्लोक है जिसमें स्वास्थ्य के सात साधनों का वर्णन किया गया है।

**शोधनं दृढता चौव स्थैर्य धैर्यञ्च लाघवम्।**

**प्रत्यक्षञ्च निर्लिप्तञ्च घटस्य सप्तसाधनम् ॥ ९ ॥**

उपरोक्त श्लोक में शरीर को दृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए योग के सात साधनों की चर्चा की गई है। ये सात साधन हैं—शोधन, दृढ़ता, स्थिरता, धैर्य, हल्कापन, प्रत्यक्षीकरण तथा निर्लिप्तता।

इन सभी सात साधनों के लक्षणों या लाभों का वर्णन संहिता के अगले श्लोक में किया गया है।

**षट्कर्मणा शोधनञ्च आसनेन भवेद्दृढम्।**

**मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता॥ 10॥**

**प्राणायामाल्लाघवञ्चध्यानात् प्रत्यक्षमात्मनि।**

**समाधिना च निर्लिप्तं मुक्तिरेवं न संशयः॥ 11॥**

जिसका तात्पर्य है कि षट्कर्म अर्थात् शरीर तथा मन की शुद्धि हेतु कुल छह क्रियाओं का अभ्यास करना चाहिए। इनमें आसनों के अभ्यास से दृढ़ता, मुद्राओं के अभ्यास से स्थिरता, प्रत्याहार के द्वारा धैर्य, प्राणायाम के द्वारा हल्कापन, ध्यान के माध्यम से प्रत्यक्षीकरण और समाधि के माध्यम से निर्लिप्तता की प्राप्ति होती है। और इनके अभ्यास से मुक्ति की प्राप्ति के विषय में किसी नहीं प्रकार का कोई सन्देह नहीं रहता है।

**पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।**

**न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥**

जब योगी के समक्ष योग के द्वारा योग के पाँच गुण प्रकट हो जाते हैं तब उसे योगाग्नि से बना शरीर प्राप्त हो जाता है और तब वह रोग, जरा, मृत्यु से मुक्त हो जाता है।

योग के समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति का माध्यम है जिसमें मन, शरीर तथा आत्मा तीनों का ही संतुलन शामिल है। समग्र स्वास्थ्य से आशय है कि व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, साम्बेगिक, तथा आध्यात्मिक तत्वों के मध्य संतुलन हो। योग में निहित इस विशेषता के लिए भर्तृहरि शतकत्रयम् में लिखते हैं कि —

**धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी**

**सत्यं सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मनः संयमः।**

**शय्या भूमि तलं दि शौपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं**

**एते यस्य कुटुम्बिनः वद सखे कस्माद् भयं योगिनः॥**

अर्थात् धैर्य जिसका पिता हो, क्षमा जिस की माता हो, शान्ति जिसकी गृहिणी हो, सत्य जिस का पुत्र हो, दया बहन हो, भाई मन का संयम हो, भूमितल जिसकी शय्या हो, दिशाएं ही जिसका वस्त्र हो, अमृतरूपी ज्ञान ही जिसका भोजन हो, ऐसे योगी जिसके कुटुम्बी इस प्रकार के हों उसे भला किस प्रकार का भय हो सकता है।

सदियों पहले ये कही गई बात का सीधा-सीधा मतलब है कि नियमित योगा अभ्यास करने पर कुछ अच्छे गुण सगे-सम्बन्धियों और मित्रों की तरह हो जाते हैं। योग करने से साहस पैदा होता है जो सदा ही पिता की तरह हमारी रक्षा करता है। क्षमा का भाव उत्पन्न होता है जैसा मां का अपने बच्चों के लिए होता है और मानसिक शांति हमारी स्थायी मित्र बन जाती है। भर्तृहरि ने कहा है कि नियमित योग करने से सत्य हमारी संतान, दया हमारी बहन, आत्मसंयम हमारा भाई, स्वयं धरती हमारा बिस्तर और ज्ञान हमारी भूख मिटाने वाला बन जाता है। जब इतने सारे गुण किसी के साथी बन जाएं तो योगी सभी प्रकार के भय पर विजय प्राप्त कर लेता है।

## बोध प्रश्न

### टिप्पणी :

(क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

1. एकीकृत शब्द का अर्थ स्पष्ट करें।

2. जीवन को एकीकृत बनाने में किन घटकों का योगदान होता है ?

3. योग-अभ्यास के मुख्य पहलुओं का नामोल्लेख करें ?

4. आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थ होने से क्या आशय है ?

5. वर्तमान समय में अस्वस्थता के क्या कारण हैं ?

6. शरीर तथा मन की शुद्धि हेतु योग में वर्णित छह क्रियायें कौन सी हैं ?

## 6.5 स्वस्थ जीवन की आवश्यकताएं

मानव जाति पृथ्वी पर कई मिलियन वर्षों से अस्तित्व में है। भारतीय दर्शन और धर्म के अनुसार मानव प्रजाति सहित सभी जीवित प्राणियों को ब्रह्मांड की शुरुआत में ही भगवान ने बनाया था। माना जाता है कि ब्रह्मांड में गति के दो चक्र हैं : विकास और समावेशन। विकासवादी चक्र में सभी प्राणी ब्रह्मांड के अंतर्निहित मौलिक सिद्धांत से अस्तित्व में आते हैं और अपने कर्म द्वारा निर्धारित जन्मों और पुनर्जन्मों की श्रृंखला से गुजरते हैं। समावेशन की प्रक्रिया के दौरान जब विकास का अगला चक्र शुरू होता है तो सभी प्राणी फिर से ऊपर उठने के लिए इसमें लौट आते हैं।

श्रीमद्भागवद्गीता के अध्याय नौ के श्लोक सात तथा आठ में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को इस प्रक्रिया का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में किया है –

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।

कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥ 7॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।

भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्॥ 8

अर्थात् हे कुन्ती पुत्र! एक कल्प के अन्त में सभी प्राणी मेरी आदि प्राकृत शक्ति में विलीन हो जाते हैं और अगली सृष्टि के प्रारंभ में, मैं उन्हें पुनः प्रकट कर देता हूँ। प्राकृत शक्ति का अध्यक्ष होने के कारण मैं बारम्बार असंख्य योनियों के जीवों को उनकी प्रकृति के प्रभाव के अनुसार पुनः-पुनः उत्पन्न करता हूँ। भगवान अर्जुन से कहते हैं कि एक कल्प (सृष्टि का चक्र) के अंत में सभी प्राणी मेरे पास लौट आते हैं और प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। अगली रचना के समय मैं उन सभी को एक बार फिर से उत्पन्न करता हूँ। अपनी प्रकृति को अंगीकार करके स्वभाव के बल से परतंत्र हुए इस संपूर्ण भूत समुदाय को बार-बार उनके कर्मों के अनुसार रचता हूँ।

ईश्वर द्वारा संसार के निर्माण के इस विचार को हर धर्म में जगह मिली है। लेकिन मनुष्य की उत्पत्ति के बारे में विज्ञान का जो कहना है, उससे यह बहुत अलग है। मनुष्य की उत्पत्ति की वैज्ञानिक धारणा पृथ्वी ग्रह को सूर्य के एक भाग के रूप में देखती है, जो एक दुर्लभ खगोलीय घटना के माध्यम से लगभग साढ़े चार अरब साल पहले इससे अलग हो गयी। शुरुआत में पृथ्वी गर्म पदार्थ का एक मृत द्रव्यमान थी जिसकी सतह लाखों वर्षों के दौरान ठंडी हो गई। महासागर, ठंडा होने की इस प्रक्रिया में पर्वत, नदियाँ और पृथ्वी के आसपास के वातावरण का निर्माण हुआ। कार्बन, ऑक्सीजन और हाइड्रोजन की उपस्थिति और जहरीली गैसों की अनुपस्थिति ने भी जीवन के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ प्रदान कीं। प्रोटीन के निर्माण के साथ मानव प्रजाति के विकास की प्रक्रिया शुरू हुई। सरल, एककोशिकीय जीवों से अधिक जटिल जीव समय के साथ विकसित हुए, अंततः जीवित प्राणियों की दुनिया को जन्म दिया जिसमें मनुष्य को सर्वोच्च शासन करना चाहिए।

मनुष्य की उत्पत्ति के बारे में वैज्ञानिक सिद्धांत की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि धर्म और दर्शन के विपरीत इसे ईश्वर जैसे बाहरी निर्माता के अस्तित्व को मानने की आवश्यकता नहीं है। सच्चाई जो भी हो, यह निश्चित है कि मनुष्य पृथ्वी पर जीवित जीवों की अन्य प्रजातियों के साथ अस्तित्व में रहा है। मूल रूप से मनुष्य एक दुर्लभ प्रजाति था। उसे अधिक शारीरिक शक्ति वाले जानवरों के साथ प्रतिस्पर्धा में रहना पड़ा। मनुष्य के खिलाफ संभावनाएं असंख्य हैं। शिशु मृत्यु दर, प्रकृति की मार से सुरक्षा का अभाव, बीमारियों का प्रकोप और भोजन की कमी उनके जीवन के प्रमुख खतरे थे। मनुष्य के लिए सौभाग्य से, उसका मस्तिष्क जानवरों की तुलना में बहुत तेजी से और काफी हद तक विकसित हुआ, और यह उसकी सबसे बड़ी संपत्ति साबित हुई। मनुष्य से कहीं अधिक शक्तिशाली कई जानवर हैं, जिनके पास पैनी इन्द्रियाँ हैं। लेकिन, उनका दिमाग आदिम है। मनुष्य चीजों के अभाव में सोच सकता है, कल्पना कर सकता है, हंस सकता है, बोल सकता है, याद रख सकता है, अपने विचारों और भावनाओं को संप्रेषित कर सकता है और विचारों का मनोरंजन कर सकता है। लेकिन, अपनी सारी श्रेष्ठता के साथ, जैसा कि यह उल्लेखनीय है, क्या मनुष्य को दुनिया का सबसे स्वस्थ प्राणी कहा जा सकता है? यह प्रश्न अत्यधिक विवादास्पद प्रतीत होता है। हममें से कई लोग यह मानने को इच्छुक होंगे कि पहले की पीढ़ियाँ हमसे ज्यादा स्वस्थ थीं क्योंकि उनका जीवन कम जटिल और प्रकृति के नियमों के अनुरूप अधिक था। इस प्रश्न को फिलहाल के लिए छोड़कर, आइए पहले देखें कि स्वस्थ जीवन की आवश्यकताएं क्या हैं। इन आवश्यकताओं पर विचार करने और यह निर्णय लेने के बाद ही कि वे हमारे वर्तमान जीवन में कितने संतुष्ट हैं, हम यह कहने में सक्षम होंगे कि मनुष्य पशु साम्राज्य के निवासियों की तुलना में स्वस्थ है या नहीं।

स्वस्थ जीवन में पर्यावरणीय परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हम आम तौर पर इसके प्रति बहुत सचेत नहीं होते हैं क्योंकि हमारा स्वास्थ्य अक्सर पर्यावरण के अलावा अन्य कारकों से प्रभावित होता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, पृथ्वी पर जीवन सबसे पहले अनुकूल वातावरण के अस्तित्व के कारण संभव हुआ है। एक अनुकूल वातावरण में सीमित तापमान परिवर्तन, वायुमंडलीय दबाव, ऑक्सीजन और खाद्य सामग्री की उपलब्धता और जहरीली गैसों की अनुपस्थिति शामिल है। कुछ स्थानों जैसे अत्यधिक गर्म तथा अत्यधिक शीत मरुस्थलों (ध्रुवों), अत्यधिक उच्च शिखरों, दलदली इलाकों को छोड़कर सारी पृथ्वी मनुष्य के जीवन के योग्य है।

स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक आनुवंशिकता है। हमारी कई विशेषताएँ, जैसे त्वचा का रंग, बाल और आँखें, लम्बाई और कुछ विकारों के लिए प्रवणता विरासत में मिली हैं। विरासत के नियमों का सबसे पहले मेंडल द्वारा वर्तमान शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अध्ययन किया गया था, और उनके समय से आनुवंशिकता के विषय पर अच्छी जानकारी एकत्र की गई है। शरीर और मन के विरासत में मिले गुणों को बदलना मुश्किल है। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि आनुवंशिकता और पर्यावरण एक दूसरे से पूरी तरह स्वतंत्र नहीं हैं। दोनों के बीच आमतौर पर काफी बातचीत होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ वंशानुगत विशेषताएँ, विशेष रूप से बीमारियों के प्रति झुकाव, अनुकूल या प्रतिकूल तरीके से पर्यावरण से प्रभावित हो सकती हैं।

अब एक प्रश्न उठता है : यदि किसी के पक्ष में पर्यावरणीय और वंशानुगत कारक हैं, तो क्या यह गारंटी है कि वह स्वस्थ रहेगा? बिल्कुल नहीं! क्योंकि स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले अन्य कारक हैं। ये केवल महत्वपूर्ण बातों को सूचीबद्ध करने के लिए हैं, व्यवहार में संयम, भोजन की आदतें, काम और आराम के बीच संतुलन, स्वच्छता और व्यायाम। ये कारक अधिक निर्णायक होते हैं। फिर भी हममें से बहुत से लोग अक्सर उनकी उपेक्षा करते पाए जाते हैं। उन पर अधिक विचार न करना शायद बीमारी में योगदान देने वाला सबसे बड़ा अकेला कारक है। अस्वस्थता के इस कारण को दूर करने में योग और प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियाँ सर्वाधिक प्रभावी पाई

गई हैं। अतः हम इन कारकों पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

### 6.5.1 व्यवहार में संयम

हम सभी जानते हैं कि अति किसी भी चीज की बुरी होती है। यह एक सफल जीवन के लिए पालन किए जाने वाले सुनहरे नियमों में से एक है। श्रीमद्भागवद्गीता का अध्याय छः में वर्णित कथन व्यवहार में संयम के महत्व को उजागर करता है।

**युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।**

**युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ 17 ॥**

अर्थात् दुःखों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार और विहार करने वाले का, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का तथा यथायोग्य सोने और जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

आत्मा का परमात्मा से मिलन ही योग है। योग का विपरीत भोग है, जिसका अर्थ है विषय-वासनाओं में संलग्न होना। भोग लगाने से शरीर के प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन होता है और इसका परिणाम रोग (बीमारी) होता है। जैसा कि पिछले श्लोक में कहा गया है, यदि शरीर रोगग्रस्त हो जाता है, तो यह योग के अभ्यास में बाधा डालता है। इस प्रकार इस श्लोक में श्री कृष्ण कहते हैं कि शारीरिक गतिविधियों में संयमित रहने और योग के अभ्यास से हम शरीर और मन के दुखों से मुक्त हो सकते हैं। योगाभ्यास जीवन से दुखों को दूर करने में कारगर है। यह उन सभी के लिए बहुत उपयोगी होगा जो स्वस्थ रहने में रुचि रखते हैं, इसे हमेशा याद रखें।

यह जीवन की सभी गतिविधियों पर लागू होता है। संयमित व्यवहार की मर्यादाओं को लांघने में कोई भी क्रिया, यहाँ तक कि जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक क्रिया भी हानिकारक हो जाती है। स्वस्थ जीवन के लिए भोजन करना, काम करना, आराम करना, लोगों से मिलना और मनोरंजन का आनंद लेना आवश्यक है। लेकिन इनमें से किसी भी गतिविधि को चरम पर ले जाने से निश्चित रूप से नुकसान होता है। जैसे शरीर के लिए खाना आवश्यक है, लेकिन ज्यादा खाना या भूखा रहना बुरा है। काम करना बहुत अच्छा है, लेकिन अधिक काम और आलस्य दोनों ही स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। नींद सबसे जरूरी है, कभी-कभी भोजन करने से भी ज्यादा, लेकिन हर समय सोना शरीर और दिमाग के खराब होने का संकेत है। सामाजिक होना मनुष्य के लिए आवश्यक है, लेकिन इसकी अधिकता या कमी असामान्यता दर्शाती है।

संयम स्वास्थ्य की कुंजी है। हम सभी समझते हैं कि हमारा स्वयं पर संयम है लेकिन यह करने की तुलना में अधिक आसानी से कहा जाता है। क्योंकि संयम शायद मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अनुरूप नहीं है। भावनाओं की अभिव्यक्ति और शब्दों के प्रयोग में संयम एक गुण है जो बहुत सामान्य नहीं। संयम में एक प्रबुद्ध दृष्टिकोण होता है जो मानव स्वभाव का हिस्सा नहीं लगता। संयम संस्कृति का सार है। और संस्कृति का अर्थ है मन का प्रशिक्षण और पशु प्रवृत्ति से उत्पन्न होने वाली प्राकृतिक प्रवृत्तियों का नियंत्रण। हम में से अधिकांश जानते हैं कि संयम हमेशा अच्छा होता है, फिर भी हम अक्सर भोजन, खेल, काम, या सोने इत्यादि में संयम का पालन नहीं करते हैं और बीमार हो जाते हैं। योग और प्राकृतिक उपचार की तकनीक संयम पर बहुत जोर देती है, और हमें सिखाते हैं कि स्वास्थ्य की कुंजी के रूप में संयम का उपयोग करके स्वस्थ जीवन कैसे व्यतीत किया जाए।

### 6.5.2 भोजन संबंधी आदतें

एक वयस्क को दिन में दो या तीन बार भोजन करने की आदत होती है। बचपन विकासात्मक अवस्था है अतः प्रत्येक प्रकार के विकास विशेष रूप से शारीरिक विकास के लिए भोजन की अधिक आवश्यकता होती है। भोजन की आवश्यकता हर जीव को होती है, क्योंकि जीवन क्रिया एक जैव-रासायनिक प्रक्रिया है जिसमें ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह ऊर्जा हमारे द्वारा खाए जाने वाले भोजन से प्राप्त होती है। भोजन हमारी चार मौलिक अवस्थाओं में से एक है। लेकिन हम में से बहुत कम लोग जानते हैं कि हमारी गलत खान-पान की आदतें ही अक्सर हमारी कई बीमारियों का मुख्य स्रोत होती हैं। जितना आवश्यक शरीर के लिए भोजन होता है, उतना ही आवश्यक उसे सही तरीके से लेना भी होता है। अधिक मात्रा में खाना और अत्यंत ही अल्प आहार लेना, दोनों ही स्वास्थ्य की दृष्टि से गलत हैं। इसी प्रकार से गरिष्ठ भोजन लेना हमारे पाचन को प्रभावित करता है। योग संतुलित भोजन पर बल देता है जिससे व्यक्ति को स्वास्थ्य लाभ होता है।

### 6.5.3 काम और आराम के बीच संतुलन

हममें से प्रत्येक को जीविकोपार्जन के लिए कुछ न कुछ काम करना पड़ता है। दिन भर के काम के बाद हमें पर्याप्त आराम करना चाहिए। स्वस्थ जीवन के लिए दोनों के बीच संतुलन जरूरी है। हम में से कई आजकल काम के लगातार तनाव में हैं और बहुत से अन्य लोगों के पास कोई काम या उपयोगी रोजगार नहीं है। ये दोनों स्थितियां संतोषजनक नहीं हैं। हम अपने पूरे शरीर के साथ काम करते हैं। ध्यान, अवरोध, मॉसपेशियों का संकुचन, शरीर के अंगों की व्यवस्था और कार्य, और उनके बीच एक प्रकार का एकीकरण ये सभी आवश्यक हैं। काम का अर्थ ऊर्जा का व्यय, तनाव, शरीर के ऊतकों की टूट-फूट, खोई हुई ऊर्जा को पुनः प्राप्त करना और थकान को दूर करना, आवश्यक आराम से है।

हम व्यर्थ के विचारों और इच्छाधारी सोच में अपनी अधिकांश मानसिक ऊर्जा बर्बाद कर देते हैं। अगर इस नुकसान को रोक दिया जाए और अगर हम किसी काम को आराम से करने की कला सीख लें तो हम काम और आराम के बीच एक अद्भुत संतुलन स्थापित कर सकते हैं। जब हम किसी काम में लगे होते हैं तो कई बार उन पेशियों को भी सिकोड़ देते हैं जिनका उससे कोई सरोकार नहीं होता। हम आमतौर पर इस तथ्य से अवगत नहीं होते हैं। इससे ऊर्जा की अनावश्यक हानि होती है और कार्य में व्यवधान उत्पन्न होता है। किसी कार्य को करने की कला केवल उन मॉसपेशियों को कार्य में लाने की क्षमता में निहित है जो शरीर के अन्य सभी अंगों को शिथिल रखते हुए उसमें सीधे तौर पर शामिल होती हैं।

इस प्रकार हम घबराहट और भ्रम में समस्या का सामना कर सकते हैं या हम शुरू से ही मामलों को सुलझाने की कोशिश कर सकते हैं और काम कर सकते हैं। यदि मन को शांत अवस्था में उन पर विचार करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है तो काफी हद तक मानसिक ऊर्जा को बचाया जा सकता है और व्यक्ति काम के दौरान विश्राम की कला जान सकता है। जिस तरह हम विश्राम के साथ काम को संयोजित करना सीखने से अत्यधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं, उसी प्रकार यदि हम गहन विश्राम की कला सीखते हैं तो हम अपने अवकाश के घंटों से भी बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हैं। हम में से कई लोग घर पर और आराम करते समय भी कार्यालय की समस्याओं को लेकर चिंतित रहते हैं। जब तक हम आराम कर रहे हैं, अगर हम हर समस्या और चिंता पैदा करने वाली हर चीज को भूलना सीख लें, तो हम अपनी बहुत मदद कर सकते हैं। हम पूरी तरह से और सही मायने में आराम कर सकते हैं, और योग यह काम और आराम के बीच सामंजस्य स्थापित करने में बहुत मदद करता है।

### 6.5.4 स्वच्छता

स्वास्थ्य के लिए दैनिक जीवन में स्वच्छता रखना अत्यंत महत्वपूर्ण है। जो खाना हम खाते हैं, जो पानी हम पीते हैं, जो कपड़े हम पहनते हैं, और जो चीजें हम संभालते हैं, अगर अशुद्ध हैं, तो संक्रमण और बीमारी का स्रोत हो सकते हैं। योग शरीर की ही नहीं मन की भी स्वच्छता पर जोर देता है। मन की सफाई के लिए यह यम और नियमों की सिफारिश करता है, जो इससे अशुद्धियों को दूर करते हैं और मानसिक स्वच्छता के लिए सर्वोत्तम स्थिति प्रदान करते हैं। स्वच्छता निश्चित रूप से बहुत महत्व का गुण है। इसे एक आदत और जीवन का एक तरीका बनाना चाहिए, न कि केवल दिखावे या प्रतिष्ठा का मामला। स्वस्थ रहने के लिए स्वच्छ परिवेश सबसे आवश्यक है और योग शारीरिक (आंतरिक और बाह्य दोनों ही), मानसिक, वैचारिक हर प्रकार की स्वच्छता रखने पर बल देता है।

### 6.5.5 व्यायाम

हमारे पूर्वज शारीरिक रूप से कई काम करते थे जो अब हम मशीनों की मदद से करते हैं। जब हम कोई शारीरिक कार्य नहीं करते हैं तो व्यायाम की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। जिन्हें अपनी रोजी-रोटी चलाने के लिए शारीरिक परिश्रम करना पड़ता है जैसे – राजमिस्त्री, बढ़ई, लोहार, कुली आदि हर दिन अपनी मॉसपेशियों की पर्याप्त कसरत करते हैं। लेकिन स्वस्थ रहने के लिए शिक्षकों, छात्रों, क्लर्कों और इसी तरह के व्यवसायों में अन्य लोगों को नियमित व्यायाम करना चाहिए।

उचित व्यायाम का अभाव बीमारियों का एक बहुत व्यापक कारण है। जोड़ों का व्यायाम उन्हें अच्छी स्थिति में रखने के लिए आवश्यक है। व्यायाम की कमी से रक्त का संचार ठीक से नहीं हो पाता है जो दो तरह से हानिकारक है। यह रक्त से पोषक तत्वों (जैसे ऑक्सीजन, हार्मोन और भोजन के घटक) की पर्याप्त आपूर्ति को

रोकता है, और दूसरा, यह अपशिष्ट पदार्थों को हटाने की प्रक्रिया को धीमा कर देता है। जब किसी जोड़ का नियमित व्यायाम किया जाता है तो वह सुचारु रूप से काम करता रहता है। एक मांसपेशी जिसका नियमित रूप से व्यायाम किया जाता है, आकार और शक्ति में और दक्षता में भी वृद्धि करती है।

व्यायाम हमें उम्र बढ़ने के कई बिगड़ते प्रभावों को रोकने या उलटने में मदद करता है। बुढ़ापा कई तरह से बिगड़ता है। हृदय की रक्त पंप करने की क्षमता कम हो जाती है, रक्तचाप बढ़ जाता है, धमनियों के मार्ग उनके अंदर कोलेस्ट्रॉल के जमाव के साथ संकीर्ण हो जाते हैं, फेफड़ों की क्षमता कम हो जाती है, छाती की दीवार कड़ी हो जाती है, कंकाल की मांसपेशियां अधिक से अधिक पिलपिला हो जाती हैं, अपनी ताकत खो देती हैं और धीरज उत्तरोत्तर बढ़ता है, और शरीर में वसा का प्रतिशत बढ़ता है। काम करने की क्षमता कम हो जाती है, गति की गति और प्रतिक्रिया का समय धीमा हो जाता है, हड्डियां कमजोर हो जाती हैं, और रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है।

व्यायाम इस बहुविध गिरावट को पूरी तरह से नहीं रोक सकता, लेकिन यह इसे धीमा कर सकता है, जिससे शरीर को काम और आनंद के साधन के रूप में कार्य करने के लिए अधिक समय मिल जाता है। नियमित व्यायाम से कुछ बीमारियों को प्रभावी ढंग से रोका जा सकता है। योग के परिणाम अत्यंत व्यापक हैं। कुछ ऐसे शोध भी हुए हैं जिनमें यह पाया गया है कि योग के माध्यम से बीमारियों का निवारण भी हुआ है। सूर्य साष्टांग व्यायाम, जिसे परंपरागत रूप से सूर्य नमस्कार कहा जाता है, एक शिक्षण पद्धति है जो पूरे शरीर के लिए अच्छा व्यायाम प्रदान करती है। आसन सहित योग व्यायाम, एक अलग प्रकार के व्यायाम बनाते हैं जो अत्यंत लाभप्रद हैं और जिनका वर्णन शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य उन्नति में आसनों का प्रभाव पाठ में किया गया है।

## बोध प्रश्न

### टिप्पणी :

- (क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।  
 (ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।
7. ब्रह्मांड में गति के कौन से चक्र बताए गए हैं ?

.....

8. काम का क्या अर्थ है ?

.....

9. व्यायाम किस प्रकार बीमारियों को नियंत्रित करता है ?

.....

## 6.6 स्वास्थ्य पर योग अभ्यासों का प्रभाव

हजारों वर्षों से योग की तकनीकों का अभ्यास मुख्य रूप से मुक्ति की प्राप्ति के लिए किया जाता रहा है जिससे पुनर्जन्म के चक्र और उससे जुड़ी पीड़ा से मुक्त हुआ जा सके। इन तकनीकों का उद्देश्य शरीर से अधिक मन को प्रभावित करना था। हठयोगियों ने भी, जो योग के इतिहास में तुलनात्मक रूप से बाद के समय में फले-फूले, योग के शारीरिक पहलू पर अधिक बल दिया। हालाँकि यहाँ भी अंतिम लक्ष्य समाधि की स्थिति की प्राप्ति ही थी। लेकिन हठयोग में प्रयुक्त साधन सामान्य लोगों की क्षमताओं के अनुरूप होते हैं। इन साधनों में आसन, मुद्रा, प्राणायाम और लय या सम्मिलित किए जाते हैं।

हठयोग के उपरोक्त चार साधनों में से पहले तीन ने, हाल के दिनों में, बीमारियों के उपचार और सामान्य रूप से स्वास्थ्य के रखरखाव में बढ़ते महत्व को ग्रहण किया है। यदि हम इनमें योग के शुद्धिकरण उपायों, जिन्हें

शुद्धिक्रियाएं कहते हैं, और ध्यान, जो वर्तमान समय में योग का सबसे चर्चित हिस्सा है, को भी जोड़ दें, तो हमें स्वास्थ्य के लिए योग की तकनीकों के बारे में पूरी जानकारी मिल जाएगी। अध्याय के इस भाग में हम स्वास्थ्य के लिए किए जाने वाले इन्हीं अभ्यासों के महत्व पर चर्चा करेंगे।

योग के विषय में यह तर्क दिया जा सकता है कि हठयोग में किए जाने वाले योगाभ्यास केवल एक प्रकार का व्यायाम है, और यदि व्यायाम स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है, तो कोई भी व्यायाम, जैसे लंबी सैर, दौड़ना, खेल खेलना, तैरना और जिम्नास्टिक करना उतना ही फायदेमंद हो सकता है जितना की योग होता है। यदि योग के आसनों को देखा जाए तो कई आसन ऐसे हैं जो जिम्नास्टिक से अलग नहीं दिखते। तो ऐसे में अन्य प्रकार के व्यायामों की तुलना में योग किस प्रकार से अलग है ? अतीत में, भारत में योग को व्यायाम की एक प्रणाली के रूप में नहीं अपनाया गया था। एथलीटों और अन्य खिलाड़ियों द्वारा व्यायाम की कई अन्य प्रणालियाँ, जैसे दौड़ना, पुश-अप्स, उठक-बैठक, और भारोत्तोलन आदि अपनायी जाती थीं तो योगाभ्यास की खास विशेषताएं क्या हैं? यह एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है, और योग के प्रत्येक साधक को इस प्रश्न का उत्तर पता होना चाहिए। तो यहाँ उत्तर यह है कि योग सामान्य व्यायामों से बहुत ही अलग है। योग मात्र आसनों तक ही सीमित नहीं, बल्कि इससे अधिक बहुत कुछ है जिसकी चर्चा यहाँ पर की जाएगी।

यहाँ पर सर्वप्रथम हम योगाभ्यास प्रणाली की विशिष्ट विशेषताओं पर विचार करेंगे। यह एक ऐसी प्रणाली है जिसमें तकनीकों का एक विविध सेट शामिल है। उदाहरण के लिए, आसन, जिसके विषय में हम में से कई लोगों के दिमाग में योग का अर्थ मुख्य रूप से केवल आसन अभ्यास है। हम पाते हैं कि हमारे योग शिक्षक केवल उन आसनों के विशेषज्ञ हैं जो वे अपनी कक्षाओं में पढ़ाते हैं। योग प्रदर्शन मुख्य रूप से मुद्राओं के प्रदर्शन से संबंधित पाए जाते हैं, विशेष रूप से वे जिनमें कलाबाजी का तत्व होता है। ऐसा लगता है कि योग के बारे में ज्यादातर बातें आसनों और उनके अभ्यास पर केंद्रित हैं। सौभाग्य से, वर्तमान में वैज्ञानिक रूप से प्रशिक्षित लोगों के योग से जुड़ने के कारण एक बदलाव दिखा रही है, और यह जागरूकता कि योग का अर्थ केवल आसन नहीं है। व्यायाम और स्वास्थ्य लाभ के माध्यम के रूप में योग अभ्यास आसन के अलावा श्वास अभ्यास, शरीर तथा मन की सफाई और मन-प्रशिक्षण अभ्यास शामिल हैं और इन सभी तकनीकों की अपार उपयोगिता है। योग पूरे व्यक्ति के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान करता है, केवल माँसपेशियों के लिए नहीं। इसका उद्देश्य मस्तिष्क के कार्य सहित व्यक्तित्व के सभी पहलुओं और उसके सभी कार्यों का एकीकरण करना है।

अन्य अभ्यासों के विपरीत योग तकनीक सभी वर्गों के लोगों के लिए उपलब्ध है। कोई युवा हो या बूढ़ा, बलवान हो या कमजोर, साधन संपन्न हो या गरीब, शिक्षित हो या अनपढ़, पूर्ण रूप से स्वस्थ हो या किसी बीमारी से पीड़ित हो, लेकिन अगर किसी के पास अभ्यास करने की इच्छा है, तो योग के द्वारा वह स्वास्थ्य लाभ कर सकता है। उन लोगों के लिए जो एक गतिहीन जीवन शैली का नेतृत्व करते हैं और अन्य जो कोई नियमित व्यायाम नहीं करते हैं, योग स्वास्थ्य बीमा का सबसे आसान और प्रभावी रूप हो सकता है। यह लोगों को तनावमुक्त करता है। यह वृद्ध लोगों, कामकाजी लोगों, गृहिणी, और विद्यार्थियों सभी के लिए सबसे अच्छा दोस्त हो सकता है। चाहे किसी को अपने दैनिक कार्य के दौरान शारीरिक या मानसिक रूप से परिश्रम करना पड़े, योग कार्य की एकरसता को दूर कर सकता है, मनोरंजन प्रदान कर सकता है, आराम कर सकता है और खोई हुई ऊर्जा की पुनः प्राप्ति कर सकता है।

मानव शरीर की विभिन्न प्रणालियों के कामकाज में एकीकरण लाकर योग तकनीक विशेष नौकरियों में शामिल कौशल को बेहतर बनाने में मदद कर सकती है। एक सर्जन, एक एथलीट, हॉकी, टेनिस या बैडमिंटन का चौपियन, एक क्रिकेट या सॉकर खिलाड़ी, या एक संगीतकार, योग का अभ्यास करके अपने प्रदर्शन में सुधार करेगा। किसी भी कुशल क्रिया के लिए उन सभी अंगों के शिथिलीकरण की आवश्यकता होती है, जिनकी आवश्यकता माँसपेशियों की शक्ति के अतिरिक्त नहीं होती, योग लाभकारी हो सकता है। ऊर्जा को आवश्यक दिशा में निर्देशित किया जा सकता है और ऊर्जा के व्यर्थ व्यय से बचा जा सकता है। इसे योगाभ्यास से अधिक प्रभावी ढंग से प्राप्त किया जा सकता है।

जिस तरह योग में लिंग, पेशे और उम्र के संबंध में कोई रोक नहीं है। मौसमी बदलावों के कारण इसका अभ्यास पर भी कोई प्रतिबंध नहीं है। यदि मौसम अनुकूल हो तो इसका अभ्यास खुले में किया जा सकता है, या एक कमरे में, या तो अकेले या समूहों में किया जा सकता है, इसलिए यह साल भर चल सकता है। किसी महंगे उपकरण की जरूरत नहीं है, न ही लोगों के जमावड़े की जरूरत है। दिन का कोई भी समय काफी अच्छा है,

बस एक आवश्यक शर्त है कि पेट खाली हो।

इन कारकों को ध्यान में रखते हुए, उच्च स्तर की निश्चितता के साथ कहा जा सकता है कि यदि व्यायाम की एक सार्वभौमिक रूप से लागू और उपयोगी प्रणाली होनी है तो योग इसके लिए सर्वोत्तम सामग्री प्रदान कर सकता है। योग तकनीकों के बारे में एक अच्छी बात यह है कि वे प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुरूप विभिन्न संशोधनों के लिए उत्तरदायी हैं।

व्यायाम की योग प्रणाली, जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, में विविध तकनीकें शामिल हैं। प्रत्येक तकनीक योग की उपयोगिता में अपने तरीके से योगदान देती है। योग प्रणाली का पूरी तरह से मूल्यांकन करने से पहले प्रत्येक तकनीक के अंतर्निहित सिद्धांतों, उसके दायरे और स्वास्थ्य को प्रभावित करने में उसकी उपयोगिता को जानना आवश्यक होगा। हम यहां चार शीर्षकों के तहत उनकी चर्चा करेंगे: (1) आसन और मुद्रा (2) प्राणायाम और बंध, (3) शुद्धिक्रिया, और (4) धारणा और ध्यान।

### 6.6.1 आसन और मुद्रा

प्राचीन संस्कृत साहित्य में इन दो शब्दों का प्रयोग आम तौर पर शरीर के अंगों की एक विशेष व्यवस्था को शामिल करने वाली मुद्रा या स्थिति के लिए किया जाता है, हठयोग में दोनों के बीच अंतर किया जाता है। कहा जाता है कि आसन रजोगुण को कम करते हैं, जो अस्थिरता का कारण है, जबकि मुद्रा को जाग्रत करने में मदद करने वाला माना जाता है। हठयोगप्रदीपिका में दस भिन्न-भिन्न मुद्राएँ सूचीबद्ध हैं। बंधों की तकनीकें भी इस सूची में शामिल हैं। हम प्राणायाम के साथ-साथ बंधों पर विचार करेंगे, क्योंकि वे इसके अभ्यास का एक अभिन्न अंग हैं। वे मुद्राएँ जो स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं दृष्टिकोण आसनों से बहुत भिन्न नहीं हैं। उदाहरण के लिए, योगमुद्रा और विपरीतकरणी। इसलिए हमने उन्हें आसन के साथ समूहीकृत किया है।

आसन को दो मुख्य समूहों में विभाजित किया जा सकता है : (1) ध्यान मुद्राएँ, और (2) शारीरिक व्यायाम वाली मुद्राएँ। इन दोनों समूहों से संबंधित आसन योग अभ्यास प्रणाली का एक हिस्सा हैं। योगसूत्र के प्रसिद्ध लेखक पतंजलि ने आना को षजिसके पास स्थिरता और आराम है के रूप में परिभाषित किया है। उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि यह अनावश्यक प्रयास के अभाव और स्थिरता के प्रति जागरूकता की विशेषता है। उनके अनुसार इसके अभ्यास से सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, उपलब्धि-असफलता आदि जैसे विपरीत प्रभावों से मुक्ति मिलती है। (योगसूत्र, II- 46-48.)

पतंजलि का उपरोक्त विवरण मुद्रा के दोनों समूहों पर लागू होता है, हालांकि ऐसा लग सकता है कि यह पहले समूह की मुद्राओं पर अधिक स्पष्ट रूप से लागू होता है। इन दोनों समूहों की मुद्राओं की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं। ध्यानात्मक आसन वे हैं जो ध्यान और प्राणायाम के अभ्यास के लिए उपयुक्त हैं। इनमें बैठने की स्थिति शामिल होती है जिसमें पैरों को मोड़ा जाता है और शरीर को सीधा, स्थिर और शिथिल रखा जाता है। इस पोजीशन में काफी देर तक आराम से बैठें। विश्राम के कारण इसकी क्षमता और शारीरिक गति की अनुपस्थिति के कारण, शरीर की ऑक्सीजन की आवश्यकता कम हो जाती है और शरीर में कार्बन डाइऑक्साइड का उत्पादन कम हो जाता है। इससे श्वसन धीमा हो जाता है, जो बदले में मन को शांत करने में मदद करता है। पीठ सीधी करके बैठना एक बहुत उपयोगी आदत है। इससे पेट की मांसपेशियां थोड़ी सी खिंची रहती हैं और पेट के अंदरूनी हिस्से पर कोई दबाव नहीं पड़ता। यह पाचन अंगों के सुचारु रूप से काम करने के लिए अच्छा है। योग में ध्यानात्मक आसनों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य रीढ़ की जागृति पर खिंचाव, पेरिकम पर दबाव द्वारा और त्रिक क्षेत्र को एक समृद्ध रक्त आपूर्ति प्रदान करके प्राप्त किया जाता है।

शरीर के व्यायाम के लिए अनेक आसन उपलब्ध हैं, जिनमें खड़े होना, बैठना, आगे की ओर झुकना, पीछे या बगल की ओर झुकना, या छाती के बल या पीठ के बल लेटना शामिल है। ऐसे आसन भी हैं जिनमें शरीर को उल्टा रखा जाता है। इन आसनों की विशेषता शरीर के अंगों पर खिंचाव, खिंचाव या दबाव है, जो उन हिस्सों को एक्सटेंडिंग करता है और रक्त परिसंचरण को बढ़ावा देता है। योग के आसनों में लंबाई में परिवर्तन से गुजरना आइसोमेट्रिक संकुचन कहलाता है। यह अन्य मसल्स एक्सटेंसर्स से अलग है। इसमें एक मांसपेशी को लगातार खिंचाव या खिंचाव के तहत रखा जाता है जिसके बिना मांसपेशियों का बार-बार संकुचन और आराम होता है, और शरीर या उसके अंगों की गति होती है। इसे आइसोटोनिक संकुचन कहा जाता है। इस अंतर का अर्थ है कि ऊर्जा व्यय के मामले में योग मुद्राएँ बहुत किफायती हैं।

आसन द्वारा किया गया खिंचाव या दबाव न केवल कंकाल की माँसपेशियों पर काम करता है, जैसा कि लगभग अन्य सभी व्यायामों में होता है, बल्कि यह व्यक्ति के शरीर के आंतरिक अंगों पर भी कार्य करता है। यह रोगों की रोकथाम और उपचार के लिए विशेष लाभकारी है। दबाव परिवर्तन और खिंचाव से योग मुद्राएं अग्न्याशय, पेट, गुर्दे, अधिवृक्क ग्रंथियों, थायरॉयड, नसों में वाल्व जैसे आंतरिक अंगों को प्रभावित कर सकती हैं, साथ ही हृदय, मस्तिष्क और फेफड़ों जैसे महत्वपूर्ण अंग भी। इस प्रकार इन अंगों के ऊतकों और उनकी रक्त आपूर्ति को अनुकूल रूप से प्रभावित किया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप उनके स्वर में सुधार होता है और जिससे अंगों के स्वास्थ्य में सुधार होता है।

लेकिन अकेले आसन हमें बहुत दूर नहीं ले जा सकते। आगे जाने में सक्षम होने के लिए योग अभ्यास की प्रणाली के अन्य भागों को नियोजित करना चाहिए। उनमें से योग के श्वास-प्रश्वासों का अत्यधिक महत्व है।

## 6.6.2 प्राणायाम और बंध

सामान्य बोलचाल की भाषा में प्राणायाम को नियंत्रित श्वास के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह प्राणायाम की सबसे सरल परिभाषा है। प्राणायाम का संधि-विच्छेद करने पर हमें दो शब्द मिलते हैं प्राण तथा आयाम। यही दो शब्द मिलकर सम्पूर्ण प्राणायाम को परिभाषित करते हैं। प्राण का अर्थ होता है जीवनी शक्ति, और आयाम शब्द के दो आशय हैं; जहाँ पहला आशय नियंत्रण करने या रोकने से है वहीं आयाम शब्द का दूसरा आशय लम्बा करने से या विस्तारण से है। याज्ञवल्क्य प्राणायाम को प्राण और वायु का मिलन कहा है। प्राणायाम स्वयं में रेचक, पूरक और कुंभक की क्रियाओं को सम्मिलित करता है। यदि योगसूत्र में प्राणायाम को देखें तो पतंजलि कहते हैं कि –

**तस्मिन्सति श्वासप्रश्वास योगविच्छेदः प्राणायामः ॥ 49 ॥**

अर्थात् श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक गति का नियमन करना ही प्राणायाम है।

सामान्यतः प्रति मिनट हम लगभग पंद्रह बार सांस लेते और छोड़ते हैं, और इस प्रत्येक चक्र को पूरा होने में लगभग चार सेकंड का समय लगता है। योग में श्वास दो प्रकार की होती है एक बहुत तेज और दूसरी बहुत धीमी। तेजी से सांस लेना कपालभाति कहलाता है। इसे प्राणायाम की विविधता के रूप में नहीं लिया जाता है बल्कि यह शुद्धिक्रियाओं में शामिल है। इसमें साधक बहुत तेज सांस लेता है, मान लीजिए 100 से 120 प्रति मिनट। यह फेफड़ों के वेंटिलेशन को लगभग आठ से दस गुना बढ़ा देता है और रक्त से बड़ी मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड से छुटकारा पाने में मदद करता है। ऐसा माना जाता है कि इसका परिणाम श्वसन के न्यूमोटैक्सिक केंद्र को शांत करना है। इसका सीधा असर यह होता है कि कुछ देर तेजी से सांस लेने के बाद ज्यादा देर तक सांस को आराम से रोक कर रखा जा सकता है। इस प्रभाव का अनुभव उन लोगों द्वारा किया जाता है जो सांस रोककर रखने का अभ्यास करते हैं।

कपालभाति पेट से लगातार सांस लेने का व्यायाम है। नाभि के नीचे पेट की माँसपेशियों के अचानक संकुचन से डायाफ्राम वक्ष गुहा में ऊपर धकेल दिया जाता है जिससे फेफड़ों से कुछ हवा बलपूर्वक बाहर निकल जाती है। जब पेट की दीवार फिर से ढीली हो जाती है, तो डायाफ्राम नीचे चला जाता है जिससे हवा एक बार फिर फेफड़ों में प्रवेश कर जाती है। इसके बाद नाभि पर एक और आघात होता है। इस प्रकार कपालभाति में अंतःश्वसन निष्क्रिय होता है और उदर की दीवार द्वारा बार-बार धक्का देकर बल लगाकर उच्छ्वास किया जाता है। यह सामान्य श्वास में जो होता है उसके ठीक विपरीत होता है, जहां फेफड़ों के क्लैस्टिक रिकॉइल द्वारा निष्क्रिय रूप से साँस छोड़ना किया जाता है, जबकि साँस लेना छाती को फैलाकर लाया जाता है, जिसके लिए माँसपेशियों के प्रयास की आवश्यकता होती है। कपालभाति की शक्तिशाली साँसों का शरीर पर तीन तरह से सफाई प्रभाव पड़ता है। सबसे पहले, पेट की दीवार और डायाफ्राम की हरकतें पेट की गुहा में मालिश करती हैं और पेट की गुहा में सभी अंगों और ग्रंथियों का व्यायाम करती हैं। यह मलत्याग के माध्यम से पाचन और अपशिष्ट पदार्थ को हटाने में मदद करता है। तेजी से बाहर जाने वाली हवा श्वसन मार्ग को साफ करने में मदद करती है। इसका सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव, जैसा कि योग परंपरा हमें विश्वास दिलाती है, मस्तिष्क पर होता है। कपालभातिका शाब्दिक अर्थ भी उस व्यायाम से है, जो मस्तिष्क को तेज करता है। कपालभाति को सांस लेने का एक व्यायाम कहा जा सकता है। लेकिन यह प्राणायाम की एक किस्म नहीं है, क्योंकि इसमें धीमी सांस लेना और सांस रोकना शामिल नहीं है, जो प्राणायाम की विशेषता है।

प्राणायाम में प्रत्येक साँस लेना और छोड़ना धीमा, समान और पूर्ण होता है। हर बार फेफड़ों को उनकी क्षमता के अनुसार धीरे-धीरे और समान रूप से भरा जाता है, और अधिकतम संभव सीमा तक खाली कर दिया जाता है। इन कृत्यों को क्रमशः पूरक और रेचक कहा जाता है। इन दोनों के बीच में कुम्भक या साँस रोके रखने की क्रिया आती है। यह दो तरह से किया जा सकता है—या तो पूरक के बाद साँस को अंदर रोककर, या रेचक के बाद इसे बाहर रोक कर। साँस लेना और छोड़ना एक नथुने या दोनों के माध्यम से या मुँह के माध्यम से किया जाता है या नहीं, इस पर निर्भर करते हुए प्राणायाम की कई किस्में हैं।

प्राणायाम में हर दौर में साँस लेना और छोड़ना फेफड़ों की विस्तार और संकुचन की पूरी क्षमता का उपयोग करता है। इस प्रकार कैच इनहेलेशन में फेफड़े पूरी तरह से खुल जाते हैं, प्रत्येक एल्वियोलस की झिल्लियों को पूरी तरह से खींच लेते हैं। कुम्भक के दौरान बंधों के प्रयोग से यह खिंचाव और बढ़ जाता है। साँस छोड़ने में फेफड़े के ऊतक पूरी तरह से सिकुड़ते हैं जबकि हवा के अंतिम हिस्से को बाहर निकाला जा रहा है। साँस के बाहरी अवधारण के दौरान यह प्रभाव कुछ समय तक लगातार बना रहता है। इसके कारण प्राणायाम श्वसन प्रणाली को एक उत्कृष्ट व्यायाम प्रदान करता है। श्वसन में शामिल सभी मांसपेशियाँ, जिनमें गर्दन, पीठ और पेट की दीवार, साथ ही पसली की मांसपेशियाँ और डायफ्राम शामिल हैं, एक लयबद्ध व्यायाम से गुजरती हैं। मांसपेशियों की दक्षता में वृद्धि से हम पूरे दिन अधिक साँस ले पाते हैं। ऐसा माना जाता है कि प्राणायाम के दौरान व्यक्ति बड़ी मात्रा में ऑक्सीजन अवशोषित करता है। इसे प्राणायाम का एक महत्वपूर्ण लाभ बताया गया है।

### 6.6.3 शुद्धिक्रिया

हठयोग में शरीर को आंतरिक रूप से शुद्ध करने के लिए छह तकनीकों का वर्णन किया गया है। उन्हें षट्क्रिया भी कहा जाता है, संस्कृत के शब्द षट् का अर्थ छः होता है। इनका वर्णन संक्षेप में किया जाएगा। षट्कर्म में सम्मिलित छह क्रियाएँ हैं: 1) नेति, 2) धौती, 3) बस्ती, 4) नौली, 5) त्राटक, और 6) कपालभाति।

#### 6.6.3.1 नेति :

नेति नासिका मार्ग की सफाई के लिए एक क्रिया है। यह पानी या विशेष रूप से इस प्रयोजन के लिए तैयार किए गए धागे का उपयोग करके सूती धागे के चार से छः टुकड़ों को आपस में जोड़कर किया जाता है। नाक धोने के लिए टोंटी वाले धातु या चीनी के बर्तन का उपयोग किया जाता है। सिर को आगे झुकाकर एक तरफ घुमाकर नाक के एक छिद्र में टोंटी डाली जाती है। दूसरे नथुने से पानी बाहर निकल जाता है। यह नासिका मार्ग को साफ करता है, और आंतरिक श्लेष्म झिल्ली पर सुखदायक प्रभाव डालता है। आजकल सूती धागे के स्थान पर रबर कैथेटर का प्रयोग किया जाता है। इसे एक नथुने से गुजारा जाता है, और जब यह कोमल तालू के पीछे नीचे आता है तो इसे मुँह से बाहर निकाला जाता है, और दोनों सिरों को आगे और पीछे ले जाया जाता है। यह नाक में रुकावट को दूर करने में मदद करता है, श्लेष्मा झिल्ली को मजबूत करता है और संक्रमण के प्रतिरोध की शक्ति को बढ़ाकर कई विकारों से लड़ने में मदद करता है। नेति को खांसी, सर्दी, साइनसाइटिस, और श्वसन तंत्र के संक्रमण और नाक के माध्यम से आने वाले सामान्य संक्रमण के खिलाफ एक अच्छे निवारक उपाय के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

#### 6.6.3.2 धौती :

यह गले, ग्रासनली और पेट को साफ करने की क्रिया है। सफाई के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला साधन पानी या कपड़े की पट्टी हो सकता है। खाली पेट चार-छह गिलास पानी पीने के बाद हाथ की उँगलियों को मुँह के अन्दर गहराई तक घुसा कर पेट फिर से खाली कर दिया जाता है जिससे उल्टी जैसी क्रिया में पानी बाहर निकल जाता है। इसे वमन-धौति कहते हैं। वस्त्र धौती में बीस फुट से अधिक लंबे मुलायम कपड़े की तीन इंच चौड़ी पट्टी को निगला जाता है और फिर पेट की पेशियों को घुमाकर बाहर निकाला जाता है, ताकि पेट की दीवार कपड़े से अंदर से साफ हो जाए। यह पाचक रसों के स्राव को उत्तेजित करने में मदद करता है। धौती का उपयोग एसिडिटी, पित्त, मधुमेह और अस्थमा के उपचार में लाभ के साथ किया जाता है।

#### 6.6.3.3. बस्ती :

इस क्रिया में नौली-मध्यम करके उदर गुहा के अंदर एक नकारात्मक दबाव विकसित करके मलाशय में डाली गई नलिका के माध्यम से पानी को बाहर निकाला जाता है। संचित अपशिष्ट पदार्थों को इस माध्यम

से हटाया जाता है। बस्ती काफी व्यापक रूप से फैली हुई कब्ज को दूर करने में बहुत सहायक है, खासकर उन लोगों में जो कोई नियमित व्यायाम नहीं करते हैं।

#### 6.6.3.4 नौली :

यह सभी षट्कर्म क्रियाओं में सबसे प्रमुख है। यह उड्डियान-बन्ध करने के बाद पेट की माँसपेशियों को अलग करके और फिर उन्हें दक्षिणावर्त और घड़ी की विपरीत दिशा में घुमाकर खड़े होने की स्थिति में किया जाता है। इसमें पेट का जोरदार व्यायाम शामिल है जो उदर गुहा में सभी अंगों को स्वस्थ स्थिति में रखने में बहुत मदद करता है। यह कब्ज, भूख न लगना, मासिक धर्म की अनियमितता, यकृत की सुस्ती और यौन खराबी के लिए एक अच्छा उपाय प्रदान करता है।

#### 6.6.3.5 त्राटक :

यह आँखों की सफाई की क्रिया है, और कुछ मायनों में मन की भी। इसमें बिना पलक झपकाए किसी वस्तु को तब तक देखना शामिल है जब तक कि आँखों से आंसू न निकल जाएं। कहा जाता है कि त्राका भटकते हुए मन को नियंत्रण में लाने में मदद करता है ताकि उसे स्थिर और शांतिपूर्ण बनाया जा सके। यह आम तौर पर आँखों को स्वस्थ बनाने और मन की उत्तेजित अवस्थाओं पर काबू पाने में उपयोगी है।

#### 6.6.3.6 कपालभाति :

छठी क्रिया अर्थात् कपालभातिके प्रभावों पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है।

इन सभी शुद्धिक्रियाओं का प्रतिदिन अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिए, नेति, धोती और बस्ति का अभ्यास कभी-कभार ही किया जा सकता है। शुद्धिकरण की क्रिया करना एक व्यक्ति के स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक है। उपचारात्मक उपाय के रूप में इनका अभ्यास प्रतिदिन किया जा सकता है, लेकिन जब कोई फिर से सामान्य हो जाता है, तो दैनिक अभ्यास बंद कर देना चाहिए। हालाँकि, त्राटक, कपालभाति और नौली जैसी क्रियाओं को नियमित रूप से योग अभ्यास के दैनिक दिनचर्या के हिस्से के रूप में अभ्यास किया जाना चाहिए।

---

### 6.7 धारणा तथा ध्यान

---

यह एक योग तकनीक है जो हाल ही में पूरी दुनिया में लोकप्रिय हुई है और इसने वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित करना शुरू कर दिया है। यह कहा जा सकता है कि ध्यान दो चरणों में आगे बढ़ता है, जिन्हें धारणा और ध्यान कहा जाता है।

धारणा मन की गतिविधि के प्रतिबंध की स्थिति है। मन आमतौर पर अंतहीन रूप से सोचता रहता है, तेजी से एक विचार से दूसरे विचार पर जाता है, और यह प्रक्रिया मन की जाग्रत अवस्था में शायद ही कभी रुकती है। विचार संवेदनाओं से उत्पन्न होते हैं, जो हम देखते या सुनते हैं, या वे किसी संवेदना के अभाव में भी हो सकते हैं। मन की इस गति को सीमित करने के लिए योग में यह सलाह दी जाती है कि हमें किसी एक वस्तु का चयन करना चाहिए और उस पर मन लगाना चाहिए। यह वस्तु एक मूर्ति, एक तस्वीर, एक प्रतीक या सिर्फ एक मानसिक छवि हो सकती है। मन को केवल इस वस्तु के बारे में सोचने की अनुमति दी जाती है। एकाग्रता के लिए चुनी गई वस्तु के बारे में तरह-तरह के विचार हो सकते हैं। लेकिन इस बात का ध्यान रखा जाता है कि विचारों का संदर्भ वस्तु ही हो। यदि हम ध्यान केंद्रित करते हुए किसी मंत्र का जाप करते हैं तो इसमें काफी मदद मिलती है। मंत्र को होंठ या जीभ को हिलाए बिना कहा जाता है, और मंत्र का अर्थ क्या है, इस पर मन लगाया जाता है। धारणा का अभ्यास बैठने की मुद्रा में करना चाहिए जो आरामदायक, पूरी तरह से शिथिल और स्थिर हो। पीठ और गर्दन को सीधा रखा जाता है और आँखें बंद होती हैं। हाथों को घुटनों पर आराम से रखना चाहिए। श्वास धीमी और तेजी से अगोचर हो जाती है। कई बार मन एकाग्रता की वस्तु को छोड़कर दूसरी चीजों के बारे में सोचने लगता है। लेकिन उसे बार-बार लाकर वस्तु पर लगाना चाहिए। जब मन अन्य सभी विचारों के बहिष्कार के लिए एक ही वस्तु पर खुद को लागू करने की आदत बनाता है तो प्रारंभिक गड़बड़ी गायब होने लगती है और एकाग्रता के दौरान आनंद की भावना बढ़ती है। जब मन अधिक से अधिक स्थिर हो जाता है तो दूसरा परिवर्तन होता है और व्यक्ति ध्यान की स्थिति में आ जाता है।

यह पाया गया है कि ध्यान द्वारा उपचार के बाद प्रति मिनट श्वसन, रक्तचाप और नाड़ी की तेज दर में कमी आती है, जबकि पीजीआर में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई थी। मस्तिष्क तरंगों ने आवृत्ति और आयाम में महत्वपूर्ण कमी दिखाई। सोने के घंटों की संख्या में काफी वृद्धि हुई थी। उच्च रक्तचाप और अनिद्रा के उपचार में ध्यान का महत्व प्रयोग द्वारा बहुत अधिक साबित हुआ। इन और अन्य विकारों के संबंध में योग और प्राकृतिक चिकित्सा तकनीकों के अध्ययन के लिए और अधिक प्रयोग प्रगति पर हैं।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

10. आसन को मुख्य रूप से किन दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है ?

.....

.....

.....

11. ध्यानात्मक आसन कौन से हैं ?

.....

.....

.....

12. योग में आइसोमेट्रिक संकुचन क्या होता है ?

.....

.....

.....

13. प्राणायाम किन क्रियाओं को सम्मिलित करता है ?

.....

.....

.....

14. षट्कर्म में सम्मिलित छह क्रियाएं कौन-कौन सी हैं ?

.....

.....

.....

15. धौति किस प्रकार की शुद्धि क्रिया है ?

.....

.....

.....

16. स्वास्थ्य की दृष्टि से ध्यान के लाभ बतायें।

## 6.8 समाज के विभिन्न वर्गों के द्वारा विविध लाभों हेतु योग का उपयोग

योग का क्षेत्र व्यापक है अतः योग से होने वाले लाभ भी व्यापक हैं। कोई ऐसा विशेष वर्ग या कोई विशेष समूह नहीं केवल जो योग से लाभान्वित हो तथा अन्य के लिए यह उस तरह से लाभप्रद नहीं हो द्य आधुनिक समय में योग का उपयोग समाज के विभिन्न वर्गों के द्वारा किया जा रहा है क्योंकि यह रोगी, स्वस्थ स्त्री, पुरुष, बच्चों, युवाओं तथा वृद्धों सभी के लिए समान रूप से लाभकारी है।

1. **विद्यार्थी वर्ग** : विद्यार्थी जीवन व्यक्ति के लिए मुख्य रूप से ज्ञान के अर्जन का काल है। इसके साथ ही यह वह अवस्था है जिसमें विद्यार्थी विभिन्न विकास अवस्थाओं से गुजरता है। विद्यार्थियों के द्वारा योग के अभ्यास किए जाने के फलस्वरूप उनकी स्मरण शक्ति, एकाग्रता, तार्किकता, बौद्धिकता, कार्य क्षमता तथा कार्य कुशलता में वृद्धि होती है। योग का अभ्यास न केवल उनके आत्मविश्वास को बढ़ाता है बल्कि संघर्ष तथा तनाव की स्थिति में विद्यार्थी को आवश्यक संबल प्रदान करते हुए समस्यात्मक स्थिति से बाहर निकालता है।
2. **आध्यात्मिक वर्ग** : प्रारंभ में योग को मात्र आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग के रूप में देखा जाता था द्य योग का अनुपालन उन वर्गों के द्वारा भी किया जाता है जो सांसारिकता से विराट हो आध्यात्मिक उत्सर्ग की प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहते हैं। योग मार्ग का अनुसरण उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति कराता है तथा आत्मा का संयोग परमात्मा से कराता है।
3. **श्रमजीवी या सेवारत वर्ग** : वर्तमान समय में सभी अपने जीवन में ऐसे तेज दौड़े जा रहे हैं जैसे वे किसी दौड़ प्रतियोगिता में भाग ले रहे हैं खासकर युवा वर्ग जो समाज का मुख्य उत्पादक वर्ग है। ऐसे में कामकाजी युवाओं के लिए योग उनकी कार्यक्षमता विकास, कार्य कुशलता, कार्य क्षेत्र के दबाव को सहन करने के साथ ही मानसिक सुख और शांति प्राप्ति का माध्यम है। यह व्यक्ति में सहनशीलता को बढ़ाता है और विषम परिस्थितियों को सहन कर सकने के लिए मानसिक रूप से सबल बनाता है।
4. **शारीरिक और मानसिक रूप से अस्वस्थ वर्ग** : योग में जटिल तथा सरल दोनों प्रकार के अभ्यास आते हैं जिसे किसी प्रकार की अस्वस्थता रहते हुए भी किया जा सकता है। जहाँ अन्य व्यायामों के अभ्यास के लिए आपका पूर्णरूपेण शारीरिक रूप से व्याधि रहित होना आवश्यक है वहीं योग का अभ्यास करते हुए शारीरिक और मानसिक रूप से अस्वस्थ लोगों को भी देखा जा सकता है।
5. **वृद्ध वर्ग** : योग एक सूक्ष्म व्यायाम पद्धति है जिसके लक्ष्य विशद और विराट हैं। इसके अभ्यास में बहुत अधिक दम-खम नहीं चाहिए होता है और होने वाले प्रभाव इतने बहुआयामी होते हैं जैसे शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, आध्यात्मिक कि हमारे आस पास रहने वाले वृद्धजन भी बिना किसी समस्या के इसका अभ्यास कर पाते हैं।

इस प्रकार योगासन सर्वसुलभ हैं। योग का अभ्यास सभी के द्वारा किया जा सकता है। इसके अभ्यास के लिए ना तो सामर्थ्य संबंधी कोई बाध्यता है, ना ही उम्र संबंधी, ना लिंग संबंधी और ना ही धन संबंधी। योग का पालन तथा योगासनों का अभ्यास स्त्री-पुरुष, बलवान-कमजोर, अमीर-गरीब, बूढ़े-बच्चे या जवान किसी के द्वारा भी किया जा सकता है। योग सर्वसुलभ होने के साथ ही सरल तथा सहज हैं। योग तथा योगासनों का अभ्यास किसी विशेष साधन-सामग्री का माँग नहीं करता है। इस कारण से योग के अभ्यास में कुछ विशेष व्यय नहीं होता है।

## 6.9 स्वास्थ्य के संबंध में योग के उद्देश्य

1. व्यक्ति की मानसिक शक्तियों को जागृत करना तथा उनको क्रियाशील बनाना।
2. व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को जागृत करना और उनकी क्षमता को बढ़ाना।

3. संतुलित आहार, विश्राम और नींद।
4. अनुचित चिंता, भय और भावनाओं की असामान्य अभिव्यक्ति का शिकार न होना।
5. रोग प्रतिरोधक क्षमता होना।
6. शारीरिक या मानसिक अस्वस्थता की स्थिति में यथासम्भव उचित उपचार।
7. हड्डियों और माँसपेशियों में ताकत, लचीलापन और गतिशीलता।
8. शरीर की सभी संस्थाओं जैसे पाचन तंत्र, रक्त संचार तंत्र, अंतःस्रावी तंत्र, उत्सर्जन तंत्र, श्वसन तंत्र, हृदय तंत्र, तंत्रिका तंत्र आदि का स्वस्थ होना और समुचित कार्य करना।
9. शरीर की लंबाई में वृद्धि और उचित वजन नियंत्रण बनाए रखने की क्षमता।
10. शरीर को सुंदर, बलवान, ऊर्जावान बनाए रखना।
11. शरीर के आरामदायक और औसत तापमान को बनाए रखना।
12. अपने स्वास्थ्य के प्रति पूरी तरह से आश्वस्त होना।
13. व्यक्ति में आत्मविश्वास और उचित मनोबल का होना।
14. एकीकृत व्यक्तित्व की प्राप्ति।

---

## 6.10 योग द्वारा स्वस्थ तथा एकीकृत जीवन की प्राप्ति

---

उपरोक्त वर्णित स्वास्थ्य संबंधी लाभ योग क्रियाएँ तथा साधना के माध्यम से प्राप्त की जा सकती हैं। योग द्वारा स्वास्थ्य सम्बन्धी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार की जाती है, जिसका वर्णन यहाँ किया जाएगा।

1. योग व्यक्ति को निर्देशित करता है कि किस प्रकार का भोजन करना चाहिए तथा साथ ही भोजन ग्रहण करने की उचित विधियों की जानकारी देता है। भोजन जहाँ हमारे शारीरिक और मानसिक विकास के लिए आवश्यक है वहीं यह भी आवश्यक है कि जो भी भोजन ग्रहण किया जाए वह स्वास्थ्यवर्धक हो न कि अस्वास्थ्यकर। योगियों का भोजन तथा भोजन विधि अत्यन्त ही सात्विक, पौष्टिक तथा रोगरहित होती है। इसलिये इस प्रकार के खान-पान तथा भोजन व्यवस्था को अपनाने से व्यक्ति को अपने शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने में मदद मिलती है।
2. योग व्यक्ति की आंतरिक सफाई में भी मदद करता है। कोई भी ऐसा व्यायाम या अन्य कोई माध्यम नहीं है जो व्यक्ति को बाह्य के साथ-साथ आंतरिक रूप से भी साफ करने में अपना योगदान करे। हालाँकि हम स्नान या अन्य प्रकार से बाह्य अंगों की सफाई कर मान लेते हैं कि हमने अपने आप को स्वच्छ कर लिया परंतु शरीर के अन्दर की सफाई इनसे नहीं होती है। शुद्धि क्रियाएँ जैसे धौति, नेति, नौलि, कपालभाति, त्राटक तथा वस्ति क्रमशः उदर, नासिका, गला, पेट, श्वास, नेत्र तथा आंतों को प्राकृतिक रूप से साफ करती हैं जो सर्जरी के अलावा अन्य किसी भी माध्यम से संभव नहीं है। ये शुद्धिकरण क्रियाएँ शरीर के अंदर के मल तथा विकार को आसानी से बाहर निकालकर शरीर को स्फूर्त, सक्रिय, ताकतवर और रोगरहित बनाने में सहायक सिद्ध होती हैं।
3. योग, साधक को मात्र आंतरिक रूप से ही स्वस्थ रहने में सहयोग नहीं करता बल्कि मानसिक शुद्धता में भी मदद करता है। यम तथा नियम के अनुसरण (जिसका वर्णन अन्य अध्यायों जैसे मानव के सामाजिक एवं नैतिक उन्नयन हेतु योग या योग के वैज्ञानिक आधार में किया गया है) के माध्यम से व्यक्ति अपने इंद्रियों तथा मन पर नियन्त्रण करने में सफल हो जाते हैं। योग साधना व्यक्ति को अपने संवेगों पर उचित नियन्त्रण रखने में मदद करती। योगांगों के अनुपालन के द्वारा व्यक्ति मन तथा इन्द्रियों को पर्याप्त रूप से नियन्त्रित, संयमित, शान्त तथा स्वस्थ बना पाता है। मन के क्लुषित विचार, अनाहक चिन्ता, अशान्ति, अवसाद, उद्वेग तथा विकारों को जितने प्रभावी ढंग से योग साधना के माध्यम से दूर किया जा सकता है, उतना किसी अन्य माध्यम के द्वारा नहीं किया जा सकता है। श्वास को स्थिर एवं शान्त बनाये रखकर प्राणायाम एवं शिथिलीकरण के द्वारा शरीर और मन को पूर्ण विश्राम देने का कार्य मनोविकारों से मुक्ति

दिलाने में जो लाभ पहुँचता है, वैसा दूसरा और कोई माध्यम नहीं है। अतः यह कहा जा सकता है कि मानसिक स्वास्थ्य को उत्तम बनाए रखने में योग साधना से बढ़कर अन्य कोई उपयुक्त और अच्छा माध्यम नहीं हो सकता है।

4. मानव को अत्यधिक शारीरिक समस्याएँ उनके श्वसन तन्त्र के अनुचित प्रकार से कार्य करने के कारण ही होती हैं। हम श्वसन क्रिया को एक अनैच्छिक क्रिया के रूप में देखते हैं और यह समझते हैं कि इस पर कोई नियंत्रण नहीं स्थापित किया जा सकता है एक प्रकार से यह बात सत्य भी है परंतु अगले ही क्षण योग हमें वह माध्यम देता है जिससे कि श्वसन क्रिया पर परोक्ष रूप से नियंत्रण स्थापित किया जा सके। यौगिक क्रियाएँ जैसे कि प्राणायाम तथा योगासनों के माध्यम से साधक इस दिशा में सम्पूर्ण लाभ प्राप्त कर सकता है। श्वांस पर नियन्त्रण तथा श्वसन संस्थान की उचित क्रियाशीलता इन क्रियाओं तथा साधनों के प्रभाव के कारण स्वतः ही प्राप्त हो सकती है।
5. शरीर के सभी आन्तरिक संस्थान जैसे, तंत्रिका, अंतःस्रावी, हृदय, लसीका, श्वसन, पाचन, उत्सर्जन, कंकाल संस्थान, सभी की उचित सक्रियता तथा क्षमता का विकास योग साधना द्वारा अच्छी प्रकार से सम्भव है। त्वचा की बनावट तथा कान्ति, ऊँचाई का बढ़ना, भार का सीमा में रहना, शारीरिक तापक्रम का सहज और सामान्य बने रहना, हड्डियों एवं मॉसपेशियों का सन्तुलित गठन एवं क्रियाशीलता, शरीर की सुन्दर तथा आकर्षक दिखना इत्यादि जो अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य के परिचायक माने जाते हैं, उनकी पूर्ति अत्यधिक सहज और स्वाभाविक ढंग से योग साधना द्वारा सम्भव हो जाती है।
6. व्यक्ति आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि आदि यौगिक क्रियाओं के माध्यम से अपनी मानसिक शक्तियों को सजग, सहज, स्थिर, संयमित एवं नियन्त्रित रख पाता है। योग हमारी चित्त की वृत्तियों तथा मन को अनुशासित रखने का अत्यन्त प्रभावशाली साधन है। योग साधना में रत व्यक्ति को अपने मन को स्वस्थ, सबल एवं रोगमुक्त रखने में पर्याप्त सहयोग मिलता है और परिणामस्वरूप वह अनावश्यक रूप से मानसिक कुसमायोजन एवं अस्वस्थता के शिकार होने से बच जाता है।
7. योग हमें व्याधियों से लड़ने की शक्ति प्रदान करता है फिर चाहे वह शारीरिक व्याधि हो अथवा मानसिक। योग व्यक्ति में निरोधात्मक शक्ति उत्पन्न करता है जिससे व्यक्ति को कोई व्याधि हो ही नहीं। यही नहीं, बल्कि किसी भी व्याधि के हो जाने की दशा में योग एक योग्य शारीरिक तथा मानसिक चिकित्सक की भूमिका निभाता है। यौगिक षट्कर्म, प्राणायाम, साधना एवं योगासन आदि के रूप में योग विभिन्न प्रकार की शारीरिक बीमारियों, अक्षमताओं एवं विकारों हेतु अचूक उपचार उपलब्ध कराता है तथा दूसरी ओर श्वांस पर नियन्त्रण, शिथिलीकरण एवं प्राणायाम सम्बन्धी विशेष क्रियाओं तथा योगासनों के माध्यम वह मानसिक अस्वस्थता एवं असमान्यता के उपचार में भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देने सक्षम रहता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य से सम्बन्धित सभी पहलू ; फिर वह चाहे शारीरिक स्वास्थ्य हो अथवा मानसिक, योग के माध्यम से प्राप्य हो जाते हैं। विभिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करके उसे सामान्य ढंग से स्वस्थ, निरोग, सजग, सहज एवं क्रियाशील जीवन व्यतीत करने में योग साधना से सम्बन्धित क्रियाएँ, उपाय एवं उपचार आदि अत्यधिक प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं। योग शिक्षा के कुछ भावात्मक उद्देश्य भी हैं; जैसे— भावनात्मक विकास में सहायता पहुँचाना, भावनाओं पर आवश्यक नियन्त्रण करके ठीक व्यवहार करना, सहयोग प्रदान करना आदि। शरीर और मन को स्वस्थ रख कर सकारात्मक संवेगों की उपस्थिति अधिक से अधिक रखने में योग साधना सहायक सिद्ध होती है। एक योगी ही प्रसन्नचित्त एवं आनन्दमय होने की स्थिति सच्चे रूप में प्राप्त कर सकते हैं। संवेगात्मक विकास की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता संवेगों तथा भावनाओं पर उचित नियन्त्रण रखने में है। श्योगश् इस प्रकार के नियन्त्रण में अत्यधिक प्रभावशाली भूमिका निभा सकता है। इन्द्रिय निग्रह, मन की चंचलता पर अंकुश तथा ध्यान की स्थिरता एवं एकाग्रता, साधना और समाधि है। अतः इस प्रकार की योग साधना तथा क्रियाएँ प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य का विकास करती हैं।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

17. विद्यार्थियों के लिए योग किस प्रकार लाभप्रद है ?

18. स्वास्थ्य के संदर्भ में योग के किन्हीं चार उद्देश्यों का वर्णन करें।

19. योग भोजन पर नियंत्रण कर किस प्रकार स्वास्थ्यलाभ में मदद करता है ?

20. योग मानसिक स्वास्थ्य प्राप्ति में किस प्रकार सहायता करता है ?

### 6.11 सारांश

वर्तमान समय में जहाँ प्रत्येक व्यक्ति भौतिकता के पीछे भाग रहा है। उसे लगता है कि जीवन को सुखी बनाने के लिए पैसे आवश्यक हैं और पैसे के बल पर हर प्रकार के सुख और शांति को प्राप्त किया जा सकता है और एस हेतु वह ऐसी प्रतिस्पर्धा में लगा है जिसका कोई भी अंत नहीं है। यह भाग-दौड़ भरी जिंदगी, यह गतिशीलता उसमें रजस गुणों को अत्यधिक बढ़ा दे रही हैं और इसकी तुलना में अन्य गुणों विशेषकर सत्व गुणों की कमी होती जा रही है जिससे व्यक्ति का जीवन असंतुलित हो रहा है। सत्व गुण शांति, सामंजस्य, स्थिरता, सौम्यता, सृजन से संबंधित है वहीं राजस गुण वेग तथा गतिविधि तथा तमस गुण निष्क्रियता और अकर्मण्यता से संबंधित कहे जा सकते हैं। ऐसे में गुणों का असंतुलन व्यक्ति को शारीरिक तथा मानसिक रूप से असंतुलित बना देता है और व्यक्ति के जीवन से तारतम्यता समाप्त हो जाती है। योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के श्युगश् शब्द से हुई है जिसका अर्थ है प्जुड़ना। यह व्यक्तिगत आत्मा (जीवन्तमा) और सार्वभौमिक आत्मा (परमात्मा) के बीच मिलन का प्रतीक है। इसका उद्देश्य दर्द और पीड़ा से राहत पाना है। योग आत्म-नियंत्रण के माध्यम से मुख्य रूप से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीन स्तरों पर सामंजस्य बनाए रखने और इष्टतम कामकाज को प्राप्त करके पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करने का एक तरीका है। योग क्रिया, आसन और प्राणायाम योग के भौतिक आधार हैं। योगसाधना आंतरिक स्वास्थ्य और सद्भाव को बढ़ावा देती है और यह कई सामान्य बीमारियों को रोकने और ठीक करने और शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनाव को खत्म करने में मदद करती है और व्यक्ति को एक स्वस्थ तथा एकीकृत जीवन प्रदान करती है।

### 6.12 अभ्यास के प्रश्न

1. भारतीय शास्त्रों में दिए गए स्वास्थ्य की संकल्पना पर एक निबंध लिखें।
2. एक व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए किन-किन चीजों की आवश्यकताएं होती हैं ? वर्णन करें।
3. योग किस प्रकार से व्यक्ति को स्वस्थ तथा एकीकृत जीवन की प्राप्ति में मदद करता है ?
4. स्वास्थ्य पर योग अभ्यासों के प्रभाव की चर्चा करें।
5. स्वास्थ्य के संदर्भ में योग के उद्देश्यों का वर्णन करें।

### 6.13 चर्चा के बिंदु

1. योग सामान्य व्यायाम से किस प्रकार बेहतर है ?

2. योग का उपयोग समाज के प्रत्येक वर्ग के द्वारा स्वास्थ्य लाभ हेतु किया जासकता है। इस कथन पर अपने विचार व्यक्त करें।

---

## 6.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

1. एकीकृत का अर्थ प्रतीत होने वाले असमान भागों का समामेलन है।
2. जीवन को एकीकृत बनाने में उन घटकों का योगदान होता है जो हमारी आत्मा का पोषण करते हैं, हमें पूरी तरह से कार्य करने वाले मनुष्यों में विकसित होने की अनुमति देते हैं।
3. योग-अभ्यास के चार मुख्य पहलू हैं: शरीर, श्वास, मन और जीवन।
4. आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थ होना व्यक्ति की वह स्थिति है जब उसका शरीर, मन, समस्त इंद्रियाँ तथा आत्मा सभी पूर्णतया स्वस्थ हों।
5. वर्तमान जीवनशैली में मनुष्य की प्रवृत्तियाँ मनुष्योनुकूल रही ही नहीं हैं। व्यक्ति खाद्य-अखाद्य सभी प्रकार के पदार्थों को खा रहा है, दूसरों को परेशान कर या उन्हें कष्ट में देख सुखी होता है, जीव हत्या करता है, दूसरों की चीजें हड़पना चाहता है, रात्रि जागरण करता है, तथा दिन में सोता है। व्यक्ति ने आचार-विचार का त्याग कर पशुवृत्तियों का अंगीकरण कर लिया है। व्यक्ति के यह क्रियाकलाप उसे क्षणिक सुख और हर्ष तो दे रहे हैं परन्तु यह दीर्घकालिक नहीं है। ऐसे क्रियाकलापों ने व्यक्ति को रोगों और व्याधियों का घर बना दिया है।
6. शरीर तथा मन की शुद्धि हेतु योग में वर्णित छह क्रियाएँ आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि हैं।
7. ब्रह्मांड में गति के दो चक्र हैं: विकास और समावेशन।
8. काम का अर्थ ऊर्जा का व्यय, तनाव, शरीर के ऊतकों की टूट-फूट, खोई हुई ऊर्जा को पुनः प्राप्त करना और थकान को दूर करना, आवश्यक आराम से है।
9. जोड़ों का व्यायाम उन्हें अच्छी स्थिति में रखने के लिए आवश्यक है। व्यायाम से शरीर में रक्त का संचार ठीक से हो पाता है। यह रक्त में पोषक तत्वों (जैसे ऑक्सीजन, हार्मोन और भोजन के घटक) की पर्याप्त आपूर्ति करता है, और यह अपशिष्ट पदार्थों को हटाने की प्रक्रिया को तेज कर देता है। जब किसी जोड़ का नियमित व्यायाम किया जाता है तो वह सुचारु रूप से काम करता रहता है। एक मांसपेशी जिसका नियमित रूप से व्यायाम किया जाता है, आकार और शक्ति में और दक्षता में भी वृद्धि करती है।
10. आसन को दो मुख्य समूहों में विभाजित किया जा सकता है: (i) ध्यान मुद्राएँ, और (ii) शारीरिक व्यायाम वाली मुद्राएँ।
11. ध्यानात्मक आसन वे हैं जो ध्यान और प्राणायाम के अभ्यास के लिए उपयुक्त हैं।
12. योग के आसनों में लंबाई में परिवर्तन से गुजरना आइसोमेट्रिक संकुचन कहलाता है।
13. प्राणायाम रेचक, पूरक और कुंभक की क्रियाओं को सम्मिलित करता है।
14. षट्कर्म में सम्मिलित छह क्रियाएँ हैं: i) नेति, ii) धौती, iii) बस्ती, iv) नौली, v) त्राटक, और vi) कपालभाँति।
15. धौति गले, ग्रासनली और पेट को साफ करने की क्रिया है।
16. ध्यान द्वारा उपचार के बाद प्रति मिनट श्वसन, रक्तचाप और नाड़ी की तेज दर में कमी आती है, जबकि पीजीआर में वृद्धि होती है। मस्तिष्क तरंगों ने आवृत्ति और आयाम में काफी कमी आती है। सोने के घंटों की संख्या में काफी वृद्धि होती है। उच्च रक्तचाप और अनिद्रा के उपचार में महत्वपूर्ण है।
17. विद्यार्थियों के द्वारा योग के अभ्यास किए जाने के फलस्वरूप उनकी स्मरण शक्ति, एकाग्रता, तार्किकता, बौद्धिकता, कार्य क्षमता तथा कार्य कुशलता में वृद्धि होती है। योग का अभ्यास न केवल उनके आत्मविश्वास

को बढ़ाता है बल्कि संघर्ष तथा तनाव की स्थिति में विद्यार्थी को आवश्यक संबल प्रदान करते हुए समस्यात्मक स्थिति से बाहर निकालता है।

18. स्वास्थ्य के संदर्भ में योग के चार उद्देश्य निम्नवत हैं,
  1. व्यक्ति की मानसिक शक्तियों को जागृत करना तथा उनको क्रियाशील बनाना
  2. व्यक्ति की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को जागृत करना और उनकी क्षमता को बढ़ाना
  3. संतुलित आहार, विश्राम और नींद
  4. अनुचित चिंता, भय और भावनाओं की असामान्य अभिव्यक्ति का शिकार न होना
19. योगियों का भोजन तथा भोजन विधि अत्यन्त ही सात्विक, पौष्टिक तथा रोगरहित होती है, जिसको लेने कि वजह से व्यक्ति स्वस्थ रहता है।
20. व्यक्ति आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि आदि यौगिक क्रियाओं के माध्यम से अपनी मानसिक शक्तियों को सजग, सहज, स्थिर, संयमित एवं नियन्त्रित रख पाता है। योग हमारी चित्त की वृत्तियों तथा मन को अनुशासित रखने का अत्यन्त प्रभावशाली साधन है। योग साधना में रत व्यक्ति को अपने मन को स्वस्थ, सबल एवं रोगमुक्त रखने में पर्याप्त सहयोग मिलता है और परिणामस्वरूप वह अनावश्यक रूप से मानसिक कुसमायोजन एवं अस्वस्थता के शिकार होने से बच जाता है।

---

### 6.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

1. सिन्हा, जे. (2010). भारतीय दर्शन. दिल्लीरू मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।
2. हिरियन्ना, एम. (2018). भारतीय दर्शन की रुपरेखा. नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन।

---

## इकाई — 7 : मानव के सामाजिक एवं नैतिक उन्नयन हेतु योग

---

### इकाई की संरचना

- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 इकाई के उद्देश्य
- 7.3 सामाजिक उन्नयन
- 7.4 नैतिक उन्नयन
- 7.5 योग तथा सामाजिक तथा नैतिक उन्नयन
  - 7.5.1 यम
  - 7.5.2 नियम
  - 7.5.3 आसन
  - 7.5.4 प्राणायाम
  - 7.5.5 प्रत्याहार
  - 7.5.6 धारणा
  - 7.5.7 ध्यान
  - 7.5.8 समाधि
- 7.6 सामाजिक और नैतिक उन्नयन में योग की भूमिका
- 7.7 सारांश
- 7.8 अभ्यास के प्रश्न
- 7.9 चर्चा के बिंदु
- 7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 7.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

### 7.1 प्रस्तावना

---

भारत की पहचान इसकी अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर, प्राचीन परम्परायें और दर्शन है। विशेष तौर पर षड दर्शन जिनमें से एक योग दर्शन है। हालांकि वर्तमान समय में योग एक दर्शन से अलग व्यायाम या चिकित्सा पद्धति के रूप में अधिक अपना लिया गया है। परन्तु वस्तुतः योग मात्र व्यायाम तक ही सीमित नहीं बल्कि जीवन जीने की एक पद्धति है जो व्यक्ति के मन को उसकी आत्मा से जोड़ता हुआ परमानन्द की स्थिति में ले आता है जहाँ व्यक्ति को अपने जीवन के उच्चतम स्तर की प्राप्ति होती है। यह मात्र शारीरिक स्वास्थ्य तक ही नहीं सीमित है बल्कि इसका उतना ही योगदान व्यक्ति को मानसिक रूप में स्वस्थ रखने में भी है। यह जितना शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य से सम्बंधित है उतना ही सामाजिक, साम्प्रदायिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास से भी जुड़ा हुआ है। यह व्यक्तिगत चेतना के साथ सार्वभौमिक चेतना को प्रतिबिंबित करता है। प्रस्तुत पाठ में हम योग के इसी स्वरूप की चर्चा करेंगे।

---

### 7.2 इकाई के उद्देश्य

---

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि—

1. सामाजिक उन्नयन का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे।
2. नैतिक उन्नयन का आशय स्पष्ट कर सकेंगे।
3. सामाजिक तथा नैतिक उन्नयन का योग के साथ संबंधों का उल्लेख कर सकेंगे।
4. योग के विभिन्न अंगों का सामाजिक तथा नैतिक उन्नयन में योगदान का वर्णन कर सकेंगे।
5. सामाजिक और नैतिक उन्नयन में योग की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।

### 7.3 सामाजिक उन्नयन

प्रस्तुत पाठ मानव के सामाजिक तथा नैतिक उन्नयन में योग की भूमिका से संबंधित है ऐसे में पहले यह समझ लेना आवश्यक है कि सामाजिक तथा नैतिक शब्दों के क्या अर्थ हैं ? सामाजिक शब्द समाज से बना है तथा नैतिक शब्द की उत्पत्ति नीति शब्द से हुई है। अतः सामाजिक तथा नैतिक शब्दों को समझने के लिए पहले समाज तथा नीति शब्द के क्या अर्थ हैं, उसका वर्णन करना आवश्यक है।

सामाजिक उन्नयन में क्रमशः दो शब्द हैंय पहला सामाजिक तथा दूसरा उन्नयन। सामाजिक शब्द समाज शब्द से बना है जिसका अर्थ है समाज का या समाज से संबंधित। उन्नयन शब्द का अर्थ है ऊपर उठना या उन्नत करना। समाज शब्द का आशय या परिभाषा को देखें समाज का अर्थ दल या समूह से होता है और आगे इसे परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि व्यक्तियों के मध्य पाए जाने वाले सामाजिक संबंधों को समाज कहते हैं। भिन्न समाजशास्त्रियों ने समाज को भिन्न-भिन्न तरीकों से परिभाषित किया है। गिडिंग्स समाज को एक संघ के रूप में परिभाषित करते हैं कि "समाज एक स्वयं संघ है, संगठन है, औपचारिक संबंधों का योग है, जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति एक दूसरे के साथ जुड़े रहते हैं। वही टालकॉट पारसंस समाज के लिए कहते हैं कि "समाज को उन मानवीय संबंधों की पूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो साधन और साध्य के संबंध संदर्भ में की गई क्रिया के उपरांत आवश्यकता उत्पन्न हो चाहे वह यथार्थ हो या प्रतीकात्मक।" इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि समाज से आशय एक समूह से है जिसमें व्यक्ति एक दूसरे से विभिन्न संबंधों से जुड़े होते हैं। यह जुड़ाव कई रूपों में हो सकता है। समाज की इसी विशेषता के कारण मैकाइवर एवं पेज समाज को सामाजिक सम्बन्धों के जाल के रूप में देखते हैं।

मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी कहते हैं परन्तु जब एक बच्चा जन्म लेता है उस समय वह ना तो सामाजिक होता है और ना ही असामाजिक। उसमें सामाजिकता का विकास समाज में रहने के फलस्वरूप होता है। ऐसे कई उदाहरण हमें मिल जाते हैं जिनमें समाज में न रहने के कारण बच्चों में सामाजिकता का विकास या अन्य शब्दों में कहें तो मानवीय गुणों का विकास हो ही नहीं पाया और उन बच्चों का व्यवहार या आदतें पशुवत रहीं। अर्थात् हम समाज को एक ऐसे विद्यालय की संज्ञा दे सकते हैं जो मनुष्यों को सही अर्थों में मनुष्य बनाता है यानि मानवीय मूल्यों के विकास में सहयोग देता है।

जैसा कि वर्णित है कि समाज की ईकाई हम व्यक्ति हैं, और इस समाज में हम विविध पारस्परिक और अंतर्वैयक्तिक संबंधों को निभाते हैं और इन गुणों को स्वयं में या भावी पीढ़ी में विकसित करने का दायित्व समाज के एक सदस्य के रूप में हम पर रहता है। हम मात्र स्वयं हेतु ही उत्तरदायी नहीं होते बल्कि समस्त समाज के प्रति उत्तरदायी होते हैं और यही समाज के प्रत्येक सदस्य पर लागू होता है। सामाजिक उन्नयन या सामाजिक विकास में व्यक्ति की इसी भूमिका को देखते हुए सोरेन्सन ने इसे परिभाषित किया है।

**सोरेन्सन** ने सामाजिक विकास को परिभाषित करते हुये लिखा है – "सामाजिक वृद्धि और विकास से तात्पर्य अपने साथ और दूसरों के साथ भली प्रकार चलने की बढ़ती हुई योग्यता से है।"

**हरलाक (1978)** के अनुसार – "सामाजिक विकास से तात्पर्य सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुकूल व्यवहार करने की क्षमता सीखने से होता है।"

सामाजिक विकास की इन परिभाषाओं और विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक उन्नयन का अर्थ किसी एक व्यक्ति के द्वारा स्वयं के विकास के लिए किए जाने प्रयासों से नहीं है बल्कि यह संपूर्ण समाज के विकास से संबंधित है। एक व्यक्ति का विकास संपूर्ण समाज के विकास का निरूपक नहीं हो सकता है और संपूर्ण समाज अपने प्रत्येक सदस्य के विकास के लिए उत्तरदायी होता है और इसके प्रक्रिया के दौरान

प्रत्येक सदस्य समाज के मानकों, सामाजिक गुणों, समाज स्वीकृत आचरणों तथा व्यवहारों को सीखने का प्रयास करता है। सामाजिक उन्नयन हमारे अंदर सामाजिकता के विकास के साथ ही हमें सामाजिक रूप से लाभकारी बनाने से संबंधित है। यह व्यक्ति के उस विकास से संबंधित है जिसके द्वारा व्यक्ति में स्वयं को प्रसन्न तथा लाभकारी तथा उन्नत बनाए रखने के साथ अन्य लोगों को भी प्रसन्न रखने तथा उनके लिए भी सार्थक होने की कला आ जाती है। व्यक्ति सामाजिक उत्तरदायित्वों को ग्रहण करते हुए समाज के एक बड़े वर्ग के हित के लिए कार्य करता है।

जैसा कि हमने समाज की परिभाषा में पाया कि यह व्यक्तियों का एक समूह है जिसमें वह साथ रहते हैं। जब एक समूह एक स्थान पर रहता है तब कई बार वहाँ समूह के सदस्यों के मध्य वैमनस्य और समस्या हो सकती है। अर्थात् जहाँ समाज में रहते हुए अपने अन्दर सामाजिक तथा नैतिक गुणों का विकास करता है वहीं कुछ संघर्षों के परिणामस्वरूप (और यह संघर्ष सार्वभौमिक हैं तथा समाज का एक विशेष गुण हैं जैसा कि कार्ल मार्क्स ने अपनी समाज की परिभाषा में बताया है) इन गुणों का लोप या ह्रास हो सकता है। समाज में वैमनस्यता, अनाचार, अपराध, तथा अन्य बुराइयाँ व्यक्ति के अंदर की लालची प्रवृत्ति, स्वार्थपरता, अनुशासनहीनता जैसी समस्याओं की वजह से हैं। ऐसे में एक सभ्य, सुसंस्कृत तथा आदर्श समाज की स्थापना में योग की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है क्योंकि योग व्यक्ति के आत्मिक शोधन और उन्नयन के साथ-साथ आदर्श गुणों के धारण और निर्वहन में योगदान देता है जो सामाजिक जीवन के लिए अनिवार्य है। योग का योगदान सामाजिक उन्नयन में किस प्रकार हो सकता है इसका उल्लेख इसी अध्याय में आगे किया गया है।

## 7.4 नैतिक उन्नयन

नैतिक शब्द का अंग्रेजी अनुवाद **moral** है। यदि **Moral** शब्द की उत्पत्ति के संदर्भ में देखें तो इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द **डवतंसपे** जिसका आशय 'समाज में व्यक्ति का उचित व्यवहार' होता है। नैतिक का आशय है नीति के अनुरूप। अर्थात् नीति के अनुरूप व्यवहार को हम नैतिक होने की संज्ञा देते हैं। सामाजिकता की तरह व्यक्ति के अन्दर नैतिकता भी जन्मजात रूप से नहीं होती है बल्कि यह समय के साथ समाज में रहने के परिणामस्वरूप विकसित होती है। व्यक्ति में नैतिकता का विकास भी समाज के माध्यम से ही होता है। यही कारण है कि अलग-अलग समाज के व्यक्तियों के लिए नैतिकता के मायने भी अलग होते हैं। मनुष्य के जीवन जीने की कला, उसके मूल्य, आदर्श, मान्यताएँ जो उसके जीवन के सभी क्रिया-कलापों को निर्देशित करती हैं, नैतिकता कहलाती हैं। नैतिकता वस्तुतः स्व-हित से ऊपर उठ कर समाज के हित में या लोक कल्याण से जुड़ी होती है। जब व्यक्ति स्वयं के लिए सोचता है और अपने हित में कार्य करता है वह स्वार्थ के रूप में जाना जाता है वहीं मनुष्य जब स्वयं से ऊपर उठकर अन्य के लिए या पूरे समाज के हित में कार्य करता है तो उसे परमार्थ की संज्ञा दी जाती है और ऐसे व्यक्ति को नैतिक की संज्ञा दी जाती है। जो व्यक्ति समाज के द्वारा बनाये गये नियमों व मान्यताओं के अनुसार व्यवहार करता है, उसका व्यवहार नैतिक माना जाता है और जो व्यक्ति सामाजिक नियमों एवं मान्यताओं का पालन नहीं करता है, उसका व्यवहार अनैतिक माना जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि नैतिकता पूर्ण रूप से एक सामाजिक तथ्य है। इस नैतिकता के विकास में विभिन्न संस्थाओं जैसे परिवार, पड़ोस, विद्यालय, समुदाय, संगी-साथी, कार्यस्थल और उससे जुड़े सदस्यों का योगदान होता है।

नीति के अनुरूप व्यक्ति के व्यवहार को नैतिकता की श्रेणी में रखा जाता है। यह नीतियाँ समाज के द्वारा निर्धारित नियम हैं। हम इस बात से पूरी तरह अवगत हैं कि विभिन्न समाजों में पर्याप्त अंतर होता है अतः समाज में अंतर के आधार पर नैतिकता के स्वरूप में भी अंतर देखने को मिलता है। परंतु हर एक समाज के कुछ नैतिक व्यवहार होते हैं। हरलॉक ने नैतिक व्यवहार को परिभाषित करते हुए कहा है कि "सामाजिक समूह के नैतिक कोड के अनुरूप व्यवहार ही नैतिक व्यवहार है" यद्य प्रत्येक समाज के कुछ मानक होते हैं और समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उन मानकों के अनुरूप ही व्यवहार करने की अपेक्षा की जाती है। यह मानक समाज के द्वारा ही तैयार किये जाते हैं जो व्यक्तिगत लाभ से अलग सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय के लिए होते हैं।

कोई भी समाज अपने प्रत्येक नागरिक से नैतिक होने की अपेक्षा रखता है। नैतिकता के अभाव में किसी भी समाज का कोई अस्तित्व नहीं रहेगा इसलिए प्रत्येक समाज का यह उद्देश्य होता है कि वह अपने नागरिकों में नैतिक गुणों का विकास करे। समाज अपने नागरिकों में उचित आदर्शों, सामाजिकता, उचित स्थायी भावों का विकास एवं संगठन, नैतिक और धार्मिक शिक्षा, चरित्र निर्माण, मूल्यों का बीजारोपण, इच्छा या संकल्प-शक्ति, अनुकरणीय व्यवहार, अच्छी आदतें, सोचने-विचारने की शक्ति जैसे गुणों का विकास करने का प्रयास करता है।

जब हम नैतिक उन्नयन या नैतिक विकास की बात करते हैं तो नैतिक उन्नयन के अंतर्गत उन मूल्यों या आदतों के विकास का प्रयास किया जाता है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को उत्कृष्टता देते हैं। कुछ नैतिक मूल्यों की बात की जाए जो समय तथा देश-काल से परे होते हैं। ये नैतिक मूल्य हर काल तथा स्थान पर समान रूप से स्वीकार किये जाते हैं वह हैं सत्यता, त्याग, प्रेम, धैर्य, ईमानदारी, परोपकार, क्षमा, कर्तव्य-निष्ठता, अनुशासन, दया, अहिंसा, समानता, समता, सेवाभाव इत्यादि। इन मूल्यों के बीजारोपण से व्यक्ति का नैतिक उन्नयन होता है। इन गुणों का विकास योग के माध्यम से किस प्रकार हो सकता है, कि चर्चा आगे की जाएगी।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

1. सामाजिक उन्नयन को परिभाषित करें।

.....

2. नैतिक उन्नयन के अर्थ को स्पष्ट करें।

.....

## 7.5 योग तथा सामाजिक और नैतिक उन्नयन

मनुष्य की आवश्यकतायें अनन्त हैं। कुछ आवश्यकतायें बुनियादी होती हैं और कुछ आवश्यकतायें बुनियादी आवश्यकतायें से ऊपर की होती हैं। अन्न, वस्त्र, आवास जहाँ बुनियादी आवश्यकताओं में सम्मिलित होते हैं वहीं प्रेम की आवश्यकता, मानसिक सुख और शांति, आत्म सम्मान, आत्मबोध, उच्च स्तर की आवश्यकतायें हैं। मनुष्य के लिए जितनी बुनियादी चीजें आवश्यक होती हैं उतनी ही आवश्यक उपरोक्त अन्य चीजें भी हैं और यही चीजें उसे पशुओं से अलग करते हुए पृथ्वी के सर्वश्रेष्ठ प्राणियों में ले जाकर खड़ा करती है। इन उच्च स्तर की आवश्यकताओं के लिए व्यक्ति को योग की आवश्यकता महसूस होती है। जब तक स्वहित तथा परहित दोनों में सामंजस्य बैठकर चलता है समाज सुचारु रूप से चलता है परंतु जब व्यक्ति के अंदर मात्र स्वहित की कामना हो जाती है उस समय घृणा, द्वेष, अनाचार, स्वार्थ, लिप्सा, वैमनस्य जैसे अवगुणों का बोलबाला हो जाता है। जो व्यक्ति के सामाजिक, नैतिक और चारित्रिक पतन का कारण बनता है। वास्तव में इंद्रियों की आसक्ति, मन की चंचलता, क्लेश और अज्ञानता व्यक्ति के कष्टों का सबसे बड़ा कारण है और यही कारण व्यक्ति को उसके पतन की ओर ले जाते हैं। योग में इन सभी को साधने और निवारण की बात की गयी है इस संदर्भ में योग और योगांगों की उन भूमिकाओं का वर्णन किया जाएगा जो व्यक्ति में सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक गुणों को बनाए रखते हुए उसका उन्नयन करती हैं।

### 7.5.1 यम

**अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः ॥ 30 ॥**

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह— यह पाँच यम हैं। यह सभी वर्णित यम जाति, देशकाल और विशेष नियम की सीमा से रहित और प्रत्येक अवस्था में पालन करने योग्य महाव्रत कहलाते हैं। यह पाँचों हर जगह पर होने चाहिए, हर समय पर होने चाहिए और हर एक व्यक्ति के साथ होने चाहिए।

#### 1. अहिंसा

**अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥ 35 ॥**

अर्थात् अहिंसा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर उस योगी के निकट सब प्राणी बैर का त्याग कर देते हैं

(पातंजलि योग दर्शन)।

जब योगी का अहिंसा भाव पूर्णतया दृढ़ स्थिर हो जाता है तब उसके निकटवर्ती हिंसक जीव भी में बैर भाव से रहित हो जाते हैं। इतिहास-ग्रंथों में जहां मुनियों के आश्रम के शोभा का वर्णन आता है वह वन्यजीवों में स्वभाविक बैर का अभाव दिखलाया गया है। यह उन ऋषियों के अहिंसा भाव की प्रतिष्ठा का द्योतक है (पातंजलि योग दर्शन)।

हमारे भारतीय समाज में सामान्य रूप से कहा जाता है कि 'अहिंसा परमो धर्म' यानी कि अहिंसा से बड़ा कोई अन्य धर्म नहीं है। अहिंसा का आशय है किसी को कष्ट या चोट नहीं पहुंचाना। यहाँ पर प्रश्न है कि अहिंसा के पालन से सामाजिक या नैतिक उन्नयन किस प्रकार से हो सकता है? जब हमारे अंदर संपूर्ण जगत के प्रति प्रेम, दया, मैत्री और बंधुत्व का भाव होगा तब हम किसी को कष्ट नहीं पहुंचाएंगे। और जैसा श्लोक में वर्णित है कि ना केवल वह साधक ही जो अहिंसा का पालन करता है वह बैर का त्याग कर देता है बल्कि उस व्यक्ति के सानिध्य में जो भी अन्य व्यक्ति या जीव जन्तु आते हैं वह भी इस बैर भाव से दूरी बना लेते हैं और सबके लिए मन में सदविचार रखते हैं। अगर हम हिंसा को देखें तो हिंसा मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है (प) परहिंसा और (पप) स्वहिंसा। पर हिंसा जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि हम इस प्रकार की हिंसा में दूसरों को शारीरिक तथा मानसिक रूप से कष्ट पहुंचाते हैं वहीं स्वहिंसा में स्वयं के प्रति की गयी हिंसा सम्मिलित होती है। इसमें हम खुद के साथ बौद्धिक तथा आध्यात्मिक हिंसा करते हैं। जब हमें मनुष्य जीवन मिला है तो ऐसे में विवेक की प्राप्ति अपरिहार्य हो जाती है। सांख्य दर्शन तथा योग दर्शन प्रकृति में सन्निहित तेईस तत्वों में सर्वोच्च तत्व विवेक को मानते हैं जो व्यक्ति को इस योग्य बनाता है जिससे वह नित्य तथा अनित्य या पुरुष और प्रकृति के भेद को समझते हुए मोक्ष प्राप्ति के अपने मार्ग का अनुसरण कर सके। मनुष्य के रूप में जन्म ही इसलिए हुआ है कि व्यक्ति जन्म-मरण के चक्र से छूटकर मुक्ति को प्राप्त करे। ऐसे में व्यक्ति द्वारा विवेक की प्राप्ति के लिए प्रयास न करना, ऐसे में विवेक को जाग्रत न करना, ख्याति को प्राप्त न करना स्वयं की प्रति की गई हिंसा है। स्वहिंसा में दूसरी हिंसा आध्यात्मिक हिंसा है। व्यक्ति का अपनी आत्मा के स्वरूप को नहीं जानना, शरीर तथा आत्मा के मध्य निहित अंतर को नहीं समझ पाना व्यक्ति की स्वयं के साथ की गई हिंसा है। जो व्यक्ति स्वयं के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ पाता है और स्वयं को मात्र शरीर समझता है ऐसे में वह व्यक्ति आत्मा और नश्वर शरीर को सर्वकालिक मानकर आत्मा की उपेक्षा करता है ऐसे में अहिंसा का पालन हमें किसी के प्रति हर प्रकार की हिंसा को करने से रोकता है चाहे वह स्वयं के प्रति हो या समाज के अन्य व्यक्तियों के प्रति हो। यदि व्यक्ति मन, वचन या कर्म से कोई हिंसा नहीं करेगा तो उनमें उन गुणों का विकास होगा जिसकी अपेक्षा समाज के एक अच्छे सदस्य से होती है साथ ही समाज का प्रत्येक सदस्य ऐसा हुआ तो सम्पूर्ण समाज ही एक सभ्य तथा सुसंस्कृत समाज में परिणत हो जाएगा।

## 2. सत्य

### सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ 36 ॥

अर्थात् सत्य की दृढ़स्थिति हो जाने पर (योगी में) क्रिया फल के आश्रय का भाव आ जाता है (पातंजल्य योग दर्शन)।

जब योगी सत्य का पालन करने में पूर्णतया परिपक्व हो जाता है, उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं रहती, उस समय वह योग कर्तव्य पालन रूप क्रियाओं के फल का आश्रय बन जाता है, जो कर्म किसी ने नहीं किया है, उसका भी फल उसे प्रदान कर देने की शक्ति उसी योगी में आ जाती है, अर्थात् जिसको जो वरदान, श्राप या आशीर्वाद देता है, वह सत्य हो जाता है (पातंजल्य योग दर्शन)।

सत्य का अर्थ है यथार्थ ज्ञान। यह इंगित करता है कि किसी भी देश काल परिस्थिति में झूठ नहीं बोलना चाहिए। समय चाहे कैसा भी हो, कोई भी परिस्थिति हो व्यक्ति में स्पष्ट बात बोलने की हिम्मत होनी चाहिए। हम झूठ का आश्रय तभी लेते हैं जब किसी भी बात को लेकर किसी भी प्रकार का भय होता है। हम सत्य बोलने से होने वाले परिणाम को लेकर भयभीत होते हैं और इसी कारण मिथ्या का सहारा लेते हैं। यम किसी लाभ के लिए या फिर किसी भी चीज से बचने के लिए बोले झूठ को हतोत्साहित करता है तथा प्रत्येक परिस्थिति में सत्य के मार्ग का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करता है। जब व्यक्ति असत्य नहीं बोलेगा तो असत्य बोलने से होने वाली सभी हानियों से भी बचा रहेगा। असत्य बोलना अन्य कई सारे विकारों को जन्म देता है तो ऐसे में असत्य से

बचकर व्यक्ति अन्य कई विकारों या अपराधों से भी बचा रहता है।

### 3. अस्तेय

**अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ 37 ॥**

चोरी के अभाव की दृढ़स्थिति हो जाने पर (उस योगी के सामने) सब प्रकार के रत्न प्रकट हो जाते हैं।

जब साधक में चोरी का अभाव पूर्णतया प्रतिष्ठित हो जाता है तब पृथ्वी में जहां कहीं भी गुप्त स्थान में पड़े हुए समस्त रत्न उसके सामने प्रकट हो जाते हैं अर्थात् उसकी जानकारी में आ जाते हैं परंतु उनके प्रति लालच का भाव उस व्यक्ति में नहीं होता।

अस्तेय का अर्थ है चोरी नहीं करना या पराई वस्तुओं के प्रति लालच का भाव ना होना। व्यक्ति चोरी तभी करता है जब उसमें किसी अन्य व्यक्ति के चीजों के प्रति वांछना रहती है। जब हमारे पास किसी वस्तु का अभाव रहता है और हम किसी भी प्रकार से उस वस्तु को प्राप्त करना चाहते हैं तो ऐसे में दूसरे व्यक्ति की उस वस्तु को चुरा लेते हैं। ऐसे में व्यक्ति को अपने कर्तव्यों, अपने विचारों तथा कर्मों का विवेक होना चाहिए कि वह क्या कर रहा है और उसके द्वारा किए जाने वाला यह कार्य करणीय है अथवा अकरणीय है। व्यक्ति मात्र परिणामों से डर कर चोरी ना करे तब वह नैतिकता की श्रेणी में नहीं आता। जब व्यक्ति को स्वविवेक हो कि चोरी करना गलत है और वह इस बात को समझते हुए चोरी या ऐसी ही किसी अन्य गतिविधियों से दूर रहता है तब वह व्यक्ति का नैतिक उन्नयन है।

### 4. ब्रह्मचर्य

**ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ 38 ॥**

ब्रह्मचर्य की दृढ़स्थिति हो जाने पर सामर्थ्य का लाभ होता है।

जब साधक में ब्रह्मचर्य की पूर्णतया दृढ़स्थिति हो जाती है, तब उसके मन, बुद्धि, इंद्रिय और शरीर में अपूर्व शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है। साधारण मनुष्य किसी काम में भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते हैं।

ब्रह्मचर्य से आशय है सात्विक जीवन बिताना, शुभ विचारों से अपने वीर्य का रक्षा करना, ब्रह्म में ध्यान लगाना तथा विद्या प्राप्त करना।

ब्रह्मचर्य की दृष्टि हो जाने पर सामर्थ्य का लाभ होता है जब साधक में ब्रह्मचर्य की पूर्णतया स्थिति हो जाती है तब उसके मन बुद्धि इंद्रिय और शरीर में अपूर्व शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है साधारण मनुष्य किसी काम में भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते हैं अपरिग्रह की स्थिति हो जाने पर पूर्व जन्म कैसे हुए थे इस बात का भली-भांति ज्ञान हो जाता है जब योगी में अपरिग्रह का भाव पूर्णतया स्थिर हो जाता है तब उसे अपने पूर्वजों की और वर्तमान जन्म की सब बातें मालूम हो जाती हैं अर्थात् मैं पहले शिवनी में हुआ था मैंने उस समय क्या-क्या काम किए किस प्रकार रहा यह सब स्वर्ण हो जाते हैं और इस जन्म की बीती हुई सब बातें स्मरण हो जाती है यह ज्ञान भी संसार में वैराग्य उत्पन्न करने वाला और जन्म मरण से छुटकारा पाने के लिए योग साधन में प्रवृत्त करने वाला है यहां तक की सिद्धि का फल बताया गया है।

अथर्ववेद के ग्यारहवें कांड में कहा गया है कि —

**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।**

**इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवभ्यः स्वराभरत् ॥ 5.19 ॥**

अर्थात् जिस ब्रह्मचर्यरूप तपोबल (साधना) से सभी देवताओं ने मृत्यु का निवारण किया, उसी ब्रह्मचर्य के सामर्थ्य से देवराज इन्द्र अन्य देवताओं तथा समस्त देवताओं को दिव्य तेज देने में समर्थ हुआ।

ब्रह्मचर्य के तप से अथवा ब्रह्मचर्य और तप के द्वारा विद्वान लोग मौत को मार भागते हैं। जीवात्मा भी ब्रह्मचारी के द्वारा इंद्रियों से सुख प्राप्त करता है। ब्रह्मचर्य के पालन से देवों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की। उल्लिखित शोक का अर्थ है कि व्यक्ति को अपनी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का संचय करना आवश्यक है। संयम ही वह मार्ग है जिससे मनुष्य अपनी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है अन्यथा हमारे आसपास भोग तथा विलास के साधन भरे पड़े हैं जिनमें आसक्ति के कारण मनुष्य शक्तिहीन होकर मृत्यु को प्राप्त करता है। ब्रह्मचर्य का आशय

स्वयं को मात्र स्त्री या पुरुष गमन से रोकना ही नहीं बल्कि अकारथ वस्तुओं जो क्षणिक आनंद देने वाली हैं उसमें व्यक्ति की आसक्ति से है। ब्रह्मचर्य ब्रह्म रस और ब्रह्म आनंद में इतना तल्लीन होना है कि दैहिक तथा मानसिक भोगों का विचार भी मन में ना आए। संयोग तथा वियोग दोनों ही पुद्गल की अवस्थाएं हैं। ऐसे में संयोग से आसक्ति ना होना तथा वियोग में व्यथित न होना ही सही अर्थों में ब्रह्मचर्य का पालन है। यम व्यक्ति में यह दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास करता है कि वह इन बातों से प्रभावित हुए बिना ब्रह्म रस में तल्लीन हो और अंततः सच्चिदानंद की स्थिति को प्राप्त करें। व्यक्ति में जब विवेकख्याति आ जाती है तब वह समझ पाता है संयोग और वियोग एक ही हैं।

## 5. अपरिग्रह

### अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः ॥ 39 ॥

अपरिग्रह की स्थिति हो जाने पर पूर्व जन्म कैसे हुए थे, इस बात का भली-भाँति ज्ञान हो जाता है।

जब योगी में अपरिग्रह का भाव पूर्णतया स्थिर हो जाता है तब उसे अपने पूर्वजन्मों की और वर्तमान जन्म की सब बातें मालूम हो जाती हैं अर्थात् मैं पहले किस योनि में हुआ था, मैंने उस समय क्या-क्या काम किए, किस प्रकार रहा— यह सब स्मरण हो जाते हैं और इस जन्म की बीती हुई सब बातें स्मरण हो जाती हैं। यह ज्ञान भी संसार में वैराग्य उत्पन्न करने वाला और जन्म मरण से छुटकारा पाने के लिए योग साधन में प्रवृत्त करने वाला है।

अपरिग्रह का आशय है किसी भी प्रकार की वस्तु व्यक्ति विचारों का संग्रह नहीं होना। अपरिग्रह के अंतर्गत व्यक्ति आंतरिक संतोष का अनुभव करता है और इस प्रकार से जो भी वस्तुएं उसके पास हैं वह उसमें संतुष्टि का अनुभव करता है। अपरिग्रह योगी को एक सादा और सरल जीवन जीने पर बल देता है। समाज के अन्य सदस्यों के साथ वस्तुओं या धन के मामले में की गयी प्रतिस्पर्धा व्यक्ति में लालच और वासना को बढ़ाती है। लोभ ऐसी तृष्णा है, जो कभी भी तृप्त नहीं हो सकती। इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए अनैतिक उपाय करना जीवन को भ्रमित करता है और अंत में दुखदायी प्राप्ति की ओर ले जाता है।

## 7.5.2 नियम

### शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

यम जहाँ हमें दूसरों के साथ हमारा व्यवहार कैसा हो यह निर्देशित करता है, वहीं नियम यह इंगित करता है कि व्यक्ति का स्वयं के साथ कैसा व्यवहार हो। योग सूत्र में पतंजलि ने पाँच नियमों की व्याख्या की है। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, ये पाँच नियम हैं जिनका वर्णन यहां किया जाएगा।

## 1. शौच

### शौचात्स्वागजुप्सा परैरसंसर्गः ॥ 40 ॥

अर्थात् शौच के पालन से अपने अंगों में वैराग्य (और) दूसरों से संसर्ग ना करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

बाह्य शुद्धि के पालन से साधक की अपने शरीर में अपवित्र बुद्धि होकर उसमें वैराग्य हो जाता है अर्थात् उसमें आसक्ति नहीं रहती और दूसरे सांसारिक मनुष्यों के साथ संसर्ग करने की इच्छा नहीं रहती अर्थात् उनके संग में भी प्रवृत्ति या आसक्ति नहीं रहती है।

इसके साथ ही व्यक्ति का आंतरिक रूप भी शुद्ध होता है और इसके लिए योग दर्शन में कहा गया है।

### सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यतवानि च ॥ 41 ॥

अर्थात् इसके सिवा अंतःकरण की शुद्धि, मन में प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इंद्रियों को वश में होना और आत्म साक्षात्कार करने की योग्यता यह पाँचों भी होते हैं।

मैत्री आदि की भावना के द्वारा अथवा जप तप आदि अन्य किसी साधन द्वारा आंतरिक शौच के लिए अभ्यास करने से राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि मलों का अभाव होकर मनुष्य का अंतरण निर्मल और स्वच्छ हो जाता है। मन की व्याकुलता का नाश होकर उसमें सदैव प्रसन्नता बनी रहती है, विक्षेप—दोष का नाश होकर एकाग्रता आ जाती है और सब इंद्रियां मन के वश में हो जाती हैं अतः उसमें आत्मदर्शन की योग्यता आ जाती है।

ऊपर वाले सूत्र में बाह्य शौच का फल बताया गया है दूसरे श्लोक में भीतर की शुद्धि का फल बताया गया है

शौच में बाहरी शुद्धि के साथ-साथ आंतरिक शुद्धि पर भी बल दिया जाता है। शौच के अनुसार पवित्रता शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही होनी चाहिए। जहाँ वर्णित पहला श्लोक बताता है कि शारीरिक शुद्धता व्यक्ति के लिए आवश्यक है वहीं अगला श्लोक व्यक्ति को उसके शरीर के साथ-साथ मन को भी पवित्र रखने पर बल देता है। यह व्यक्तित्व तथा अंतरण निर्मल होना चाहिए। मन स्वच्छ, मस्तिष्क निर्मल, शरीर स्वच्छ तथा भाव निर्मल होने चाहिए।

## 2. संतोष

संतोषादनुत्तमः सुखलाभः ॥ 42 ॥

संतोष से जिससे उत्तम दूसरा कोई सुख नहीं है— ऐसे सर्वोत्तम सुख का लाभ होता है।

संतोष से अर्थात् चाहरहित होने पर जो अनंत सुख मिलता है, उसकी बराबरी दूसरा कोई सांसारिक सुख नहीं कर सकता। वह ही सर्वोत्तम सुख है।

शौच के पश्चात संतोष का स्थान आता है। संतोष में भीतरी संतोष और बाह्य संतोष दोनों ही आते हैं। संतोष के होने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि किसी नए कार्य को करने अथवा नई वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रयास नहीं करना चाहिए या नई चीज के लिए तत्परता नहीं दिखानी चाहिए। संतोष का अर्थ है किसी भी वस्तु के लिए प्रयास नहीं करने से नहीं है हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से नहीं है। यह कहता है कि जितना है उसमें तृप्ति का भाव होना चाहिए और जो मिला है उसके लिए ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए उन्हें किसी अन्य किसी भी वस्तु के लालच का भाव नहीं आना चाहिए। जो कुछ भी ईश्वर ने दिया है उसके प्रति संतोष, निष्काम कर्म, मन में उत्साह, और फिर वही से निष्काम भाव से नए की तैयारी करनी चाहिए। व्यक्ति के पास जो कुछ भी है उसके लिए परम आदर्श यही जो उसके आगे मिले उसके लिए तैयार रहना चाहिए और उसके लिए उचित कर्म करना चाहिए यही संतोष है। अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए किसी भी कार्य का जो कुछ भी परिणाम उपलब्ध हो तथा अपने प्रारब्ध के अनुसार अपने आपको जो कुछ भी प्राप्त हो जाए, उस अवस्था या परिस्थिति में संतुष्ट रहना या किसी भी प्रकार की तृष्णा से बच के रहना ही संतोष है। विषय-वासना के परित्याग से जो सुख उत्पन्न होता है वह सुख-संतोष के नाम से जाना जाता है। यह कहा भी गया है कि 'संतोषम् परम सुखम्' अर्थात् यदि व्यक्ति संतोष करता है तो उसे उस संतोष के माध्यम से परम सुख की प्राप्ति होती है। जिस व्यक्ति में संतोष होता है वह किसी भी प्रकार के भ्रष्टाचार, लालच, चोरी इत्यादि से दूर रहता है।

## 3. तप

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥ 43 ॥

तप के प्रभाव से ; जब अशुद्धि का नाश हो जाता है, तब शरीर और इंद्रियों की सिद्धि हो जाती है।

स्वधर्म-पालन के लिए व्रत-उपवास आदि करने या अन्य सब प्रकार के कष्ट सहने का नाम 'तप' है। इसके अभ्यास से शरीर और इंद्रियों के मल का नाश हो जाता है, तब योगी का शरीर स्वस्थ, स्वच्छ, और हल्का हो जाता है। तप के प्रभाव से योगसूत्र के तीसरे पाद के पैतालीसवें और छियालीसवें सूत्र में बतलाई हुई काय-सम्पद् रूप शरीर-सम्बन्धी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं एवं सूक्ष्म, दूर देश में और व्यवधानयुक्त स्थान में स्थित विषयों को देखना, सुनना आदि इंद्रियसंबन्धी सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है।

तीसरा नियम तप है। तप चित्त का निग्रह, कुप्रवृत्तियों का दमन, तथा विषयों से पराङ्मुख होना है। अपने वर्णाश्रम, परिस्थिति और योग्यता के अनुसार स्वधर्म का पालन और उस पालन के अंतर्गत यदि किसी भी प्रकार की शारीरिक या मानसिक पीड़ा भी हो उस पीड़ा को प्रसन्नता पूर्वक सहन कर लेना ही तप है। तप के किसी भी प्रकार के व्रत उपवास आदि को इसमें शामिल नहीं किया जाता है। सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, हानि-लाभ आदि सभी चीजों से ऊपर उठना और इनके लिए व्यग्र ना होना या इनके लिए किसी भी प्रकार की लालसा नहीं प्रदर्शित करना तप है।

#### 4. स्वाध्याय

##### स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ।। 44 ।।

स्वाध्याय से इष्टदेवता की भली-भाँति प्राप्ति (साक्षात्कार) हो जाता है।

शास्त्राभ्यास, मंत्रजप और अपने जीवन का अध्ययनरूप स्वाध्याय के प्रभाव से योगी जिस इष्टदेव का दर्शन करना चाहता है, उसी का दर्शन हो जाता है।

वह साधन जिससे अपने कर्तव्यों तथा और कर्तव्यों का बोध हो और उसके अनुसार ही शास्त्र आदि का अध्ययन तथा पुरुषों के वचनों का अनुपालन करना स्वाध्याय के अंतर्गत आता है। स्वाध्याय में ईश्वर या ओंकार का जाप करना भी सम्मिलित किया जाता है। जप या स्वाध्याय के अंतर्गत इस जबकि तीन तरीके बताए गए हैं यह उपांशु, वाचिक और मानस। अभ्यासी के लिए स्वाध्याय अत्यंत आवश्यक है। स्वाध्याय का अर्थ वेद, दर्शन, ग्रंथ, महापुरुषों की रचनाओं को पढ़ना और उन पर विचार करना। स्वाध्याय सत्संग का ही प्रकारांतर है। इससे शंकाओं के समाधान में सहायता मिलती है। स्वाध्याय का अभ्यासी अच्छी पुस्तकों के संपर्क में आने से स्वयं में अच्छे गुणों का विकास करता है। साथ ही ईश का नाम लेने से, उनके स्मरण से व्यक्ति अपने अंदर की बुराइयों पर विजय प्राप्त करते जाता है और अपने अंदर सद्गुणों का विकास करता है।

#### 5. ईश्वर प्रणिधान

##### समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ।। 45 ।।

ईश्वर प्रणिधान से, समाधि की सिद्धि हो जाती है।

ईश्वर की शरणागति से योग साधन में आने वाले विघ्नों का नाश होकर शीघ्र ही समाधान निष्पन्न हो जाती है, क्योंकि ईश्वर पर निर्भर रहने वाला साधक तो केवल तत्परता से साधन करता है, उसे साधन के परिणाम की चिंता नहीं रहती। उसके साधन में आने वाले विघ्नों को दूर करने का और साधन की सिद्धि का भार ईश्वर के जिम्मे पड़ जाता है, अतः साधन का अनायास और शीघ्र पूर्ण होना स्वाभाविक है।

परित्याग कर समस्त कर्मों का अनुपालन करना और अपने कर्मों को ईश्वर को समर्पित कर देना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है। ईश्वर प्रणिधान को ईश्वर की पूजा अर्चना से लिया जाता है परंतु इसका वास्तविक अर्थ नहीं है। ईश्वर की सत्ता को पूर्ण रूप से स्वीकार करते हुए, अपनी संपूर्ण क्रियाओं को ईश्वर को समर्पित कर देना और हर समय ईश्वर का ध्यान करना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।

#### 7.5.3 आसन

##### स्थिरसुखमासनम् ।। 46 ।।

निश्चल (हिलने-चलने से रहित) सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है।

हठयोग में आसनों के बहुत भेद बतलाए गए हैं। भाव यह है कि जो साधक अपनी योग्यता के अनुसार जिस रीति से बिना हिले-डुले स्थिर भाव से सुखपूर्वक बिना किसी प्रकार की पीड़ा के बहुत समय तक बैठ सके वही आसन उसके लिए उपयुक्त है। इसके सिवा जिस पर बैठकर साधन किया जाता है उसका नाम भी आसन है अतः वह भी स्थिर और सुखपूर्वक बैठने लायक होना चाहिए।

तीसरा योग आसन है। शरीर का सुख पूर्वक एक मुद्रा में स्थिर रहना आसन है। आसन में शरीर में कोई अनावश्यक गति नहीं होती है और न ही एक लंबे काल तक शरीर में अनावश्यक गति न होने कारण शरीर को उसमें कष्ट होता है। आसन के दौरान मन की चंचलता पर अंकुश रहता है। आसन के कई प्रकार होते हैं। आसनों के अभ्यास से साधक का शरीर स्वस्थ रहता है और उस पर साधक का अधिकार हो जाता है। आसनों का अभ्यास सम्पूर्ण शरीर को, तंत्रिका-तंत्र को स्वस्थ रखता है। शरीर पर नियंत्रण प्राप्त कर लेना ही योग का आधार है। यदि किसी व्यक्ति का अपने शरीर या मन पर नियंत्रण ना हो तो वह अपने मन और तन को परिशुद्ध नहीं कर सकता है। एक स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन का स्वामी ही स्वयं के और समाज के उद्विकास हेतु कार्य कर सकता है।

## 7.5.4 प्राणायाम

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोरगतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ 49 ॥

उस आसन की सिद्धि होने के बाद श्वास और प्रश्वास की गति का रुक जाना प्राणायाम है।

प्राणवायु का शरीर में प्रविष्ट होना श्वास और बाहर निकलना प्रश्वास है। इन दोनों की गति का रुक जाना अर्थात् प्राणवायु की गमनागमन रूप क्रिया का बंद हो जाना ही प्राणायाम का सामान्य लक्षण है।

योग का चौथा अंग प्राणायाम है। श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक क्रिया पर नियंत्रण स्थापित कर उसमें एक नियमित क्रम लाना ही प्राणायाम कहलाता है। श्वास तो हम सभी लेते और छोड़ते हैं पर उस पर हमारा अधिकार नहीं होता है। वह मात्र एक अनैच्छिक क्रिया होती है। श्वास-प्रश्वास की नियंत्रित क्रिया प्राणायाम है। प्राणायाम के तीन भाग होते हैं पूरक, कुंभक और रेचक। पूरक में गहरी सांस ली जाती है। कुम्भक में फेफड़ों में भरी हुई वायु को कुछ काल तक रोका जाता है। रेचक में उस वायु को धीरे धीरे बाहर निकाला जाता है। इन तीनों का काल निश्चित होता है। शारीरिक क्रियाओं का संचालन प्राण शक्तियों के द्वारा होता है। हमारी शारीरिक क्रियाओं में हमारी मन की इच्छाएं और संकल्प प्रकट होते हैं। अतः मन का नियंत्रण से प्राण का नियंत्रण संचालित होता है। प्राणायाम वह मार्ग है जो समाधि तक ले जाता है। मन के सत्त्व को प्रभावित कर उसे भटकाने वाले विकारों का प्राणायाम के अभ्यास से शमन हो जाता है। विवेक-ज्ञान के प्रतिबंधक पापों का नाश इसके माध्यम से हो जाता है। प्राणायाम को सबसे बड़े तप के रूप देखा जाता है। इससे मन के सभी मल, सभी विकार नष्ट हो जाते हैं और ज्ञान का उदय होता है। प्राणायाम का अभ्यास प्रत्येक योगी को करना चाहिए।

## 7.5.5 प्रत्याहार

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्यस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ 54 ॥

अपने विषयों के संबंध से रहित होने पर इंद्रियों का जो चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाना है वह प्रत्याहार है।

उक्त प्रकार से प्राणायाम का अभ्यास करते-करते मन और इंद्रियों शुद्ध हो जाती हैं, उसके बाद इंद्रियों की बाह्यवृत्ति वृद्धि को सब ओर से समेटकर अपने मन में विलीन करने के अभ्यास का नाम प्रत्याहार है। जब साधन काल में साधक इंद्रियों के विषयों का त्याग करके चित्त को अपने ध्येय में लगाता है, उस समय जो इंद्रियों का विषयों की ओर न जाकर चित्त में विलीन हो जाना है, वह प्रत्याहार सिद्ध होने की पहचान है। यदि उस समय भी इंद्रियाँ पहले के अभ्यास से इसके सामने बाह्य विषयों का चित्र उपस्थित करती रहें तो समझना चाहिए कि प्रत्याहार नहीं हुआ। उपनिषदों में भी 'वाक्' शब्द के उपलक्षित इंद्रियों को मन में निरुद्ध करने की बात कह कर यही भाव दिखलाया गया है।

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ 55 ॥

अर्थात् उससे (प्रत्याहार) इंद्रियों की परम वश्यता (हो जाती है)।

प्रत्याहार की सिद्धि के पश्चात् योगी की इंद्रियाँ उसके सर्वथा वक्ष में हो जाती हैं, उनकी स्वतंत्रता का सर्वथा अभाव हो जाता है। प्रत्याहार की सिद्धि हो जाने के बाद इंद्रिय-विजय के लिए अन्य साधनों की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

जिस व्यक्ति का मन तथा इंद्रियाँ बाह्यपदार्थों से हट जाता है उसे सांसारिक प्रपंचों में रुचि नहीं रह जाती। वह विषय-वासनाओं और किसी भी प्रकार की आसक्ति से परे जाकर उन वृत्तियों का विरोध करता है जो उसे अंधकार की ओर प्रवृत्त करते हैं और सत्त्व तथा रजो गुण से प्रेरित कार्यों को करने से रोकते हैं। व्यक्ति क्रियाशील, दृढ़-संकल्प तथा स्फूर्त रूप से कार्य करते हुए अपने मन को शुद्धता तथा शांति की ओर ले जाता है।

प्रत्याहार को योग का पाँचवा अंग कहते हैं। प्रत्याहार का मतलब मन को बाह्य वस्तुओं से हटा कर इंद्रियों को उन से हटा देना है। यदि मन बाह्य विषयों से हट जाए तो इन्द्रियाँ स्वयं ही उन विषयों से विरत हो जाती हैं। इन्द्रियाँ स्वयं में विषयों के प्रति आसक्त नहीं होती बल्कि मन विषयों में पीछे चलता है। इंद्रियाँ उन्हीं विषयों का अनुसरण करती हैं, जिन पर मन आसक्त होता है। बाह्य इंद्रियों का संयम मन के संयम पर निर्भर होता है। अनवरत अभ्यास, संकल्प और इन्द्रिय निग्रह से प्रत्याहार सिद्ध होता है। मन पर संयमन व्यक्ति को प्रत्येक प्रकार

के विकार से बचाता है जिससे व्यक्ति नैतिक रूप से उन्नत होता है और सामाजिक रूप से उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करता है।

### 7.5.6 धारणा

योगसूत्र के विभूतिपाद के प्रथम श्लोक में वर्णित है कि —

**देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ १ ॥**

(बाहर या शरीर के भीतर कहीं भी) किसी एक देश में चित्त को ठहराना धारणा है।

नाभिचक्र, हृदय—कमल आती शरीर के भीतरी देश हैं और आकाश या सूर्य—चन्द्रमा आदि देवता या कोई भी मूर्ति तथा कोई भी पदार्थ बाहर के देश हैं, उनमें से किसी एक देश में चित्त की वृत्ति को लगाने का नाम धारणा है।

योग का छठा अंग धारणा है। धारणा से आशय चित्त को किसी एक वस्तु पर केन्द्रित करना है। यह वस्तु शरीर के अंदर की या बाहर की हो सकती है। चित्त को व्यक्ति अपने शरीर के किसी भी अंग जैसे हृदय, भृकुटि—मध्य, मस्तक, कण्ठ जिह्वाग्र, नासिकाग्र या अन्य किसी अंग पर केंद्रित किया जा सकता है अथवा किसी भी बाह्य वस्तु जैसे देव प्रतिमा किसी चित्र या ऐसी ही किसी अन्य वस्तु पर। आसन शरीर को स्वस्थ रखता है तथा प्राणायाम श्वास—प्रश्वास को नियमित रखता है। प्रत्याहार इन्द्रियों पर नियंत्रण करता है। धारणा से चित्त का नियंत्रण होता है। चित्त को अन्य वस्तुओं से हटा किसी एक बिन्दु पर स्थापित करना धारणा है। यह साधक को ध्यान की ओर ले जाता है। धारणा व्यक्ति का ध्यान विषय—वासनाओं से हटा किसी एक वस्तु पर केंद्रित करते हुए उसे दुर्गुणों से बचाती है।

### 7.5.7 ध्यान

**तत् प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ २ ॥**

(जहाँ चित्त को लगाया जाए) उसी में। वृत्ति का एकतार चलना, ध्यान है।

जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाए, उसी में चित्त का एकाग्र हो जाना अर्थात् केवल ध्येयमात्र की एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह चलना, उसके बीच में किसी भी दूसरी वृत्ति का न उठना ध्यान है।

अगला योगांग ध्यान है। ध्यान को 'प्रत्यय की एकतानता' के रूप में देखा जाता है अर्थात् उस में ध्यान एक ही वस्तु पर लगातार अविच्छिन्न रूप से बना रहता है और किसी अन्य वस्तु के कारण व्यक्ति का ध्यान विच्छिन्न नहीं होने पाता है। अन्य वस्तुओं से हटाकर एक वस्तु पर चित्त को एकाग्र करने में ध्यान की अवस्था पैदा होती है। जब उस वस्तु का ज्ञान धारावाहिक रूप से दीर्घकाल तक रहता है। ध्यान में ध्येय के वस्तु के प्रत्ययों का निरंतर प्रवाह चलता रहता है और उस प्रवाह के मध्य किसी विसदृश प्रत्यय का प्रवेश नहीं होता।

### 7.5.8 समाधि

**तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ ३ ॥**

जब (ध्यान में) केवल ध्येयमात्र की ही प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य—सा हो जाता है तब वही (ध्यान ही) समाधि हो जाता है।

ध्यान करते—करते जब चित्त ध्येयाकार में परिणत हो जाता है, उसके अपने स्वरूप का अभाव—सा हो जाता है, उसको ध्येय से भिन्न उपलब्धि नहीं होती, उस समय उस ध्यान का ही नाम समाधि हो जाता है। यह लक्षण निर्विकल्पा समापत्ति के नाम से पहले पाद में किया गया है।

अंतिम और आठवाँ योगांग समाधि है। समाधि की अवस्था केवल ध्येय वस्तुओं की ही चेतना रहती है, उस चेतना की चेतना नहीं रहती। धारणा में चित्त एकाग्र होता है यानी अन्य वस्तुओं को छोड़कर केवल एक वस्तु पर केंद्रित रहता है। ध्यान में जिस वस्तु पर चित्त केंद्रित रहता है। उसके प्रत्ययों का दीर्घकाल तक अटूट प्रवाह बना रहता है। उस अवस्था में वस्तु की, ध्यान क्रिया की और आत्मा की चेतना रहती है। समाधि में अर्थमात्र का निर्भास रहता है, आत्मा का और ध्यान की क्रिया का निर्भास नहीं रहता है। समाधि में आत्मा का और ध्यान क्रिया का लोप हो जाता है, केवल ध्येय वस्तु का प्रकाश रहता है। समाधि की दीर्घकालिक अवस्था संप्रज्ञात समाधि के

कहलाती है। समाधि की वह अवस्था जब जब साधक के लिए अर्थ प्रकाश का भी लोप हो जाता है तब समाधि की तभी से संपर्क ज्ञात समाधि कहते हैं। जब अर्थ के प्रकाश का भी लोप हो जाता है तो यह स्थिति असम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। संक्षिप्त में जब केवल ध्येय ही अर्थ मात्र से भासता है और उसका स्वरूप शून्य हो जाता है वह ध्यान ही समाधि कहलाता है।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

- (क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।  
 (ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।
3. अहिंसा के माध्यम से किस प्रकार सामाजिक गुणों का विकास किया जा सकता है ?

.....  
 .....

4. तप किस प्रकार नैतिक उन्नयन करता है ?

.....  
 .....

5. धारणा से किस प्रकार व्यक्ति का सामाजिक तथा नैतिक उन्नयन करती है ?

.....  
 .....

## 7.6 सामाजिक और नैतिक उन्नयन में योग की भूमिका

योग साधना का उद्देश्य हमारे जीवन का समग्र विकास करना है। समग्र विकास का अर्थ व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। सर्वांगीण विकास का तात्पर्य व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं जैसे – शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, एवं आध्यात्मिक विकास से है। जैसा कहा गया है कि व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं में व्यक्तित्व के सामाजिक एवं नैतिक पहलू भी आते हैं और पाठ के इस भाग में योग के द्वारा व्यक्ति का सामाजिक तथा नैतिक उन्नयन किस प्रकार हो सकता है, को वर्णित किया जाएगा।

1. योग का अर्थ ही युग्मित करना या जोड़ना है। यह जोड़ना या युग्मित करना प्रत्येक पक्ष पर लागू होता है फिर वह चाहे शारीरिक पक्ष में कुछ नया जोड़ना हो या फिर मानसिक पक्ष में। यही हमारे व्यक्तित्व के सामाजिक पक्ष या नैतिक पक्ष पर भी लागू होता है। योग व्यक्ति को सामाजिक तथा नैतिक रूप से ऊँचा उठाता है। योग हममें सामाजिक गुणों जैसे प्रेम, बंधुत्व, दया, करुणा, सहिष्णुता, सहयोग, शान्ति, धैर्य, संयम इत्यादि जैसे गुणों का बीजारोपण करता है जो हमारे अंदर सामाजिकता तथा वांछित व्यवहारों का विकास करते हैं। समाज में रहकर सामाजिक गतिविधियों जैसे— जीवन स्तर तथा रहन-सहन में जो अन्तर आया है, उसने मानव की मानसिकता को ही पूर्ण रूप से परिवर्तित कर दिया है तथा मानसिक शान्ति भी समाप्त हो गयी है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का शत्रु बन गया है। लोगों की मानसिकता अत्यन्त संकीर्ण हो गयी है। योग साधना का संयम एवं विवेकपूर्ण मार्ग इस प्रकार की स्वार्थी प्रवृत्ति पर नियन्त्रण कर सामाजिकता के मार्ग को प्रशस्त कराता है।
2. समाज की ईकाई व्यक्ति होता है और व्यक्तियों द्वारा ही समाज का निर्माण होता है। यदि व्यक्ति सामाजिक तथा नैतिक होंगे तो समाज भी सशक्त तथा नैतिक होगा। योग के अंतर्गत यम तथा नियम जिनका वर्णन इस अध्याय में पहले किया गया है, के द्वारा यह प्रयत्न करते हैं कि व्यक्ति में आवश्यक सामाजिक तथा नैतिक गुणों का बीजारोपण किया जाए जिससे व्यक्ति एक आदर्श व्यक्ति बन सके और आदर्श समाज, राष्ट्र या विश्व के निर्माण में योगदान दे सके।

3. योग के द्वारा इंद्रिय तथा मन पर नियंत्रण किया जा सकता है। वास्तव में योग की परिभाषा में योग के इसी विशेष स्वरूप को ध्यान में रखते हुए परिभाषित करने का कार्य किया जाता है। **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।** योग व्यक्ति की इंद्रियों तथा मन पर नियंत्रण करते हुए चित्त की वृत्तियों पर नियंत्रण करते हुए उसे नित्य तथा अनित्य के संदर्भ में सही ज्ञान देने का प्रयास करता है। योग हमें यह स्पष्ट करता है कि हमारा कौन सा व्यवहार सामाजिक है और कौन सा असामाजिक, कौन से गुण नैतिक हैं तथा कौन से गुण अनैतिक तथा किन गुणों को धारण करना चाहिए तथा किन गुणों का परित्याग करना आवश्यक है। योग मनुष्य को सत्य-असत्य, करणीय-अकरणीय, आचार-अनाचार का विवेकज्ञान देते हुए एक मनुष्य को वास्तविक रूप से मनुष्य बनने में मदद करता है।
4. चिंतन तथा अभ्यास नैतिकता के बिना नहीं हो सकते और योग का आधार यही है। योग इंद्रियों तथा मन पर अंकुश लगाने को कहता है। पर यह अंकुश इच्छाओं को पूर्णतया समाप्त कर देने से नहीं है बल्कि इंद्रियों को अपने भीतर मोड़कर आत्म-उत्थान करने से है। योग मानता है कि मनुष्य जब इंद्रियों का दास बन जाता है तब वह अपने पथ से विचलित हो जाता है, सन्मार्ग से भटक जाता है। योग का प्रारंभ ही यम से होता है जो इंद्रिय निग्रह की बात करता है। योग में षट्संपत्ति की बात की गई है। षट् का अर्थ है छः तथा संपत्ति का आशय साधन से है। यह छः साधन शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा तथा समाधान है। शम का अर्थ इंद्रियों का निग्रह है। मनुष्य में पाँच ज्ञानेंद्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ और एक मन के सहित कुल ग्यारह इंद्रियाँ होती हैं। शम इन्हीं इंद्रियों के निग्रह से संबंधित है पर यह नियंत्रण इतना सरल नहीं है। परंतु यदि मन पर नियंत्रण हो जाए तो अन्य सभी इंद्रियों पर अपने आप नियंत्रण हो जाता है क्योंकि मन के साधते ही सभी ज्ञानेंद्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ अपने आप सध जाती हैं। दम का अर्थ दमन करने से है। हमारी ज्ञानेंद्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को विषय से अलग कर देना दम है। विषय ग्रहण करने वाली ज्ञानेंद्रियाँ तथा प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले कर्मेन्द्रियाँ पर संयम होना दम है। साधक द्वारा इंद्रियों को वश में कर लेना चाहिए।
5. योग मात्र भौतिक शरीर पर ही नहीं केंद्रित है बल्कि मन तथा प्राणों की शुद्धि तथा पवित्रता पर भी केंद्रण करती है। योग में यम, नियम, संयम, साधना तथा समाधि के माध्यम से व्यक्ति अपने विचारों तथा भाव का उन्नयन करते हुए सर्वोच्च पायदान पर जा सकता है।
6. योगी की दिनचर्या नियंत्रित तथा संयम से पूर्ण होती है। व्यक्ति के आचार-विचार सात्विक होते हैं, मन पर संयम होता है तथा सात्विक भोजन का सेवन करता है। इस कारण अनैतिक विचार व्यक्ति में पनप ही नहीं पाते हैं।
7. संयमित जीवन तथा सत्य का ज्ञान तामसिकता से व्यक्ति को दूर रखता है जिससे मूल्यों का विकास व्यक्ति में सहज ही हो जाता है। अनैतिकता, लोभ, क्रोध, काम, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या से प्रेरित होता है। स्वार्थ के वशीभूत होकर व्यक्ति भ्रष्टाचार, चोरी, डकैती आदि चीजों को करता है। काम से पीड़ित व्यक्ति व्यभिचारी बन जाता है। क्रोध या भय में व्यक्ति का स्वयं पर संयम नहीं रह जाता है और वह हत्या जैसे अपराध कर डालता है। योग साधना के द्वारा अस्वीकार्य तथा अनैतिक व्यवहारों का मर्दन कर शांतिचित्त रहने तथा दैवीय गुण को धारण करने में सहायता करती है। योगी इस प्रकार स्वयं में अहिंसा, सत्य, प्रेम, दया, शांति, ईमानदारी जैसे सद्गुणों का विकास कर पाता है।
8. मनुस्मृति में जीवन के चार उद्देश्यों को माना गया है। ये हैं धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। योग इन सभी उद्देश्यों की प्राप्ति में अपना सहयोग देता है। योग व्यक्ति को मनुष्य जीवन के सभी धर्मों का पालन करने की शिक्षा देता है तथा उसे इस योग्य बनाता है कि वह धर्म का पालन कर सके। स्वस्थ शरीर स्वस्थ मन सबल और सजग मस्तिष्क, स्वार्थपरता से हटकर समाज को कुछ देने और उसका भला करने के नेक विचार, अर्थ, धर्म एवं कर्म तीनों उद्देश्यों को उचित रूप से प्राप्त करने में सहायता करते हैं। मोक्ष अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति हेतु सम्पूर्ण योग को आधारशिला है तथा सम्पूर्ण आधार हो इस विश्वास में है कि आत्मा का परमात्मा के साथ संयोग होना चाहिये। इस तरह योग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करता है।

## बोध प्रश्न

### टिप्पणी :

(क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

6. यम तथा नियम के किस प्रकार सामाजिक तथा नैतिक उन्नयन में योगदान करते हैं?

.....

7. मनुस्मृति के अनुसार जीवन के कौन से उद्देश्य हैं ?

.....

## 7.7 सारांश

योग अत्यंत प्राचीन समय से ही भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। योग मात्र हमारी अमूल्य विरासत ही नहीं बल्कि स्वास्थ्यलाभ हेतु एक अनमोल उपहार भी है जो मनुष्य को जीवन जीने की कला भी सिखाता है यह मात्र व्यायाम करने का ही का एक तरीका मात्र ही नहीं बल्कि वह कला भी है जो मनुष्य के जीवन को आनंदमय भी बनाता है। योग के मात्र एक अंग को देखते हुए सम्पूर्ण योग की व्याख्या कर दी जाती है या इसे ही सम्पूर्ण योग मान लेते हैं। योग को मात्र साँस लेने का तरीका या शरीर को मात्र विशेष रूप से मोड़ने या बैठने तक ही सीमित कर देते हैं। जबकि योग का अर्थ है जुड़ना अथवा जोड़ना। वस्तुतः योग वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने शरीर को अपनी आत्मा से जोड़ पाता है और शरीर तथा आत्मा के एक-दूसरे से जुड़ जाने के पश्चात् यह दो अलग नहीं रह जाते हैं। निःसंदेह योग वह माध्यम है जो शरीर तथा आत्मा का संगम कराता है। योग की भूमिका आध्यात्मिक और शारीरिक और मानसिक विकास से कहीं अधिक है। योगांगों का पालन न सिर्फ हमें स्वास्थ्य लाभ देता है बल्कि सामाजिक तथा नैतिक उन्नयन में भी योगदान करता है।

## 7.8 अभ्यास के प्रश्न

1. सामाजिक और नैतिक उन्नयन से आप क्या समझते हैं? योगांगों का वर्णन करते हुए सामाजिक तथा नैतिक उन्नयन में योग की भूमिका का वर्णन करें।
2. यम के पाँच प्रकार कौन-कौन से हैं? यम के माध्यम से किस प्रकार व्यक्ति का सामाजिक तथा नैतिक उन्नयन किया जा सकता है?
3. नियम किस प्रकार से व्यक्ति का सामाजिक उन्नयन कर सकता है? स्पष्ट करें।
4. योग सामाजिक तथा नैतिक उन्नयन किस प्रकार कर सकता है? वर्णन करें।

## 7.9 चर्चा के बिंदु

1. अष्टांग योग किस प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व के भावात्मक पहलू के विकास में योगदान करता है ?
2. योग के बहुआयामी लाभों की चर्चा करें।

## 7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. समाजके सदस्यों में मानकों, सामाजिक गुणों, समाज स्वीकृत आचरणों तथा व्यवहारों का विकास सामाजिक उन्नयन कहलाता है।
2. नैतिक उन्नयन उन मूल्यों या आदतों का विकास है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को उत्कृष्टता देते हैं।

3. अहिंसा का पालन हमें किसी के प्रति हर प्रकार की हिंसा को करने से रोकता है चाहे वह स्वयं के प्रति हो या समाज के अन्य व्यक्तियों के प्रति हो। यदि व्यक्ति मन, वचन या कर्म से कोई हिंसा नहीं करेगा तो उनमें उन गुणों का विकास होगा जिसकी अपेक्षा समाज के एक अच्छे सदस्य से होती है साथ ही समाज का प्रत्येक सदस्य ऐसा हुआ तो सम्पूर्ण समाज ही एक सभ्य तथा सुसंस्कृत समाज में परिणत हो जाएगा।
4. तप चित्त का निग्रह, कुप्रवृत्तियों का दमन, तथा विषयों से पराङ्मुख कर व्यक्ति का नैतिक उन्नयन करता है।
5. धारणा व्यक्ति का ध्यान विषय-वासनाओं से हटा किसी एक वस्तु पर केंद्रित करते हुए उसे दुर्गुणों से बचाती है।
6. यम तथा नियम यह प्रयत्न करते हैं कि व्यक्ति में आवश्यक सामाजिक तथा नैतिक गुणों का बीजारोपण किया जाए जिससे व्यक्ति एक आदर्श व्यक्ति बन सके और आदर्श समाज, राष्ट्र या विश्व के निर्माण में योगदान दे सके।
7. मनुस्मृति के अनुसार जीवन के चार उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष हैं।

---

### 7.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

1. नेमिचन्द्र (Ed) (1975). कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्यरचित योगशास्त्र. दिल्ली : श्री निर्ग्रंथ साहित्य प्रकाशसंघ।
2. शर्मा, आर. के. एवं दुबे एस. के. (2017). योग शिक्षा. आगरा : राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड।
3. शर्मा, आर.के. एवं दुबे, एस. (2016). योग शिक्षा. आगरा : राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड।
4. शर्मा, सी. (2019). भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।
5. सिन्हा, जे. (2010). भारतीय दर्शन. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।

---

### 7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

1. आयंगर, बी.के.एस. (2019). पतंजलि योग सूत्र. नई दिल्ली : प्रभात पेपरबैक्स।
2. गोयन्दका, एच. के. डी. (2019). योग दर्शन. गोरखपुर : गीताप्रेस।
3. तीर्थ, वेदान्त (2022 ). अथर्ववेद (भाग 2). दिल्ली : मनोज पब्लिकेशन्स।

---

## इकाई — 08 : आध्यात्मिक उन्नति, आत्मानुभूति और प्रत्यक्षानुभूति हेतु योग

---

### इकाई की संरचना

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 इकाई के उद्देश्य
- 8.3 आध्यात्मिक उन्नति तथा इसमें योग की भूमिका
- 8.4 आत्मानुभूति तथा इसमें योग की भूमिका
- 8.5 प्रत्यक्षानुभूति तथा इसमें योग की भूमिका
- 8.6 सारांश
- 8.7 अभ्यास के प्रश्न
- 8.8 चर्चा के बिन्दु
- 8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 8.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 8.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

---

### 8.1 प्रस्तावना

---

योग का अर्थ तथा क्षेत्र इतना व्यापक है कि व्यक्ति के जीवन का कोई भी पक्ष या व्यक्तित्व कोई भी पहलू योग से अछूता नहीं है। योग का प्रभाव व्यक्ति के शरीर से शुरू होकर उसकी आत्मा तक पहुंचता है। योग मात्र व्यायाम नहीं है। योग मात्र आसनों के अभ्यास या फिर श्वास लेने की प्रक्रिया तक सीमित नहीं है बल्कि यह व्यक्ति को सर्वोच्च ज्ञान तक पहुंचाने का माध्यम है। यह व्यक्ति को आनंदमय स्थिति तक ले जाने का माध्यम है। योग वह माध्यम है जो व्यक्ति को आध्यात्मिक रूप से उन्नत कराने के साथ उसको उसकी आत्मा से, प्रत्यक्ष से साक्षात्कार कराता है। प्रस्तुत पाठ में हम योग के इसी रूप का अध्ययन करेंगे।

---

### 8.2 इकाई के उद्देश्य

---

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि—

- 1. अध्यात्म शब्द के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- 2. आध्यात्मिक उन्नति की व्याख्या कर सकेंगे।
- 3. आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में आने वाली बाधाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
- 4. आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने वाले मार्गों की व्याख्या कर सकेंगे।
- 5. आत्मानुभूति को स्पष्ट कर सकेंगे।
- 6. आत्मानुभूति में योग की भूमिका की विवेचना कर सकेंगे।
- 7. प्रत्यक्षानुभूति का आशय स्पष्ट कर सकेंगे।
- 8. प्रत्यक्षानुभूति में योग की भूमिका की चर्चा कर सकेंगे।

योग की विभिन्न शाखायें या विभिन्न मार्ग हैं जैसे कर्मयोग, राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, हठयोग, लययोग, मंत्रयोग, स्वास्थ्ययोग इत्यादि जिनमें से प्रथम चार योग की मुख्य शाखायें या मार्ग माने जाते हैं। पहली शाखा कर्मयोग है। कर्मयोग का उद्देश्य व्यक्ति के आत्मज्ञान को जागृत करना है। इसके बाद हम न केवल अपने वर्तमान जीवन के उद्देश्यों को बल्कि जीवन के बाद की अपनी गति का पूर्वाभास प्राप्त कर सकते हैं। इस योग में कर्म के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति की जाती है। दूसरा राजयोग है जिसका उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है। हालाँकि सभी योगों का

लक्ष्य समाधि की स्थिति की प्राप्ति है परन्तु राजयोग में साधक समाधि अवस्था से ही साधना का प्रारंभ करता है और मोक्ष की प्राप्ति करता है। तीसरी मुख्य शाखा है ज्ञानयोग। ज्ञानयोग व्यक्ति के विवेक को बढ़ाकर उसके मन को शांत करने में मदद कर सकता है। इस वजह से ज्ञान योग को श्रृंखला का मार्ग भी कहा जाता है। यह आत्मानुभूति का मार्ग भी है। चौथी शाखा भक्तियोग है जिसमें साधक ईश्वर की प्राप्ति का प्रयास करता है। इस प्रकार भक्तियोग प्रत्यक्षानुभूति का मार्ग है।

### 8.3 आध्यात्मिक उन्नति तथा इसमें योग की भूमिका

आध्यात्मिक उन्नति के विषय में जानने से पहले यह जानना आवश्यक है कि अध्यात्म क्या है? अध्यात्म शब्द दैनिक बोलचाल में प्रयुक्त होने वाला एक शब्द है जिससे हम सभी भलीभांति परिचित हैं। यदि इस शब्द का अर्थ हमसे पूछा जाए तो हम अध्यात्म का अर्थ 'ईश्वर' या 'ईश्वर संबंधी' से लेते हैं। परन्तु इसका अर्थ इससे अलग कुछ अधिक गुह्य तथा रहस्यमय है। अध्यात्म शब्द को सही रूप में वही समझ पाते हैं जो उच्चतर प्रज्ञा और कठोर साधना में संलग्न होते हैं। यदि अध्यात्म शब्द की व्युत्पत्ति को देखें तो आत्मानि-इति-विग्रह के द्वारा अव्ययीभाव समास करके 'अध्यातमम्' शब्द की निष्पत्ति होती है, जिसका अर्थ 'आत्मा में स्थित' होता है। 'आत्मन्' शब्द की सप्तमी विभक्ति में एकवचन में 'आत्मनि' शब्द बनता है और अव्यय का 'इति'— 'अधि' शब्द के रूप में 'सामासिक सूत्र' में परिवर्तित होता है। इसका सही अर्थ है— 'आत्मा में स्थित'। 'अध्यात्म' शब्द के मूल में आत्मन् शब्द नित्य पुल्लिङ्ग है, जिसका रूप 'आत्मा' है।

अध्यात्म शब्द का अन्य अर्थ 'उच्च स्व' या 'उच्च आत्मा' से है। अध्यात्म का आशय ईश्वर है जो इस चराचर जगत् के सभी प्राणियों के आत्मा के रूप में प्रकट होता है। अध्यात्म शब्द दो शब्दों की संधि है अधि तथा आत्मान। अधि उपसर्ग का आशय ऊपर और आत्मान का आशय आत्मा से है। 'उच्च स्व' को अपने अस्तित्व (मोक्ष) के सत्य के रूप में समझना अध्यात्म है।

अध्यात्म शब्द का एक अर्थ 'शून्य' से है। अमरकोष के तृतीय कांड के नानार्थवर्ग के 144वें श्लोक में लिखा है 'सूक्ष्ममध्यात्ममपि'। सूक्ष्म शब्द पाणिनी रचित व्याकरण के अनुसार 'सुच पैशून्ये' धातु से उणादिगण के सूचैः स्मन् (सूत्र 4/177) से बनता है। मेदिनीकोष में इसका अर्थ 'सूक्ष्मं स्यात् कैतवेऽध्यामे' दिया गया है। इस प्रकार अध्यात्म सूक्ष्म का ही एक पर्यायवाची शब्द है।

अध्यात्म अनुभूति के विषय में स्पष्ट करते हुए श्रीमद्भागवतगीता के दूसरे अध्याय के पचपनवें श्लोक में श्रीकृष्ण कहते हैं कि —

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ 55 ॥

अर्थात् जिस समय पुरुष मन में स्थित सब कामनाओं को त्याग देता है और आत्मा से ही आत्मा में सन्तुष्ट रहता है ? उस समय वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

श्रीमद्भागवद्गीता के आठवें अध्याय के प्रथम श्लोक में अर्जुन श्रीकृष्ण से पूछते हैं कि —

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।

अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ 1 ॥

हे पुरुषोत्तम ! वह ब्रह्म क्या है अध्यात्म क्या है ? तथा कर्म क्या है ? और अधिभूत नाम से क्या कहा गया है ? तथा अधिदैव नाम से क्या कहा जाता है ?

उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं कि —

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।

भूतभावोदभवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ 3 ॥

परम अक्षर (अविनाशी) तत्त्व ब्रह्म हैय स्वभाव (अपना स्वरूप) अध्यात्म कहा जाता है; भूतों के भावों को उत्पन्न करने वाला विसर्ग (यज्ञ, प्रेरक बल) कर्म नाम से जाना जाता है।

यहाँ प्रश्न है कि स्वभाव क्या है ? स्वभाव का अन्य अर्थ सहज प्रवृत्ति या सहज अवस्था से है। सहज से आशय है जिस चीज कि करने में विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं पड़ती। सहज भाव में जो भी कार्य होता है वह व्यक्ति के द्वारा स्वाभाविक रूप से किया जाता है। इसके लिए उसको विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता है। गीता के अध्याय अठारह में श्रीकृष्ण स्वभावानुसार कर्म के संदर्भ में कहते हैं कि—

**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।**

अर्थात् अपने-अपने कर्म में तत्परतापूर्वक लगा हुआ मनुष्य सम्यक् सिद्धि (परमात्मा) को प्राप्त कर लेता है। यानि ईश्वर या ब्रह्म की प्राप्ति स्वभाव के अनुसार कर्म में संलग्नता से होती है। इन कर्मों को करते हुए यदि कुछ दोष होते हैं या कुछ गलतियाँ होती हैं तो उन गलतियों को स्वीकार कर स्वयं को उसी कर्म में रत रखना चाहिए क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में कोई न कोई दोष होता ही है।

अध्यात्म को कुछ लोग धर्म का पर्यायवाची के रूप में लेते हैं। धर्म का आशय है जिसे धारण किया जा सके। **“धार्यते इति धर्मः”** इसका मतलब है जो धारण करते हैं वहीं धर्म कहलाता है। लोक और परलोक के सुखों की सिद्धि के लिए सार्वजनिक पवित्र गुणों व कर्मों को धारण करना ही धर्म माना गया है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि मनुष्य के जीवन को ऊँचा व पवित्र बनाने वाली ज्ञानानुकूल जो शुद्ध सार्वजनिक मर्यादा पद्धति हैं, उसे धर्म कहते हैं।

धर्म तथा अध्यात्म में क्या संबंध है यह जानने का प्रयास हम करेंगे। जैसा ऊपर कहा गया है कि धर्म स्वभाव है। धर्म कर्तव्य कर्म है और जिसके करने की अपेक्षा हमसे की जाती है। अध्यात्म का तात्पर्य आत्मा से संबंधित या जुड़ा हुआ है। यह आत्मा का विषय है, आत्मा के स्वभाव से संबंधित है। इसप्रकार धर्म तथा अध्यात्म एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं, एक दूसरे के सहायक हैं तथा एक के अभाव में दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती है। अध्यात्म के शिखर पर पहुँचना व्यक्ति का प्रमुख लक्ष्य होता है क्योंकि यह आत्म तक पहुँचने का प्रयास होता है। हम आध्यात्मिकता के माध्यम से अपने आप से जुड़ पाते हैं।

अब प्रश्न है कि योग की आध्यात्मिक उन्नति में क्या भूमिका है? योग वह माध्यम है जो चित्त की वृत्तियों का निरोध करती है।

**तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ 3 ॥**

अर्थात् जब चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है, उस समय द्रष्टा (आत्मा)— की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है अर्थात् वह कैवल्य—अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

इसके पश्चात पतंजलि कहते हैं कि —

**वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ 4 ॥**

जबतक योग—साधनों के द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध नहीं हो जाता, तब तक द्रष्टा अपने चित्त की वृत्ति के ही अनुरूप अपना स्वरूप समझता राहत है, उसे अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। अतः चित्तवृत्तिनिरोधरूप योग अवश्य कर्तव्य है।

योग के माध्यम से द्रष्टा यानि कि जीवात्मा है अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाता है। मनुष्य जीवन का वास्तविक लक्ष्य मुक्ति है क्योंकि यह जीवन और बार—बार जन्म लेना दुःख है। और आत्मा किसी भी प्रकार से इस दुःख से मुक्त होना चाहती है जो मार्ग उसे योग के द्वारा प्राप्त होता है।

जैसा कि बताया जा चुका है कि अध्यात्म का आशय अपने स्वभाव को जानने, अपनी आत्मा को जानने से है। स्वयं को जानने में या अपनी आत्मा को जानने में कई तत्व बाधक होते हैं। योग आध्यात्मिक उन्नति का साधन है। कुछ ऐसी बाधाएँ हैं जो योग पालन के मार्ग में आती हैं। यदि योग पालन के मार्ग में बाधाएँ आती हैं तो स्पष्ट है कि वह आध्यात्मिक उन्नति में भी बाधक होंगी। ऐसे में दोनों में आने वाली बाधाओं और इन बाधक तत्वों का निवारण कैसे हो इस बात की चर्चा यहाँ की जाएगी।

चित्त विक्षेपों को योगान्तराय भी कहते हैं। ये चित्त को विक्षिप्त करके उसकी एकाग्रता को नष्ट कर देते हैं। उन्हें योगान्तराय अथवा योग के विघ्न कहा जाता है।

## योगस्य अन्तः मध्ये आयान्ति ते अन्तरायाः ।

ये योग के मध्य में आते हैं इसलिये इन्हें योगान्तराय कहा जाता है। विघ्नों से व्यथित होकर योग साधक साधना को बीच में ही छोड़कर चल देते हैं।

योगसूत्र के समाधिपाद के तीसवें श्लोक में लिखा है—

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥

30 ॥

चित्त विक्षेप या अंतराय चित्त विक्षेपों या अंतरायों की संख्या नौ हैं। ये व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व। उक्त नौ अन्तराय ही चित्त को विक्षिप्त करते हैं। ये योगविरोधी हैं इन्हें योग के मल भी कहा जाता है। चित्तवृत्तियों के साथ इनका अन्वयव्यतिरेक है। अर्थात् इन विक्षेपों के होने पर प्रमाणादि वृत्तियाँ होती हैं। जब ये नहीं होते तो वृत्तियों भी नहीं होती। वृत्तियों के अभाव में चित्त स्थिर हो जाता है। इस प्रकार चित्तविक्षेप के प्रति ये उक्त नौ अन्तराय ही कारण हैं। इन विघ्नों के साथ इनके सहयोगी कुछ उपविघ्न भी हैं।

दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥ 31 ॥

दुःख, इच्छापूर्ति न होने से उत्पन्न क्षोभ, अंगों में कंपन होना, प्राणवायु का इच्छा के विरुद्ध अन्दर व बाहर निकलना पूर्व वर्णित नौ विघ्नों के सहयोगी अर्थात् उप विघ्न हैं जो इन विकर्षणों के साथ-साथ चलते हैं। इन्हें विक्षेप सहभुवः कहते हैं। उपविघ्नों की संख्या पाँच बताई गई है। ये दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वास तथा प्रश्वास।

दुःख जिन्हें वेदों में ताप के नाम से उद्बोधित किया गया है। विश्व का प्रत्येक प्राणी तीन प्रकार के तापों से प्रताड़ित होता है आध्यात्मिक (दैहिक), आधिभौतिक (भौतिक) तथा आधिदैविक (दैविक) दुःख। आध्यात्मिक या दैहिक दुःख दो प्रकार का होता है शारीरिक तथा मानसिक। और इन दोनों में मानसिक दुःख शारीरिक की तुलना में अधिक पीड़ादायक होता है। शारीरिक ताप के अंतर्गत व्यक्ति की शारीरिक व्याधियाँ आती हैं वहीं मानसिक ताप काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, घृणा, लिप्सा, ईर्ष्या, द्वेष, भय आदि को सम्मिलित करता है। प्रथम तीन ताप प्रमुख ताप हैं जिनमें सर्वप्रमुख काम है क्योंकि यही संसार संबंधी इच्छाएं दुःख का सबसे बड़ा कारण हैं। आधिभौतिक दुःख को अन्य जीवों के कारण मिलता है जैसे सर्पदंश या किसी जीव द्वारा काटना या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दिया गया कष्ट तथा आधिदैविक दुःख ईश्वरीय या प्रकृति प्रदत्त होता है जैसे आग, बाढ़, सुख, ठंड लगना इत्यादि। ये सभी दुःख हमारे ही द्वारा किए गए कर्मों के फलस्वरूप हमें मिलते हैं। इन सभी के निवारण के लिए पतंजलि एकतत्त्व अभ्यास का मार्ग सुझाते हैं।

तत् प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाम्यासः ॥ 32 ॥

इन चित्तविक्षेपों एवं सहभुवों का निवारण करने के लिए एक तत्त्व अभ्यास की आवश्यकता है। विघ्न तथा विक्षेप सहभुवों को दूर करने के लिए पतंजलि 'ईश्वर प्रणिधान' का मार्ग लेने को कहते हैं।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के विघ्नों का नाश ईश्वर-प्रणिधान से तो होता ही है, उसके सिवाय दूसरा उपाय बतलाया गया है। भाव यह है कि किसी एक वस्तु में चित्त को स्थित करने का बार-बार प्रयत्न करने से भी एकाग्रता उत्पन्न होकर विघ्नों का नाश हो जाता है अतः यह साधन भी किया जा सकता है।

चित्त के अंतराल में राग-द्वेषादि मल रहने के कारण मलिन चित्त स्थिर नहीं होता, अतः चित्त को निर्मल बनाने का सुगम उपाय बतलाते हैं—

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ 23 ॥

अर्थात् ईश्वर की भक्ति या शरणागति का नाम 'ईश्वर प्रणिधान' है। इससे भी निर्बीज समाधि शीघ्र सिद्ध हो सकती है। क्योंकि ईश्वर सर्वसमर्थ है। वे अपने शरणापन्न भक्त पर प्रसन्न होकर उसके भावानुसार सब कुछ प्रदान कर सकते हैं।

यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि ईश्वर इसे कहते हैं यानि किसके आगे हम अपने कर्मों को समर्पित करें।

पतंजलि इस संबंध में स्पष्ट करते हैं कि—

**क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामष्टः पुरुषविशेष इश्वरः ।। 24 ।।**

क्लेश, कर्म, विपाक और आशय— इन चारों से जो संबंधित नहीं है तथा जो समस्त पुरुषों से उत्तम है वह ईश्वर है।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश— यह पाँच क्लेश हैं इनका विस्तृत वर्णन दूसरे पाद के तीसरे सूत्र से नवें तक है। कर्म चार प्रकार के हैं— पुण्य, पाप, पुण्य-पाप मिश्रित तथा पुण्य-पाप से रहित। कर्म के फल का नाम 'विपाक' है और कर्म संस्कारों के समुदाय का नाम 'आशय' है। समस्त जीवों का इन चारों से अनादि संबंध है। यद्यपि मुक्त जीवों का पीछे संबंध नहीं रहता तो भी पहले संबंध था हीय किंतु ईश्वर का तो कभी भी इनसे न संबंध था ना, ना है और ना होने वाला है। इस कारण उन मुक्त पुरुषों से भी ईश्वर विशेष है, यह बात प्रकट करने के लिए ही सूत्रकार ने 'पुरुषविशेषः' पद का प्रयोग किया है।

इसके अतिरिक्त ईश्वर की अन्य विशेषताओं का वर्णन करते हुए पतंजलि कहते हैं कि—

**तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।। 25 ।।**

उस सर्वज्ञाता का बीज (कारण) अर्थात् ज्ञान निरतिशय है।

जिससे बढ़कर कोई दूसरी वस्तु हो, वह सातिसहाय है और जिससे बड़ा कोई न हो, वह निरतिशय है। ईश्वर ज्ञान की अवधि है, उसका ज्ञान सबसे बढ़कर है और उसके ज्ञान से बढ़कर किसी का भी ज्ञान नहीं है, इसलिए उसे निरतिशय कहा गया है। जिस प्रकार ईश्वर में ज्ञान की पराकाष्ठा है, उसी प्रकार धर्म, वैराग्य, यश और ऐश्वर्य आदि की पराकाष्ठा का आधार भी उसी को समझना चाहिए।

इसके साथ ही और भी उसकी विशेषता का प्रतिपादन करते हैं,

**पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।। 26 ।।**

(वह ईश्वर सब के) पूर्वजों का भी गुरु है क्योंकि उसका काल से अवच्छेद नहीं है।

सर्ग के आदि में उत्पन्न होने के कारण सबका गुरु ब्रह्मा को माना जाता है, परंतु उसका काल से अवच्छेद है। ईश्वर स्वयं अनादि और अन्य शब्द का आदि है वह काल की सीमा से सर्वथा अतीत है, वहाँ तक काल की पहुँच नहीं है, क्योंकि वह काल का भी महाकाल है। इसलिए वह संपूर्ण पूर्वजों का भी गुरु यानि सबसे बड़ा, सबसे पुराना और सब को शिक्षा देने वाला है।

ईश्वर की शरणगति का प्रकार बतलाने के लिए उसके नाम का वर्णन करते हैं।

**तस्य वाचकः प्रणवः ।। 27 ।।**

उस ईश्वर का वाचक (नाम) प्रणव (ऊँकार) है।

नाम और नामी का संबंध अनादि और बड़ा ही घनिष्ठ है। इसी कारण शास्त्रों में नाम-जप की बड़ी महिमा है। गीता में भी जपयज्ञ को सब यज्ञों में श्रेष्ठ बताया गया है। ऊँ उस परमेश्वर का वेदोक्त नाम होने से मुख्य है। इस कारण यहाँ उसी का वर्णन किया गया है। इसी वर्णन से श्रीराम, श्रीकृष्ण आज जितने भी ईश्वर के नाम हैं, उनके जप का माहात्म्य समझ लेना चाहिए।

इसके पश्चात वह यह बताते हैं कि इसका प्रयोग किस प्रकार से किया जा सकता है।

**तज्जपस्तदर्थभावनम् ।। 28 ।।**

उस ऊँकार का जप (तथा) उसके अर्थस्वरूप का चिंतन करना चाहिए।

साधक को ईश्वर के नाम का जप और उसके स्वरूप का स्मरण-चिंतन करना चाहिए। इसी को पूर्वोक्त ईश्वरप्रणिधान अर्थात् ईश्वर की भक्ति या शरणागति कहते हैं। ईश्वर की भक्ति के और भी बहुत से प्रकार हैं परंतु जप और ध्यान साधनों में मुख्य होने के कारण यहाँ सूत्रकार ने केवल नाम और नामी के स्मरणरूप में एक ही प्रकार का वर्णन किया है। गीता में भी इसी तरह का वर्णन आया है इसे उपलक्षण मानकर भगवद्भक्ति के सभी

साधनों को ईश्वर की प्रसन्नता के नाते निर्बीजसमाधि की सिद्धि में हेतु समझना चाहिए अर्थात् ईश्वर की भक्ति के सभी अंग—प्रत्यंग का ईश्वरप्रणिधान में अंतर्भाव समझना चाहिए।

**ततः त्यक्तेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।। 29 ।।**

उक्त साधन से, विघ्नों का अभाव और अंतरात्मा के स्वरूप का ज्ञान भी हो जाता है।

ईश्वर के भजन दृस्मरण से विघ्नों का नाश अपने आप हो जाता है और अंतरात्मा (द्रष्टा) के स्वरूप का ज्ञान होकर कैवल्य—अवस्था भी उपलब्ध हो जाती है अतः यह निर्बीज समाधि की प्राप्ति का बहुत ही सुगम उपाय है।

जब ऊँ का उच्चारण भक्ति भावना के साथ करेंगे तो सभी विघ्न कट जाएंगे और हमारी आत्मा का सही स्वरूप क्या है और इसका भेद व्यक्ति के समक्ष उपस्थित हो जाएगा। यही आध्यात्मिक उन्नति है जहां व्यक्ति अपने आत्मा के स्वरूप को समझ जाता है।

### बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

1. अध्यात्म शब्द से क्या आशय है ?

.....

2. चित्त विक्षेपों को अन्य किस नाम से जाना जाता है ?

.....

3. चित्त विक्षेप किस प्रकार योग में बाधा उत्पन्न करते हैं ?

.....

4. वेदों में दुःख या ताप के कौन—कौन से प्रकार बताए गए हैं ?

.....

5. योग का मल किसे कहा जाता है ?

.....

### 8.4 आत्मानुभूति तथा इसमें योग की भूमिका

आत्मानुभूति और आत्मानुभूति में योग की भूमिका को जानने से पहले इस शब्द के अर्थ को समझ लिया जाए। आत्मानुभूति शब्द का यदि संधिविच्छेद किया जाए तो हमें जो शब्द प्राप्त होंगे वह है आत्मअनुभूति। यदि संधि विच्छेद के माध्यम से दोनों शब्दों के शाब्दिक अर्थ को देखें तो यह आत्म अथवा स्व की अनुभूति किस प्रकार से की जा सकती है। इस क्रम में सबसे पहले जानने की आवश्यकता है कि आत्म तथा अनुभूति दोनों शब्दों के क्या आशय हैं।

आत्म शब्द का आशय है स्वयं अपने व्यक्तित्व या अपनी आत्मा के चेतन स्वरूप या मन से संबंध रखनेवाला। आत्मा का अन्य अर्थ चेतन तत्व या जीव या एक ऐसा अविनाशी अतीन्द्रिय तत्व से है जिससे शरीर प्राणयुक्त रहता

है। अनुभूति का अर्थ अहसास या अनुभव बोध होता है। यह बोध किसी भी माध्यम से हो सकता है। अनुभूति में हमारी इंद्रियों एवं मन का योगदान होता है। हम अपने इंद्रियों के माध्यम से देख, सुन, सूँघ, चख या स्पर्श कर किसी भी वस्तु या घटना का अनुभव करते हैं। यह मन में उत्पन्न भावनाओं से भी हो सकती है। जब मन में उत्पन्न भावनाओं से भी हो सकती हैं। जब हमारे मन में कोई विचार उत्पन्न होता है अथवा हम बाह्य जगत की किसी भी वस्तु के संपर्क में आते हैं तो हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ उनके विषय में हमें अवगत कराती हैं। यह अवगत होना या भावनाओं का उत्पन्न होना ही अनुभूति है।

एक सामान्य मनुष्य मात्र देहमय तथा प्राणमय अवस्था में जीता है। उसमें मात्र शरीर भाव की प्रधानता होती है परन्तु एक सच्चा योगी आनंदमय की अवस्था को प्राप्त करता है। वह आत्म साक्षात्कार करने में सक्षम होता है। योगी में आत्मा तथा आत्मभाव की प्रधानता होती है। सामान्यजनों द्वारा अभ्यास किए जाने वाले योगांगों में मात्र शरीर तत्व की प्रधानता होती है जबकि यह योग के प्रथम सोपानों में से एक है जिनके द्वारा उच्च सोपानों पर पहुँचने का प्रयत्न किया जाता है। मात्र शरीरहित में योग करना मनुष्य के लिए यथेष्ट नहीं है। योग का अर्थ जुड़ाव है जो शरीर और मन का आत्मा से होना है। ऐसे में शरीर तत्व को प्रधानता देना 'योग' के सिद्धांतों के विरुद्ध है। परन्तु यहाँ यह नहीं कहा जा रहा है कि शरीर तत्व के अस्तित्व को विलुप्त ही कर दिया जाए बल्कि शरीर को माध्यम बनाते हुए योग के परम लक्ष्यों की प्राप्ति की जाए। योग में 'आत्मा' तत्व की प्रधानता है क्योंकि योग का अंतिम लक्ष्य समाधि की स्थिति की प्राप्ति है।

आत्मानुभूति व्यक्ति की आध्यात्मिक अवस्था है जो सर्वोच्च स्तर का द्योतक है। आत्मानुभूति अपने 'स्व' को विकसित करते हुए विश्व को उस 'स्व' के साथ एकाकार कर देना है। आत्मानुभूति को रॉस परिभाषित करते हुए कहते हैं— "आत्मानुभूति में आत्मा का अर्थ मौजूदा असंतोषजनक एवं अनुशासनहीन आत्मा नहीं है बल्कि भविष्य की पूर्णतः परिवर्तित आत्मा है"।

आत्मानुभूति व्यक्ति को अपने 'आत्म' या 'स्व' की अनुभूति है। आत्मानुभूति व्यक्ति को सत्य का दर्शन कराती है। यह व्यक्ति को जीवात्मा और परमात्मा के विषय में अवगत कराता है। रामलिंग ने कहा है कि ब्रह्म—ज्ञान आत्मज्ञान से ही संभव है, या फिर आत्मानुभूति से और आत्मा इसे स्वयं समझती है। अहंकार आत्मानुभूति पर आवरण डाल देती है।

आत्मानुभूति का संबंध मोक्ष से है। इसे मोक्ष सिद्धि का मार्ग माना जाता है। सद्पुरुषों को इसे प्राप्त करने के लिए प्रत्येक प्रयास करना चाहिए। आत्मा नित्य है और शरीर अनित्य है परन्तु जो स्थिति हमारे सामने विद्या या माया के कारण बनती है वह इसके ठीक विपरीत है। हम शरीर को नित्य और परम मान लेते हैं और आत्मा के स्वरूप को विचार में लाते ही नहीं है। वासनाओं का सदैव याद करना शम कहलाता है। शम का अर्थ है इंद्रियों का निग्रह कर लेना। मनुष्य की ग्यारह इंद्रियाँ मानी जाती है जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और एक मन सम्मिलित होता है। शम का आशय इंद्रियों पर नियंत्रण यानि निग्रह से है। परन्तु मन ऐसी इंद्रिय है जो अन्य ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों पर नियंत्रण रखती है। मन बहुत ही चंचल है और इसकी गति वायु से भी तेज है इस पर नियंत्रण करना मुश्किल तो है परन्तु असंभव नहीं।

शंकर तत्त्वबोध में कहते हैं कि —

शमः कः ?

मनोनिग्रहः।

अर्थात् शम क्या है और उत्तर में कहते हैं कि शम को मन को निग्रह का साधन कहते हैं।

**शमो नाम अन्तरिन्द्रिनिग्रहः अन्तरिन्द्रिय नाम मनः तस्य निग्रहः।।**

मन को अन्तरिन्द्रिय कहते हैं। शम का तात्पर्य है इस अन्तरिन्द्रिय मन का निग्रह कर लेना।

आचार्य शंकर ने शम को परिभाषित करते हुए कहा है कि—

**विरज्य विषयव्रताद् दोषदृष्ट्या मुहुर्मुहुः**

**स्वलक्ष्ये नियतावस्था मनसरु शम उच्यते।। 22।।**

अर्थात् दोष-दृष्टि करने से विषय-समूह से विरक्त होकर चित्त का अपने लक्ष्य में स्थिर हो जाना 'शम' कहलाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में छठे अध्याय में श्रीकृष्ण महाबली अर्जुन से कहते हैं कि –

**असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं।**

**अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ 35 ॥**

अर्थात् हे महाबाहो ! यह मन बड़ा चञ्चल है और इसका निग्रह करना भी बड़ा कठिन है— यह तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। परन्तु हे कुन्तीनन्दन ! अभ्यास और वैराग्यके द्वारा इसका निग्रह किया जाता है। योग सूत्र में भी चित्त की वृत्तियों का निरोध के लिए अभ्यास व वैराग्य दो साधनाएं बताई गई हैं।

दम का आशय दमन करने से है। मनुष्य का अपनी दसों इंद्रियों को विषयों से अलग कर देना ही दम है। इंद्रियों का पूर्ण रूप से निगृहीत और विषयों के रसास्वादन से परे हो जाना दम कहलाता है। आचार्य शंकर दम के विषय में विवेक चूड़ामणि में लिखते हैं कि,

**विषेभ्यः परावर्त्य स्थापनं स्वस्वलोके ॥ 23 ॥**

**उभयेषामिन्द्रियाणां स दमः परिकीर्तितः।**

**बाह्यानालम्बनं वृत्तेरेषोपरतिरुत्तमा ॥ 24 ॥**

अर्थात् कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दोनों को उनके विषयों से खींचकर अपने-अपने गोलकों में स्थित करना 'दम' कहलाता है। वृत्ति का बाह्य विषयों का आश्रय न लेना यही 'उत्तम' उपरति है। जिसका आशय है कि कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों दोनों को उनके विषयों से खींचकर अपने-अपने गोलकों में स्थित करना दम है।

दमः कः ?

**चक्षुरादिबाह्येन्द्रियनिग्रहः ॥**

अर्थात् बाह्य इंद्रियों का निग्रह करना दम कहा जाता है। विषयभोगों का माध्यम हमारी इंद्रियाँ ही हैं। इन इंद्रियों का संयम दम है।

उपरति का आशय विरक्ति से है। संसार की विषयवस्तुओं के प्रति उदासीनता का भाव उपरति है। इस नश्वर संसार की वस्तुओं से उदासीन होकर या उनसे विरक्त होकर धर्म में तत्पर होना उपरति है।

श्रीशंकर कहते हैं कि, उपरमः कः ?

**स्वधर्मानुष्ठानमेव ॥**

अर्थात् उपरम क्या है? और इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि अपने धर्म का अनुष्ठान करना ही उपरम है। जगत की विषयवस्तुओं से चित्त का उपरत हो जाना उपरति है।

अगला साधन तितिक्षा है।

**तितिक्षा का ?**

**शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुत्वम् ॥**

तितिक्षा का शाब्दिक अर्थ सहनशीलता है। तितिक्षा अपने ध्येय या लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किसी भी प्रकार के द्वन्द्वों को सहन कर लेना तथा साधना में तत्पर रहने का नाम तितिक्षा है। लाभ-हानि, जय-पराजय, सुख-दुख द्वन्द्वों को सामान्य रूप से सहन कर लेना तितिक्षा है। योगसूत्र में पतंजलि कहते हैं –

**कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥ 43 ॥**

तप करने से जब अशुद्धि का क्षय हो जाता है तब शरीर तथा तथा इंद्रियों की सिद्धि हो जाती है और यह सब तितिक्षा से ही संभव है। श्रद्धा का आशय आस्था से है। जिस व्यक्ति में श्रद्धा नहीं है वह ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति नहीं कर सकता है। आप्त पुरुषों तथा आप्त पुस्तकों पर दृढ़निष्ठा तथा विश्वास का होना श्रद्धा काही जाती है।

बिना श्रद्धा के ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती।

श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं कि श्रद्धावान लभते ज्ञानम्। अर्थात् जिन व्यक्तियों में श्रद्धा होती है उन्हीं को ज्ञान की प्राप्ति होती है।

### गुरुवेदांतवाक्यदिषु विश्वासः श्रद्धा।।

अर्थात् गुरु, वेद, वेदान्त आदि शास्त्रों के वाक्यों में दृढ़ विश्वास और आस्था होना श्रद्धा है। श्रद्धा में समर्पण का भाव होता है। श्रद्धा में संशय का कोई स्थान नहीं होता है। कहा गया है कि संशयात्मा विनश्यति अर्थात् संशय आत्मा का विनाश होता है। योगी संशय से परे रहते हैं क्योंकि जहाँ संशय होता है वहाँ श्रद्धा नहीं हो सकती है और जहाँ श्रद्धा है वहाँ संशय का कोई स्थान नहीं होता है।

षट्संपत्ति का अंतिम साधन समाधान है। व्यक्ति के मन, अहंकार तथा बुद्धि का परमात्मा में समाहित हो जाना ही समाधान है। चित्त स्वभाव से अत्यंत ही चंचल है और इस चंचल चित्त के द्वारा एकाग्रता की प्राप्ति समाधान है। चित्त में अनेक प्रकार के विकारों, विक्षेपों तथा संस्कारों का आवरण होता है और यही चित्त की चंचलता का कारक है। परंतु जब यह विक्षेप तथा विकार क्षीण हो जाते हैं तब चित्त की स्थिति स्वस्थ, एकाग्र तथा शांत हो जाती है।

शंकर कहते हैं कि —

सर्वदा स्थापनं बुद्धेः शुद्धे ब्रह्मणि सर्वदा।

तत्समाधानमित्युक्तं न तु चित्तस्य लालनम्।। 26।।

अपनी बुद्धि को सब प्रकार से शुद्ध ब्रह्म में सदा स्थिर करना, इसी को समाधान कहते हैं। चित्त की इच्छापूर्ति को समाधान का नाम नहीं देते।

मुमुक्षुत्व संसार बंधन से स्वतंत्रता है। आत्मानुभूति में साधनचतुष्टय की प्राप्ति होती है। उपरोक्त साधनों से युक्त मनुष्य को ज्ञान प्राप्ति के लिए चेष्टा करनी चाहिए।

मैं कौन हूँ ? यह जगत क्या है ? इसकी उत्पत्ति कैसे हुई ? यह चिरंतन प्रश्न हैं और इन प्रश्नों का उत्तर मनुष्य सदा सर्वदा से ढूँढता आया है।

बिना साधन के ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है। विचारों और बिना साधन से आत्म की अनुभूति नहीं होती है। ज्ञान की प्राप्ति के फलस्वरूप व्यक्ति को यह ज्ञात होता है कि वह न भूतों का संघात देह है और ना ही मात्र वह इंद्रियों तक ही सीमित है। बल्कि वह कुछ अन्य है। संपूर्ण प्रपंच अज्ञान से उत्पन्न होता है इस बात का ध्यान भान व्यक्ति को हो जाता है। व्यक्ति यह विचार कर पाता है कि वह सूक्ष्म, ज्ञाता, साक्षी, अविनाशी और सत्य मैं ही हूँ। आत्मा कलाहीन तथा एक ही है जबकि देह का निर्माण अनेक तत्वों से हुआ है। इन दोनों को एक मान लेना सबसे बड़ी अज्ञानता है। आत्मा नियामक तथा अंतर्वर्ती है तथा देह बाह्य और नियम्य है और इन दोनों को एक मानना अज्ञानता है। आत्मा ज्ञान स्वरूप तथा पवित्र है तथा देह मौसमय तथा अपवित्र है। आत्मा सबका प्रकाशक तथा निर्मल है देह तमोमय है। आत्मा नित्यस्वरूप तथा सत्यस्वरूप है तथा शरीर और अनित्य और असत्य है। पदार्थ की प्रकृति में आत्मा का ही प्रकाशत्व है परंतु आत्मज्योति अग्नि आदि ज्योति के समान नहीं है क्योंकि अग्नि की ज्योति सतत नहीं है परंतु आत्मा की ज्योति सतत है और इसका कभी भी अभाव नहीं होता है। द्रष्टा को सदैव इसका भान राहत है कि मैं मूल पुरुष हूँ, मैं सम, शांत और सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म ही हूँ असत्य स्वरूप देह मैं नहीं हूँ इसी को बुद्धजन ज्ञान कहते हैं। मैं निराकार, निर्विकार, निर्मल तथा अविनाशी हूँ असत् स्वरूप देह मैं नहीं हूँ। निर्गुण, निष्क्रिय, नित्य, तथा अच्युत ब्रह्म मैं ही हूँ। मैं निश्चल, निश्छल, निर्मल, अनंत तथा अजर-अमर हूँ यह नाशवान देह मैं नहीं हूँ। अपने शरीर में पुरुष नामक सुंदर देहातीत और शास्त्रसम्मत आत्मा के रहते हुए उसे शून्यरूप करना सबसे बड़ी अज्ञानता है और आत्मानुभूति के होते ही इस अज्ञानता का नाश हो जाता है। इस आत्मस्वरूप की अनुभूति के लिए श्रुति तथा युतिपूर्वक श्रवण करना चाहिए। 'अहं' मैं शब्द से प्रसिद्ध परात्मा एकमात्र स्थित है फिर जो स्थूल जो अनेक तत्वों से एकमात्र स्थित है फिर जो स्थूल जो अनेक तत्वों से बना है वह आत्मा कैसे हो सकता है। अहं विकाररहित और देह विकारवान है। विद्वानों ने पुरुष का लक्षण यस्मात्परम से निश्चित किया है जो देह कदापि नहीं हो सकता। जबकि श्रुति ने पुरुषसूक्त में कहा है कि सब कुछ पुरुष ही है तो फिर देह पुरुष कैसे हो सकता है? वृहदारण्यक में भी पुरुष को असंग कहा गया है जो अनंत मल से पूर्ण पुरुष

नहीं हो सकता। कहा गया है कि पुरुष परम प्रकाश है जो स्व से प्रकाशित होता है तो दूसरों के प्रकाश से प्रकाशित होने वाला यह देह पुरुष कदापि नहीं हो सकता है। कर्म-काण्डों में भी आत्मा को देह से पृथक् तथा नित्य बताया गया है। इस प्रकार पुरुष या आत्मा या ईश्वरय स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार के शरीरों से भिन्न है।

चौतन्य एक रूप है उसका भेद कभी उचित नहीं हो सकता। जैसे 'रज्जु' में सर्प की प्रतीति मिथ्या है उसी तरह जीव भाव को भी मिथ्या जानना चाहिए। 'रज्जु' के अज्ञान से एक क्षण में 'रज्जु' सर्प के रूप में प्रतीत होता है। वैसे ही साक्षात् शुद्ध चित्त ही विश्व रूप संभाष रही है। प्रपंच का उपादान कारण ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई नहीं है और यह संपूर्ण प्रपंच ही ब्रह्म ही है और कुछ नहीं है। शास्त्र कहते हैं कि सब कुछ आत्मा ही है। अतः जगत, आत्म और ब्रह्म का यह परम तत्त्व को जान लेने पर फिर भेद का स्थान नहीं रहता है। श्रुति ने स्वयं ही नानात्व का निषेध किया है कारण कि अद्वितीय होने पर भला स्वयं आभास कैसे हो सकता है ? मनुष्य माया के कारण ही संसार में नानात्व देखता है। समस्त नामरूप, कर्मों को ब्रह्म ही धारण करता है। जिस प्रकार सोने का कोई भी आभूषण बना लें व सोना ही रहेगा उसी प्रकार से ब्रह्म से निर्मित कुछ भी हो वह ब्रह्म ही रहेगा। जो भी व्यक्ति जीवात्मा तथा परमात्मा में थोड़ा भी अंतर पाता है वह मूढ़ है और आत्मा से परिचित नहीं है। जो द्वैतभाव में अंतर को देखता है वह ज्ञानी नहीं। जब सब आत्मरूप में ही दिखाई देता है तब अन्य कुछ भी नहीं रहता। उस अवस्था में संपूर्णभूतों को आत्मभाव से जानने वाले ज्ञानी को कोई दूसरा न रहने के कारण न मोह होता है और शोक ही क्योंकि यह आत्मा सर्वात्म भाव से स्थित ब्रह्म ही है। दूसरे क्षण में न रहने के कारण जैसे स्वप्न असत्य होते हैं वैसे ही संसार व्यवहारयोग्य और अनुभवयोग्य होते हुए भी असत्य है। सत्, रज और तम तीन गुणों से उत्पन्न हुई जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्था तीनों ही अवस्थाएं मिथ्या है किंतु इन तीनों का द्रष्टा गुणों से परे नित्य तथा चित्त स्वरूप है।

कल्पना करें कि हम किसी बस या ट्रेन से यात्रा कर रहे हैं। ऐसे में हमें सभी वृक्ष है या अन्य वस्तुएं जैसे घर, दुकान, इत्यादि विपरीत दिशा में भागते हुए प्रतीत होते हैं। हमें लगता है कि हम स्थिर हैं और बाकी की अन्य वस्तुएं जैसे वृक्ष घर या दुकान चलायमान हैं। यह हमारा भ्रम मात्र होता है जो कि स्थिति के अज्ञानता के कारण होती है। इसी अज्ञानता के फल स्वरूप हम आत्मा में देहभाव देखते हैं। अज्ञानता प्रत्येक भ्रम का कारण है। यही अज्ञानता, यही अविद्या आत्मा में देह के आभास का कारण है जो कि जड़ और चेतन को एक मानने को विवश करती है। वहीं आत्म की अनुभूति होने की दशा में आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। जो इस स्थावर संसार को आत्मरूप से जान लिया तब वह मनुष्य संपूर्ण भावों का अभाव रहने पर अपनी आत्मा को परमात्मा से अलग किस प्रकार देख सकता है। व्यक्ति को जब आत्मरूप का ज्ञान हो जाता है तो वह इस बात से पूर्णरूपेण अवगत हो जाता है कि व्यक्ति का प्रारब्ध जो निश्चित है वह कहीं नहीं जाता है अतः उसके निराकरण का प्रयास ज्ञानी व्यक्ति करता है।

आत्मानुभूति के लिए उसके आवश्यक साधन हैं। आत्मानुभूति के लिए निदिध्यासन करना आवश्यक है। निदिध्यासनका आशय बार-बार स्मरण करने या ध्यान में लाने से है। श्रुतियों और योगदर्शन में भी दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन आत्मज्ञान के लिये आवश्यक बतलाया गया है। आत्मानुभूति के लिए पंद्रह अंग या साधनों के विषय में कहा गया है। ये अंग या साधन यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन, मूलबन्ध, देहसाम्य, दृ कस्थिति, प्राणसांयमन, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि हैं जिनके द्वारा आत्मानुभूति की जा सकती है या जिसके द्वारा व्यक्ति को आत्मा की अनुभूति होती है।

जैसा कि उल्लिखित किया गया है, पहला साधन यम है जो इंद्रियों के निग्रह से संबंधित है। आत्मानुभूति हेतु इसका बारम्बार अभ्यास व्यक्ति के लिए आवश्यक है। दूसरा साधन नियम है। नियम आत्म-शुद्धि के लिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यह व्यक्तिगत शुद्धि के लिए आचार संहिता का महत्वपूर्ण साधन है। नियम कहता है कि सजातीय प्रवाह यानि आत्मा के अंदर वह भाव कि मैं ही ब्रह्म हूँ और विजातीय तिरस्कृति कि ब्रह्म के इतर संपूर्ण संसार पूर्णरूपेण मिथ्या है और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। त्याग मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करती है। प्रपंच को चेतन न मान उसके रूप का त्याग करना महान पुरुषों का कर्म है और यही त्याग है। मौन मान-मंथन में योगदान करता है। व्यक्ति द्वारा धारण की गई यह शांति आत्मानुभूति की प्राप्ति की संभावना को बढ़ाती है। मौन तक योगियों की ही गति है और किसी सामान्य व्यक्ति द्वारा इस की प्राप्ति नहीं की जा सकती है। जहां से वाणी लौट आती है उस ब्रह्म का कोई वर्णन नहीं कर सकता। साथ ही प्रपंच भी शब्दरहित है। वाणी का मौन मात्र मूढ़ व्यक्तियों के लिए है। जिसमें आदि, मध्य, अंत में कोई जन नहीं है तथा जिससे यह जगत निरंतर व्याप्त है

वही देश जनशून्य कहा गया है। ब्रह्मा आदि समस्त भूतों की एक पल में ही कलना करने के कारण अद्वितीय, अखंड, आनंद स्वरूप ब्रह्म ही काल शब्द कहा जाता है। जिस अवस्था में सुख पूर्वक निरंतर ब्रह्म चिंतन हो उसे ही आसन की संज्ञा देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त कोई अन्य बैठने की स्थिति आसन की श्रेणी में नहीं आ सकती है। जो समस्त भूतों का आदिकारण है, विश्व का अविनाशी अधिष्ठान है और जिनमें सिद्धजन स्थित रहते हैं उसे ही सिद्धासन समझना चाहिए। जो समस्त भूतों का मूल है तथा जिसके आश्रय से चित्त स्थिर किया जाता है उस मूलबन्ध का सदा सेवन करना चाहिए। यही राजयोगियों का योग है। चित्त के समब्रह्म में लीन हो जाने की स्थिति में अंगों की संत समझी जा सकती है। निश्चलता से अंगों की संत को नहीं जाना जा सकता है। दृष्टि को ज्ञानपूर्ण कर संसार को ब्रह्म के रूप में देखना ही सही दृष्टि है। भौतिक संसार या स्थूल संसार को देखना दृष्टि में सम्मिलित नहीं होता है। चित्तादि समस्त भावों में ब्रह्म रूप से ही भावना करने से संपूर्ण वृत्तियों का निरोध हो जाता है और यही प्राणायाम है। प्रपंच का निषेध करना रेचक है तथा मैं ब्रह्म हूँ और ब्रह्म से इतर कुछ और नहीं हूँ, ऐसी वृत्ति पूरक व्यायाम है। इसके पश्चात इस ब्रह्म से संबंधित व्यक्ति की वृत्ति की निश्चलता कुम्भक है। वे व्यक्ति जिन्हें ज्ञान की प्राप्ति हो गई है उनके लिए यही प्राणायाम है अन्यथा अज्ञानियों के लिए प्राणायाम श्वास लेना तथा छोड़ना ही है। विषयों में आत्मभाव करके मन को चेतन के साथ मिला देना ही हार है प्रत्याहार कहा जाता है। ये व्यक्ति जो मुमुक्षु के आकांक्षी होते हैं उन्हें इसका ही अभ्यास करना चाहिए। मन जहां भी गति करे वहाँ ब्रह्म का साक्षात्कार करना और इस तरह से चंचल मन को स्थिर करना धारणा है। मैं ब्रह्म ही हूँ और इस विचार के साथ जो परमानंद की स्थिति प्राप्त होती है वह ध्यान है। निर्विकार तथा ब्रह्माकार वृत्ति से जो पूर्णतः वृत्तिहीनता हो जाती है वह ज्ञान ही समाधि की स्थिति है। इस प्रकार इस स्वाभाविक आनंद का तब तक व्यक्ति अभ्यास करे जब तक चित्त को लगाने पर एक क्षण में ही वह अपने वशीभूत ना हो जाए। तब वह योगी सब संबंधों तथा साधनों से छूट सिद्ध की स्थिति प्राप्त कर लेता है।

जिनकी ब्राम्ही वृत्ति विकसित तथा परिपक्व होती है वही आत्मा के स्वरूप को अनुभूत कर पाते हैं और योग के माध्यम से आत्मानुभूति की स्थिति की प्राप्ति कर पाते हैं।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

6. आत्म शब्द का क्या आशय है ?

.....

7. अनुभूति का क्या अर्थ है ?

.....

8. योग का अंतिम लक्ष्य क्या है ?

.....

9. आत्मानुभूति का क्या आशय है ?

.....

10. शम किसे कहते हैं ?

.....

11. तितिक्षा का शब्द का क्या अर्थ होता है ?

## 8.5 प्रत्यक्षानुभूति तथा इसमें योग की भूमिका

यदि प्रत्यक्ष का अर्थ समझने हेतु इसका संधिविच्छेद किया जाए तो जो शब्द हमें प्राप्त होते हैं वह क्रमशः प्रति तथा अक्ष हैं जिसका आशय है कि 'अक्ष के समक्ष'। अर्थात् जो भी आँखों के सामने घटित हो ऐसा ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है। यहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान की प्राप्ति का माध्यम मात्र व्यक्ति के चक्षु ही नहीं बल्कि समस्त इंद्रियाँ ही हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान हेतु न्यायदर्शन में उल्लिखित भी है –

**इंद्रियार्थ सन्निकर्ष अन्य ज्ञानं प्रत्यक्षम् ॥ 4 ॥**

अर्थात् जो ज्ञान इंद्रिय और विषय के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। इसमें तीन तत्व कार्य करते हैं— इंद्रिय, विषय तथा सन्निकर्ष। मनुष्य की इंद्रियाँ दो प्रकार की होती हैं— ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ। जो इंद्रियाँ ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम होती हैं उन्हें हम ज्ञानेन्द्रियाँ कहते हैं तथा कर्म करने से जुड़ी हुई इंद्रियाँ कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं।

वह ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण कहा जाता है जो इंद्रियों एवं उसके विषय के सन्निकर्ष— संयोग से प्रकट होता है किंतु वह अव्यपदेश्य (न कहने योग्य) और अव्यभिचारी (व्यभिचार के दोष से रहित) एवं व्यवसायात्मक (संदेहरहित) होना चाहिए। वह ज्ञान प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है जैसे— अमुक व्यक्ति जा रहा है, अमुक व्यक्ति भोजन कर रहा है आदि। जब नेत्र इन विषयों को प्रत्यक्ष देखता है तब संदेह का प्रश्न ही नहीं होता। जिस दृश्य को नेत्र प्रत्यक्ष—प्रमाण के रूप में देख रहा होता है वह पूर्व से कहा गया (अव्यपदेश्य) भी नहीं होता तथा प्रत्यक्ष घटित होने के कारण वह तदनुरूप ही (अव्यभिचारी) दृष्टिगोचर होता है। इस कारण से उसके बढ़ने और घटने का दोष भी नहीं रहता (अर्थात् वह अव्यवसायात्मक है। अतः जो प्रत्यक्ष—प्रमाण है वह प्रमाणों में सर्वोपरि एवं अटल माना जाता है।

योगाभ्यास के माध्यम से योगी को ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। यह योगी को वह दिव्य दृष्टि प्रदान करता है जिससे योगी ईश्वर का साक्षात्कार कर पाता है।

संसार की प्रत्येक वस्तु नाशवान है। जहाँ तक हमारी दृष्टि जाती है वहाँ तक की प्रत्येक वस्तु ही एक न एक दिन समाप्त होने वाली है और तब हम परेशान होकर सत्य को तलाशने का प्रयास करते हैं। हम अपने जीवन की सार्थकता ढूँढना चाहते हैं और फिर हमें हमारे महापुरुषों द्वारा सुझाया गया मार्ग दिखता है कि नश्वर संसार में अनश्वर को प्रपन्न कर लेना और अस्थिर संसार में स्थिर हमको जान लेना ही सत्य है। सत्य की प्राप्ति ही हमारा लक्ष्य है जैसे नदियों का उद्गम कहीं से भी होता है वह जाकर सागर में ही मिल जाती हैं। वह उद्गम के साथ ही अपने मार्ग को तलाश करने लगती हैं और अंततः संपूर्ण मार्ग तय कर सागर में जा मिलती हैं। आत्मा और परमात्मा का यही संबंध है और नदी की भांति आत्मा का लक्ष्य ब्रह्म रूपी सागर में जा मिलना है। इसके अतिरिक्त कोई बहु अन्य नियति आत्मा की नहीं है। हमारा आधार वह परमात्मा है। परंतु हम अज्ञानता के कारण अपने मूल से, यानि ईश्वर से भटके हुए हैं। ईश्वर को समझने के लिए, ईश्वर से जा मिलने के लिए आत्म ज्ञान होना या व्यक्ति का आत्मवेत्ता होना आवश्यक है। यह ज्ञान मात्र पुस्तकों को पढ़कर नहीं आ सकता है। प्रत्यक्षानुभूति तथा कल्पना के मध्य एक बड़ा अंतर है। कल्पना में अभिव्यक्ति या अनुभूति नहीं होती। जो अनुभूत नहीं किया गया है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। पुस्तकों में दूसरों के अनुभव हैं वह हमारे निजी अनुभव नहीं हैं और जब तक कुछ भी हमारा व्यक्तिगत अनुभव नहीं तब तक वह अनुभूति की श्रेणी में नहीं आ सकता। हम अँधेरे कक्ष का अँधेरा दूर करने के लिए मात्र प्रकाश की बात कर उसे दूर नहीं करते बल्कि एक दीपक जलाना पड़ेगा तभी वह अँधेरा दूर होगा। पुस्तकों का अध्ययन मात्र अँधेरे कमरे में प्रकाश की बात करने से संबंधित है।

परमात्मा का गुणगान करने से, उनके नाम का उच्चारण मोक्ष के द्वार नहीं खोल सकता। इसके लिए ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव करना होगा, परमात्मा को जानना होगा।

प्रत्यक्षानुभूति के लिए हमारे संत, महापुरुषों ने कई मार्ग बताए हैं और सुझाव दिए हैं। हमारे महापुरुष इंगित करते हैं कि किस प्रकार ईश्वर को जानें। एक चीज है और मानना दूसरी। हम ईश्वर को मानना चाहते हैं परंतु जानना नहीं। परंतु हम स्वयं से परमात्मा में अपने प्रेम और विश्वास की आधारभूमि को पूछें तो हमें कोई उत्तर नहीं मिलता। हम बस अपने से पहले के कुछ लोगों के अनुसरण करते हुए परमात्मा में विश्वास बना लिए। ईश्वर के अस्तित्व के विषय में हमारी अपनी आधारभूमि कुछ भी नहीं है। भारतीय धर्म, दर्शनों में इस मानने को नकार दिया है। यदि बुद्धजनों से ईश्वर में विश्वास की वजह पूछा जाए तो स्पष्ट रूप से कहते हैं कि ईश्वर मानने का विषय नहीं है बल्कि जानने का विषय है। मानना अंधकार है जानना प्रकाश है, मानना नेत्रहीनता है और जानना प्रत्यक्ष अनुभूति है। कबीर दास जी अपने एक दोहे में कहते हैं कि 'कहासुनी की बात नहीं देखा देखी की बात'। ब्रह्म कहने और सुनने की बात नहीं है बल्कि उसका साक्षात्कार आप कैसे कर सकते हैं उसकी बात है। ब्रह्म जानने की बात है जब तक हम अपने शास्त्रों के अनुसार नहीं चलेंगे तब तक ब्रह्म की अनुभूति नहीं हो सकती। श्वेताश्वतरोपनिषद् में उल्लिखित है —

**यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।**

**तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥**

जिसका आशय है कि जब मानव सन्तति आकाश को चर्म के समान आवेष्टित करके धारण करेगी तथा द्युलोकों को परिधान के समान अपने ऊपर लपेट लेगी, केवल तब अपने श्प्रभुश्, ईश्वरश् के ज्ञान के बिना ही श्जगत्स् के दुःखों का अन्त हो जायेगा। यहाँ अर्थ है कि यदि आकाश को लपेटकर मृगचर्म की तरह बगल में दबा लेना सम्भव हो तो भगवद्-दर्शन बिना ही आनन्द की प्राप्ति भी सम्भव हो सकती है। तात्पर्य कि जैसे आकाश को मृगचर्म की तरह लपेटकर बगल में दबा लेना सर्वथा असम्भव है, वैसे ही भगवद्-दर्शन, भगवत्-साक्षात्कार बिना आनन्द प्राप्ति भी कदापि सम्भव नहीं।

दुखों के अंत या मोक्ष के लिए किस प्रत्यक्ष की अनुभूति करें तो इसके संबंध में श्वेताश्वतरोपनिषद् में पुनः कहते हैं कि —

**वेदाहमेत मजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात्।**

**जन्म निरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हिप्रवदन्ति नित्यम्॥**

अर्थात् वह परमात्मा अजर है, पुरातन सनातन है सर्वन्तर्यामी है, विभु और नित्य है, ब्रह्मवादी सदा उसका बखान करते हैं वह कभी जन्म नहीं लेता। जो परमात्मा मृत्यु, जरा से परे है, जो अनंत तथा विपु है, जो नित्य है और सर्वत्र विद्यमान है, जो अन्तर्यामी है उसी प्रहम को हमें जानना है।

उस परम ब्रह्म, के इसी रूप का वर्णन करते हुए वेद कहते हैं कि —

**एतावानस्य महिमातो ज्यायँश्च पुरुषः।**

**पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्या मृतं दिवि ॥**

जिसका भावार्थ है कि इस पुरुष की इतनी महिमा है कि यह सारा ब्रम्हांड परमेश्वर के एक अंश में है। अर्थात् वह ईश्वर इस समस्त ब्रह्माण्ड में समाया हुआ अनन्त है एक समस्त जगत परमात्मा के एक भाग में है अन्य तीन भाग तो परमात्मा के अपने स्वरूप में प्रकाशित है। अर्थात् परमात्मा अनंत है। अर्थात् सर्वत्र विद्यमान है उसको किसी एक स्थान पर नहीं कह सकते।

यजुर्वेद में उल्लिखित है कि—

**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।**

**तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥**

अर्थात् मैं उस प्रभु को जानूँ जो सबसे महान् है, जो करोड़ों सूर्यों के समान देदीप्यमान है, जिसमें अविद्या और अन्धकार का लेश भी नहीं है। उसी परमात्मा को जानकर मनुष्य दुःखों से, संसाररूपी मृत्यु-सागर से पार उतरता है, मोक्ष-प्राप्ति का और कोई उपाय नहीं है।

जीवन का लक्ष्य ईश्वर को देखना ईश्वर को जानना है। इन सभी श्लोकों में ईश्वर को जानने की बात की गई है। यह कभी आँख मूँदकर ईश्वर पर विश्वास करने को नहीं कहते हैं।

यह तो हुआ कि ईश्वर को मानना नहीं जानना चाहिए परंतु ईश्वर को जाने कैसे? ईश्वर को जानने के लिए उसके पास जाना होगा, उसे देखना होगा और यही जीवन का ध्येय है। बिना पास गए, ईश्वर को देखे बिना किस प्रकार ईश्वर से प्रेम तथा विश्वास हो सकेगा। जब तक हम परमात्मा या उस प्रत्यक्ष की अनुभूति नहीं कर लेंगे तब तक हमें उस परम की प्राप्ति नहीं होगी। ईश्वर सृष्टि के प्रत्येक कण में व्याप्त है और यही सत्य है। परंतु इस सत्य की जब तक अनुभूति नहीं की जा सके इस सत्य का कोई अस्तित्व नहीं है। और इस क्रम में हमें सबसे पहले स्वयं के अंदर ही उस परमशक्ति को प्राप्त करना होगा। यदि हम स्वयं के अंदर उस ईश्वर की अनुभूति नहीं कर पायें तो उस सत्य की कोई प्रासंगिकता नहीं है। हम इस सृष्टि के ही भाग हैं जिसके हर कण में ईश्वर उपस्थित है, अर्थात् हमारे भीतर भी ईश्वर का निवास है। आवश्यकता है तो मात्र उसको अनुभूत करने की, मन के मार्ग से उसको देखने की और अंततः उसको प्राप्त करने की। ईश्वर के साक्षात्कार के अभाव में मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

अगला प्रश्न है कि प्रत्यक्षानुभूति या ईश्वर से साक्षात्कार कैसे होगा? कई बार हमें यह लगता है कि हम स्वयं ही परमात्मा को प्राप्त कर लेंगे। नित्य का पूजा-पाठ कर लेने से या नित्य-नियम कर लेने से परमात्मा की प्राप्ति संभव है। पर यह सोच सही नहीं है। समस्या यह है कि हम गलत स्थान पर ईश्वर की खोज करते हैं। हम धार्मिक स्थलों पर जाकर ईश्वर की प्राप्ति नहीं कर सकते बल्कि प्रत्यक्षानुभूति के लिए हमें अपने अंदर ही झाँकना होगा। ईश्वर की उपस्थिति अंदर ही है परंतु हम कस्तूरी मृग की भाँति बाहर ही कस्तूरी की तलाश करते रहते हैं जबकि वह सुगंध मृग के अंदर से ही आ रही होती है। हममें से अधिकांश को लक्ष्य का पता तो होता है परंतु मार्ग का पता नहीं होता। और यह मार्ग सुझाने का काम गुरु करता है। स्वामी विवेकानंद जैसे महाज्ञानी को भी परमानुभूति या प्रत्यक्षानुभूति तभी हुई जब उनके गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने उन्हें सही मार्ग बताया। अन्यथा इसके पहले वह मात्र नरेन्द्रनाथ ही थे। जब तक हम अपने अंदर नहीं जाएंगे तब तक ईश्वर का दर्शन नहीं होगा। यजुर्वेद के अध्याय 32 , श्लोक संख्या 8 में उद्धृत है —

**वेनस्त पश्यम् निहितम् गुहायाम॥**

अर्थात् विद्वान् पुरुष ईश्वर को अपने हृदय में देखते हैं।

श्रीमद्भागवतगीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि —

**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।**

**भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ 18.61॥**

अर्थात् , हे अर्जुन ! ईश्वर सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में रहता है और अपनी माया से शरीर रूपी यन्त्र पर आरुढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को (उनके स्वभाव के अनुसार) भ्रमण कराता रहता है।

परमात्मा एक ही है और वही परमात्मा सभी जीवों के हृदय में उपस्थित है। और इस परमात्मा को बाहर नहीं ढूँढा जा सकता। इसके लिए साधक को अपने अंतःकरण में जाना होगा। आम जनमानस के शब्दों में कबीर कहते हैं कि —

**मोकों कहाँ ढूँढ़े बंदे, मैं तो तेरे पास में।**

**ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।**

**ना तो कौन क्रिया-कर्म में, नहीं योग बैराग में।**

**खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तलास में।**

**कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में॥**

कबीरदास जी कहते हैं कि ऐ बंदे तुम मुझको कहाँ ढूँढता फिर रहा है, मैं तो तुम्हारे पास ही हूँ। मैं न तो मंदिर में तुम्हें मिलूँगा और ना ही मस्जिद। मेरी मौजूदगी ना तो काबे में है और ना ही कैलास में। किसी भी प्रकार के क्रिया-कर्म या योग-वैराग के माध्यम से तूम् मुझे नहीं प्राप्त कर सकते। यदि तुम मुझे सच्चे मन से खोजना

चाहो तो मैं उस पल भर की तलाश में तुम्हें मिल जाऊंगा। कबीर दास जी कहते हैं कि ईश्वर प्राणी की हर एक सांस में मौजूद है।

यदि यह प्रश्न किया जाए कि हमें प्रत्यक्षानुभूति क्यों नहीं होती है यदि ईश्वर हमारे अंदर हमारे हृदय में ही हैं। यदि ईश्वर हमारी प्रत्येक श्वास में उपस्थित हैं तो हम उन्हें क्यों अनुभूत नहीं कर पाते हैं ? तो गलत स्थान पर खोजने के साथ यह भी समस्या है कि हम ईश्वर को गलत माध्यम से या सीमित माध्यमों से ढूँढने का प्रयास करते हैं। हम परमात्मा को प्राप्त करने के लिए अपनी इंद्रियों (ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों) का प्रयोग करते हैं। परंतु हमारे शास्त्रों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि परमात्मा को इंद्रियों के माध्यम से नहीं जाना जा सकता है। परमात्मा इंद्रियों का विषय है ही नहीं बल्कि वह इंद्रियों से परे है। इंद्रियों के माध्यम से प्रत्यक्षानुभूति नहीं हो सकती। तो क्या ईश्वर की अनुभूति बुद्धि के माध्यम से हो सकती है। यहाँ इसका उत्तर भी नहीं के रूप में है कि बुद्धि द्वारा ईश्वर की अनुभूति नहीं हो सकती। बुद्धि के माध्यम से ईश्वर को जानना किसी रेगिस्तान में रेत के कण गिनने जैसा है।

तत्त्ववेत्ता परमात्मा दिव्य है और इसलिए प्रत्यक्षानुभूति के लिए दिव्य नेत्र भी चाहिए। यह सामान्य आँखें परमात्मा को नहीं देख सकतीं। क्या आँखें स्वयं को देख सकती हैं ? इसका भी उत्तर ना में होगा। तो जो आँखें स्वयं को नहीं देख सकतीं वह परमब्रह्म को कैसे देख सकती हैं। अतः दिव्य ब्रह्म के लिए दिव्य दृष्टि आवश्यक है। और यह दिव्य दृष्टि आध्यात्मिकता से मिलती है। एक अन्य प्रश्न है कि क्या पूजा-पाठ से आध्यात्मिकता की प्राप्ति हो सकती है। तो इस प्रश्न का उत्तर भी नहीं में आएगा। इसके लिए यम, नियम का पालन करते हुए अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण करना होगा, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान का अभ्यास करते हुए समाधि की अवस्था में जाना चाहिए। और इस समाधि में जब साधक असंप्रज्ञात समाधि की स्थिति को प्राप्त कर लेता है तब वह स्वयं में प्रत्यक्षानुभूति कर लेता है।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से कीजिए।

12. प्रत्यक्ष ज्ञान में कौन से तत्व कार्य करते हैं ?

.....

13. दुखों के अंत या मोक्ष के लिए क्या आवश्यक है ?

.....

14. हम ईश्वर को क्यों अनुभूत नहीं कर पाते हैं ?

.....

## 8.6 सारांश

योग दर्शन मोक्ष की प्राप्ति की बात करता है जिसमें सदेह मुक्ति और विदेह मुक्ति की बात की गई है और इस मुक्ति की प्राप्ति के लिए विभिन्न साधनों या मार्गों के अनुसरण पर भी अत्यधिक बल देता है। योग वह माध्यम है जो मनुष्य की एकाग्रता की क्षमता को बढ़ाता है। योग के द्वारा व्यक्ति को आध्यात्मिक उन्नति, आत्मानुभूति, प्रत्यक्षानुभूति की प्राप्ति होती है। यह वह माध्यम है जो चित्त की वृत्तियों का नाश करते हुए व्यक्ति को उसके वास्तविक रूप से परिचित कराती है तथा आत्मा के ऊपर के पड़े आवरण को हटाने में मदद करती है जिससे वह अपनी आत्मा और शरीर में भेद करते हुए अपने वास्तविक स्वरूप को समझ पाता है कि वह अनित्य तथा मर्त्य

शरीर ना होकर जागृत आत्मा है। योग व्यक्ति के विवेक को जागृत करता है जिससे व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति करते हुए अपनी आत्मा का साक्षात्कार कर पाता है और यह विवेक जन्य ज्ञान और आत्म साक्षात्कार ही मोक्ष के मार्ग पर व्यक्ति को अग्रसर करता है। योग बतलाता है कि ब्रह्म या ईश्वर जब आत्मा से अलग नहीं है तब ईश्वर या ब्रह्म को जानने के लिए हमें अपनी आत्मा की ओर जाना होगा। और फिर आध्यात्मिक उन्नति, आत्मानुभूति तथा प्रत्यक्षानुभूति जैसी स्थितियों की प्राप्ति के लिए मन का एकाग्र होना परमावश्यक है। व्यक्ति को सारी इंद्रियों, मन, अहंकार, बुद्धि को बाह्य जगत से मोड़कर अपने अंदर अवस्थित करना होगा। स्वयं को या ईश्वर को कहीं और नहीं स्वयं में ढूंढना होगा। व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति तथा आत्मानुभूति होने के साथ ही प्रत्यक्षानुभूति या अपरोक्षानुभूति हो जाती है।

---

## 8.7 अभ्यास के प्रश्न

---

1. आध्यात्मिक उन्नति को परिभाषित करते हुए योग की आध्यात्मिक उन्नति में भूमिका को स्पष्ट करें।
2. आत्मानुभूति से आप क्या समझते हैं? योग किस प्रकार से व्यक्ति को आत्मानुभूति करने में सहायक सिद्ध होता है?
3. प्रत्यक्षानुभूति को स्पष्ट करें। प्रत्यक्षानुभूति में योग की भूमिका का वर्णन करें।

---

## 8.8 चर्चा के बिंदु

---

1. आध्यात्मिक उन्नति, आत्मानुभूति, तथा प्रत्यक्षानुभूति किस प्रकार से एक दूसरे से संबंधित हैं?
2. क्या आपके दृष्टिकोण से आत्मानुभूति के बिना प्रत्यक्षानुभूति हो सकती है?

---

## 8.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

1. अध्यात्म का अर्थ 'आत्मा में स्थित', 'उच्च स्व' या एक अन्य अर्थ 'शून्य' होता है।
2. चित्त विक्षेपों को योगान्तराय भी कहते हैं।
3. चित्त को विक्षिप्त करके उसकी एकाग्रता को नष्ट कर देते हैं।
4. वेदों में दुःख या ताप के तीन प्रकार बताए गए हैं आध्यात्मिक (दैहिक), आधिभौतिक (भौतिक) तथा आधिदैविक (दैविक) दुःख।
5. व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्ध भूमिकत्व और अनवस्थित तत्त्व को योग के मल के रूप में जाना जाता है।
6. आत्म शब्द का आशय है स्वयं अपने व्यक्तित्व या अपनी आत्मा के चेतन स्वरूप या मन से संबंध रखनेवाला।
7. जब हमारे मन में कोई विचार उत्पन्न होता है अथवा हम बाह्य जगत की किसी भी वस्तु के संपर्क में आते हैं तो हमारी ज्ञानेंद्रियाँ उनके विषय में हमें अवगत कराती हैं। यह अवगत होना या भावनाओं का उत्पन्न होना ही अनुभूति है।
8. योग का अंतिम लक्ष्य समाधि की स्थिति की प्राप्ति है।
9. आत्मानुभूति व्यक्ति की आध्यात्मिक अवस्था है जो सर्वोच्च स्तर का द्योतक है। आत्मानुभूति अपने 'स्व' को विकसित करते हुए विश्व को उस 'स्व' के साथ एकाकार कर देना है।
10. दोष—दृष्टि करने से विषय—समूह से विरक्त होकर चित्त का अपने लक्ष्य में स्थिर हो जाने को 'शम' कहते हैं।
11. तितिक्षा का अर्थ सहनशीलता है।
12. प्रत्यक्ष ज्ञान में तीन तत्व कार्य करते हैं— इंद्रिय, विषय तथा सन्निकर्ष।
13. दुखों के अंत या मोक्ष के लिए प्रत्यक्षानुभूति होना आवश्यक है।

14. हम ईश्वर को गलत स्थान और गलत माध्यम से या सीमित माध्यमों से ढूँढने का प्रयास करते हैं।

---

### 8.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

1. सिन्हा, जे. (2010). भारतीय दर्शन. दिल्लीरू मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।
2. हिरियन्ना, एम. (2018). भारतीय दर्शन की रुपरेखा. नई दिल्लीरू राजकमल प्रकाशन।

---

### 8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

1. आयंगर, बी.के.एस. (2019). पतंजलि योग सूत्र. नई दिल्ली : प्रभात पेपरबैक्स।
2. गोयन्दका, एच. के. डी. (2019). योग दर्शन. गोरखपुर : गीताप्रेस।
3. तीर्थ, वेदान्त (2022 ). यजुर्वेद. दिल्ली : मनोज पब्लिकेशन्स।
4. संपूर्णानंद (2017). योग दर्शन. लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान।

---

योग के विभिन्न प्रकार एवं आसन

---

**खण्ड परिचय**

योग सनातन काल से चली आ रही एक विधा ही नहीं अपितु विज्ञान है। योग के माध्यम से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है। योग से व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास होता है। प्रस्तुत खण्ड के अन्तर्गत योग के विभिन्न प्रकार, विभिन्न आसन व्यवस्था का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस खण्ड को चार इकाईयों क्रमशः इकाई-9, इकाई-10, इकाई-11 एवं इकाई-12 में विभक्त किया गया है। इकाईवार विवरण निम्नवत् है —

**इकाई-09**

योग के जनक महर्षि पतंजलि द्वारा योग के सम्बन्ध में विभिन्न आध्यात्मिक एवं चिकित्सकीय पक्षों का उल्लेख किया है। योग के अनेकों मार्गों में से अष्टांग योग का अपना एक विशिष्ट स्थान एवं पहचान है। प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत अष्टांग योग की प्रकृति, अर्थ, अवस्थाओं, राजपथ इसके विभिन्न आसन का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

**इकाई-10**

शास्त्रों एवं पुरातन ग्रन्थों में योग के अनेकों मार्गों का विवेचन प्राप्त होता है। सभी मार्गों का एक ही लक्ष्य है ईश्वर की प्राप्ति। मोक्ष प्राप्त करने के मार्गों में सबसे शक्तिशाली मार्ग ज्ञान योग है। भक्ति मार्ग अत्यधिक सरल मार्ग है जिसके कारण जनमानस में यह अत्यधिक लोकप्रिय है। कर्म का मार्ग मनुष्य के साथ जनम से मृत्यु तक जुड़ा रहता है। प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत ज्ञान योग, भक्ति योग एवं कर्म योग के विभिन्न आयामों का विस्तृत व्याख्या की गई है।

**इकाई-11**

योग से अनेक ऋषि मुनियों के अलावा कई दार्शनिक एवं विद्वान भी प्रभावित हुए। उनमें से योग विधा से श्री अरविन्द भी अत्यधिक प्रभावित हुए। श्री अरविन्द ने सर्वांग योग दर्शन की तत्व मीमांसा, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा एवं मूल्य एवं आचार मीमांसा के सम्बन्ध में सुन्दर चित्रण किया है। श्री अरविन्द एकीकृत शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। श्री अरविन्द ने योग के माध्यम से इन्द्रिय एवं मानसिक प्रशिक्षण की बात करते हैं। प्रस्तुत इकाई में श्री अरविन्द के समग्र योग एवं योग के आधुनिक स्वरूप का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

**इकाई-12**

सनातन धर्म में योग पद्धति के आधार पर ही सूर्य नमस्कार का प्रचलन अनादि काल से चला आ रहा है। हमारे सनातन संस्कृति में सूर्य को भगवान का स्थान प्रदान कर उनकी आराधना होती चली आ रही है। सूर्य नमस्कार के विभिन्न अवस्थाओं एवं सम्बन्धित आसनों का वर्णन धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित है। प्रत्येक आसन के लिए सूर्य मंत्र का प्रावधान है। प्रस्तुत इकाई में मंत्र के साथ सूर्य नमस्कार एवं आसन का सचित्र विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

---

## इकाई — 09 पतंजलि का अष्टांग योग

---

### इकाई की रूपरेखा

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 इकाई के उद्देश्य
- 9.3 अष्टांग योग का अर्थ और परिभाषाएँ
- 9.4 अष्टांग योगियों की अवस्थाएँ
  - 9.4.1 योग के अधिकारी
- 9.5 राजपथ
  - 9.5.1 अष्टांगयोग के अंग
  - 9.5.2 यम
  - 9.5.3 नियम
  - 9.5.4 आसन
  - 9.5.5 प्राणायाम
  - 9.5.6 प्रत्याहार
  - 9.5.7 धारणा
  - 9.5.8 ध्यान
  - 9.5.9 समाधि
- 9.6 सारांश
- 9.7 अभ्यास के प्रश्न
- 9.8 चर्चा के बिन्दु
- 9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 9.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

### 9.1 प्रस्तावना

---

योग के अनेक मार्गों में राज योग, हठ योग और भक्ति योग के विषय में बताया जा रहा है। इस संसार में मनुष्य ने अलग-अलग मत मान तोरो एवं संप्रदायों के द्वारा अनेक मार्ग बना लिए हैं ठीक वैसे ही योग के भी अनेक मार्ग हैं, योग के मार्ग भले अलग अलग हो लेकिन उनका उद्देश्य मनुष्य को स्वयं के भीतर सुषुप्त शक्ति का जागरण कर उसे परम सत्ता के दिव्य लक्ष्य की ओर ले जाना ही है। जिस प्रकार अनेक नदियां अंत में सागर में जाकर मिल जाती हैं उसी तरह से योग के अंग राज योग भक्ति योग हठयोग रूपी नदियां उस परम सत्ता रूपी समुद्र में कर एकाकार हो जाती हैं। महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योग दर्शन ग्रंथ राजयोग का प्रमुख ग्रंथ माना गया है। राजयोग के द्वारा प्राप्त समाधि मोक्ष को प्रदान करती है। राज योग का प्रारंभ सूक्ष्म शरीर अर्थात् मन के नियंत्रण से होता है। हठयोग का प्रारंभ स्थूल शरीर की शोधन के साथ सूक्ष्म शरीर की ओर बढ़ते हुए अपनी प्रस्तुत चेतना को जागृत करके परम लक्ष्य की ओर ले जाता है। हठयोग के प्रमुख ग्रंथ हठयोग प्रदीपिका एवं घेरंड संहिता है शिव संहिता में भी हठयोग का वर्णन है। भाव प्रधान व्यक्ति के लिए भक्ति योग मार्ग श्रेष्ठ है। अपनी भक्ति योग में साधक भक्ति योग मार्ग को अपना कर अपने आराध्य के प्रति संपूर्ण समर्पण के साथ एकाकार हो जाता है।

---

## 9.2 इकाई के उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जाएंगे कि

1. अष्टांग योग के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
  2. अष्टांग योग के विभिन्न अवस्थाओं से परिचित हो सकेंगे।
  3. अष्टांग योग के विभिन्न अंगों के महत्व के संबंध में उसके लाभ से अवगत हो सकेंगे।
  4. अष्टांग पथ के सम्बंध में विचार व्यक्त कर सकेंगे।
  5. योग के महत्व को प्रचारित व प्रसारित कर सकेंगे।
- 

## 9.3 अष्टांग योग का अर्थ और परिभाषाएँ

---

अष्टांग योग का अर्थ योग के राजा के रूप में क्यों किया जाता है अर्थात् अष्टांगयोग समस्त योग मार्गों का राजा है। अष्टांग योग शब्द का अनेक उपनिषदों में प्रयोग किया गया है। वैसे समस्त युवाओं का उद्देश्य लक्ष्य समाधि की अवस्था को प्राप्त करना है। जबकि अष्टांग योग का साधक साधना का प्रारम्भ समाधि अवस्था से ही करता है। इसलिए सभी मार्गों में श्रेष्ठ माना गया है इसीलिए इसे अष्टांग योग कहा गया है।

इस मार्ग का अवलंबन कोई भी कर सकता है अर्थात् छोटा, बड़ा, ऊंचा नीचा, निर्धन और धनी कोई भी इस मार्ग पर चल सकता है जिस प्रकार से राज्य में राज्य मार्ग पर सभी को चलने का अधिकार है वैसे ही अष्टांग योग सभी के लिए समानता का भाव समाहित किए हुए हैं।

“यः राज दिप्तो” धातु से बने दीप्ति अर्थ में प्रयोग किया जाता है। जिसका तात्पर्य है की राज योग के मार्ग के साधक को राज योग के सिद्ध होने से साधक का चित्त मल रहित हो जाने से कांति युक्त हो जाता है। जिसके परिणामतः साधक अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।

योग शिखोपनिषद में योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है।

### बोध प्रश्न

**टिप्पणी** (क) नीचे दिए हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलान कीजिए।

1. किस योग को श्रेष्ठ योग माना जाता है?

.....

.....

.....

.....

**“ रजसो रेतसो योगात् राजयोगऽति समृतः ।। ”**

अर्थात् – रजरूपी कुंडलनी का रेत रूपी शिव के साथ मिलन के योग को ही राज योग है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजयोग में जीवात्मा का ब्रह्म के साथ विलय हो जाना भी योग बतलाया गया है, जीवात्मा ब्रह्म से मिलकर उसी का अंश हो कर ऐसी अवस्था प्राप्त कर लेती है जिसमें द्वैतभाव शून्य हो जाता है। यही तो समस्त योग मार्गों का परम लक्ष्य है। इसी स्थिति में साधक के लिए समस्त दुखों से निवृत्ति हो जाती है और साधक के लिए समस्त जगत का लोप हो जाता है जिससे साधक अपने शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थिति हो जाता है। राजयोग में संयम के लिए विशेष रूप से जोर दिया गया है।

संयम के विषय में पतंजलि जी कहते हैं—

### त्रयमेकत्रसंयमः( योग सूत्र 3/4 )

अर्थात् धारणा ध्यान और समाधि के होने से संयम कहलाता है।

अतः संयम के तीन चरण धारणा, ध्यान समाधि का निरंतर अभ्यास करते रहना चाहिए जिससे साधक का चित्र निर्मल अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है। संयम के तीनों साधनों के साथ-साथ यम नियम का पालन और प्राणायाम का नियमित अभ्यास साधक को राजयोग के लिए सहायक बनाया गया है। यम नियम में के अभ्यास से बाह्य एवं आंतरिक कषाय कल्मष से रहित हो जाता है।

महर्षि पतंजलि प्राणायाम का लाभ बताते हुये कहते हैं –

### धारणासु च योग्यता मनसः (2/53)

अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से चित्त में धारणा की योग्यता उत्पन्न होती है।

प्राणायाम के अभ्यास से चित्त एक विषय पर स्थिर होने लगता है, प्राणायाम के निरंतर अभ्यास से ही क्रमशः ध्यान व समाधि अवस्था प्राप्त होती है। योग वाशिष्ठ के अनुसार—प्राणायाम के अभ्यास करने वाले साधक को राज्य से मोक्ष तक की संपदायें प्राप्त होती है। राज योग में प्राणायाम की महत्ता को इसी लिए बतलाया गया है। योग के सभी मार्गों पर चलने वाले सभी योग साधको ने राजयोग को महत्ता को स्वीकार करते है। योग की सभी मार्गों की तरह राज योग का का लक्ष्य समाधि ही है।

हठयोग साधना के हठयोगी को भी साधना राजमार्ग को प्राप्त करने की लिए करते हैं, इसीलिए स्वात्मा राम जी हठ विद्या पर उपदेश देते हुए कहते

### केवलं राजयोगाय हठ विद्योपदिष्यते।

अर्थात् – मैं इस हठ विद्या का उपदेश केवल राजयोग की प्राप्ति के लिये कर रहा हूँ।

#### बोध प्रश्न

टिप्पणी (क) नीचे दिए हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलान कीजिए।

1. संयम किसे कहते हैं?

.....  
.....  
.....

प्राणायाम के अभ्यास से चित्त में किसकी योग्यता उत्पन्न होती है?

.....  
.....  
.....

## 9.4 अष्टांग योगियों की अवस्थाएँ

शास्त्रों में चार प्रकार के राजयोगियों का वर्णन प्राप्त होता है—

1. प्रथम कल्पित

2. मधुभूमिक

3. मधुप्रतीक

4. अतिक्रान्त भावनीय

1. जो सवितर्क के समाधि का अभ्यास करता है उसे प्रथम कल्पित योगी को प्रारंभिक योग साधना करने वाला कहलाता है।

2. निवितर्क के समाधि का अभ्यासी साधक मधुभूमिक योगी कहलाता है, यह सवितर्क से थोड़ा उच्च कोटि का होता है।

3. मधुप्रतीक योगी विचारानुगत समाधि का अभ्यास करने वाला तथा इस अवस्था का साधक आनन्दानुगत अवस्था में रहता है।

4. ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त साधक अतिक्रान्त भावनीय योगी कहलाते हैं। ऐसे साधक अस्मितानुगत समाधि सिद्ध होते हैं तथा उन्हें जिससे उन्हें असंप्रज्ञात समाधि की अवस्था को प्राप्त होते हैं। अतिक्रान्त भावनीय अवस्था में आत्मा को अपने स्वरूप का भान होता है। इस अवस्था को प्राप्त साधक जब निरंतर अभ्यास में रहता है तो ऋतम्भरा प्रज्ञा के लिए साधक के चित्त से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है तो वह चित्र को कार्य पूर्ण हो जाने से प्रकृति में भेरे हो जाता है और बिना चित्त को प्रभावित किए आत्मा अकेली रह जाती है। योगिजन इसी को योग के परम लक्ष्य अर्थात् कैवल्य, जिसे मोक्ष या मुक्ति भी कहते हैं।

### बोध प्रश्न

**टिप्पणी** (क) नीचे दिए हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलान कीजिए।

2. शास्त्रों में कितने प्रकार के अष्टांग योगियों का वर्णन मिलता है?

.....  
.....  
.....

चारों प्रकार के अष्टांग योगियों के नाम लिखिए।

.....  
.....  
.....

राजयोग में कितने प्रकार के अधिकारी वर्णित किए गए हैं?

.....  
.....  
.....

### 9.4.1 योग के अधिकारी— राजयोग में तीन प्रकार के अधिकारी कहे जाते हैं—

1. उत्तम

2. मध्यम

3. अधम

1. **उत्तम कोटि** — उत्तम कोटि के साधक उन्हें कहते हैं जिन्हें केवल अभ्यास और वैराग्य के द्वारा समाधि

सिद्ध हो जाती है। उत्तम कोटि को साधना के स्तर को ध्यान में रखकर किया निर्धारण किया गया है। महर्षि पतंजलि भी अष्टांग योग में चित्तवृत्ति निरोध के मुख्य उपायों का वर्णन करते हुए कहते हैं –

### अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः 2 (1/12)

अर्थात् – चित्त की वृत्तियों का निरोध अभ्यास और वैराग्य द्वारा होता है या उत्तम कोटि के योग साधकों को मात्र ईश्वर प्राणिधान के द्वारा ही समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है। महर्षि पतंजलि कहते हैं—

### समाधि सिद्धिरीष्वरप्रणिधानात् (2/45)

अर्थात् उत्तम कोटि के साधकों के लिये कहा गया है की ईश्वर प्रणिधान से समाधि सिद्ध होती है। ऐसे साधकों को योग के अन्य अंगों का पालन किए बिना ही पूर्व जन्मों की उच्च कोटि की साधना के आधार पर सीधे समाधि की अवस्था में प्रवेश मिल जाता है।

2. **मध्यम कोटि** – इस कोटि के साधकों में साधना से सिद्धि उत्तम कोटि के साधकों की तुलना में कठिनता से सिद्ध होता है। पूर्व जन्मों के योग साधना के संस्कार इतने उच्च नहीं होते जिनसे वे योग साधना के मार्ग पर सिद्धि प्राप्त करा सकें।

महर्षि पतंजलि राजयोग में क्रिया योग का वर्णन करते हुये कहते हैं—

### “तपः स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानाति क्रियायोग (2/1)

अर्थात् – तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्राणिधान क्रिया योग है। मध्यम कोटि के साधकों को शीत-उष्ण, मान-उपमान, सुख-दुख आदि को सहने करने की आदत अपने शरीर को डालनी होती है। मन में धैर्य और सभी अवस्थाओं में चित्त को समान बनाये रखने का अभ्यास करना होता है। साथ ही आध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन और ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव रखना होता है, तभी समाधि को प्राप्त कर पाते हैं।

3. **अधम कोटि**— अधम कोटि के साधकों की श्रेणी में ऐसे साधक आते हैं जिन्होंने अब तक योग साधना का प्रारंभ भी नहीं की है, ऐसे साधकों के लिए अष्टांग योग अति आवश्यक है। क्योंकि अष्टांगिक मार्ग के द्वारा उनके शरीर मन शुद्ध और सबल हो सकेगा। जिसके बाद ही वे समाधि का लाभ प्राप्त कर सकेंगे। राजयोग की साधना में साधक की कोटि की जिस स्तर पर होगी वैसी ही उसको योग सिद्धि प्राप्त होगी।

राजयोग के अनेक साधना मार्ग अनेक नाम से जाने जाते हैं। राज योग ध्यान योग कहीं समाधि योग, कहीं आर्ष योग के नाम से जाना जाता है। महर्षि पतंजलि ने इस योग पद्धति मार्ग को अष्टांग योग के नाम से बतलाया है। यही सभी योगों में श्रेष्ठ है। योग मार्ग के साधक को अपनी स्थिति के अनुसार योग में सिद्धि प्राप्त करने के पथ पर अग्रसर हो सकता है।

### “हठ बिना राजयोगो, राजयोगं बिना हठः, न सिद्ध्यति। (ह.प्र. 276)

हठयोग के बिना राजयोग और राजयोग के बिना हठयोग में सिद्धि संभव नहीं है। ये दोनों ही योग पक्ष जीवन के दोनो पहलुओं प्रभावी होते जैसे राजयोग मानसिक पक्ष तथा हठयोग शारीरिक पक्ष है। मन द्वारा प्राण पर तथा प्राण द्वारा चित्त पर नियंत्रण ये राजयोग के द्वारा संभव होता है। राजयोग आन्तरिक शक्तियों का शोधन करता है राजयोग मोक्ष पाने का साधन है।

---

## 9.5 राजपथ

राज राजपथ का अर्थ राजमार्ग से राजमार्ग से है। राजमार्ग अर्थात् आम सड़क आम रास्ता जिसे हर कोई चल सके। जिस पर चलने में कोई असुविधा ना हो चलने में श्रद्धा हो कोई कठिनाई ना आवे। ठीक इसी तरह से भी राजयोग कभी तत्पर्य स्पष्ट होता है क्योंकि साधना का वह मार्ग जिसे योग की साधना के लिए कोई भी अपना सके और सरलता पूर्वक उस पर चलकर सफलता और प्रगति की ओर बढ़ सके यही राजयोग का राजपथ है। योग का परम लक्ष्य समाधि जिसे प्राप्त करने का सीधा रास्ता जिस पर चल कर सरलता के साथ आगे बढ़ कर प्राप्त किया जा सके उसी का नाम राजयोग है।

### 9.5.1 अष्टांग योग के अंगः

योग सूत्र में महर्षि पतंजलि में राजयोग के आठ अंगों के बारे में बताया है, जिन्हें अष्टांग योग भी कहा जाता है।

पतंजलि योग सूत्र के राजयोग के 8 अंग हैं जो निम्नलिखित हैं –

**यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोष्टावंगानि। (पतंजलि योग सूत्र 2/29)**

अर्थात् – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि राजयोग के 8 अंग हैं।

### 9.5.2 यम :

शब्द का अर्थ मृत्यु के देवता से नहीं है, यम बाह्य या सामाजिक अनुशासन का प्रतीक है। यहाँ पांच व्रत या अनुशासन की एक संज्ञा है जिसे नियमित करें उसका नाम यम रखा गया है। इसके बारे में कहा जाता है –

**यमयन्ति निर्वर्तयन्ति इति यमाः।**

अर्थात् जो हमें अवांछनीय कार्यों से बचाता है या मुक्ति दिलाता है उसे यम कहते हैं।

महर्षि पतंजलि ने 5 यम बतलाए हैं—

**अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। (पतंजलि योग सूत्र 2/30)**

अर्थात् – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यम हैं।

#### बोध प्रश्न

**टिप्पणी** (क) नीचे दिए हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलान कीजिए।

5. राजयोग को और किस नाम से जाना जाता है?

.....  
.....  
.....

महर्षि पतंजलि ने यम के कितने प्रकार बताए हैं?

.....  
.....  
.....

#### • अहिंसा—

अहिंसा में अ का अर्थ है रहित। मन से वचन से और कर्म से जीव मात्र पर प्राणी को कष्ट न देना ही अहिंसा है दूसरे शब्दों में कहें तो शत्रु भाव का त्याग कर प्रेम भावना को प्रमुख स्थान देते हुए बुराई का मुकाबला करना अहिंसा है।

**मनसा वाचा कर्मणा सर्वभूतेषु सर्वदा। (याज्ञवल्क्य संहिता)**

अर्थात् – मन, वचन, कर्म से किसी को दुःख न देना सभी के सुख की कमाना करना अहिंसा है।

महर्षि पतंजलि ने कहा है—

**अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। (2/35)**

अर्थात् —जब अहिंसा की पूर्णता और स्थिरता होने हिंसा बुद्धि दूर हो जाती है। यहां तक साधक के संपर्क में आने वाले प्राणियों की हिंसा को प्रवृत्ति दूर हो जाती है। यही अहिंसा की प्रतिष्ठा है।

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी के शब्दों में अहिंसक का अर्थ है प्रेम का पुजारी दुर्भावना से रहित। सद्भावना और विवेक बुद्धि से यदि किसी को कष्ट देना आवश्यक जान पड़े तो अहिंसा के मर्यादा के अंतर्गत उसको गुजाइश है। परमार्थ के लिए की गई हिंसा को किसी भी प्रकार अहिंसा से कम नहीं ठहराया जा सकता।

### • सत्य

जैसा देखा गया हो और अनुमान कारक बुद्धि से निर्णय लिया गया हो और सुना गया हो उसे वैसा ही व्यक्त कर देना यही सत्य का स्वरूप है। मन, वचन और कर्म में एकरूपता अर्थात् अर्थानुकूल वाणी और मन का व्यवहार होना यही सत्य कहलाता है।

महर्षि पतंजलि ने कहा है —

**“सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्। (2/36)**

अर्थात् — सत्य की प्रतिष्ठा होने पर वाणी और विचारों में क्रियाफल देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है अर्थात् ऐसा व्यक्ति जो कुछ भी बोलता है वह फलित होने लगता है अर्थात् वाकसिद्धि हो जाती है।

महाभारत में सत्य का वर्णन —

**न तव वचन सत्यं, न तव वचनं मृशा।**

**चभूतहित मत्यन्तम् तत्सत्यमिति कृष्यते।। (महाभारत)**

अर्थात् जैसी बात हो वैसा ही कर देना सत्य नहीं है और न जैसी बात हो वैसी ही कह देना भी सत्य नहीं है। जिसमें प्राणियों का अधिक हित होता है वही सत्य है।

### • अस्तेय

अस्तेय का अर्थ है — चोरी न करना। शरीर, मन और वाणी द्वारा दूसरों के द्रव्य की इच्छा न करना अस्तेय कहलाता है।

**मनसा वाचा कर्मणा परद्रव्येषु निग्रहः। (याज्ञवल्क्य संहिता)**

अर्थात् — मन, वचन, और कर्म से दूसरे के द्रव्य की इच्छा न करना ही अस्तेय है। ऐसातत्त्वदर्शी ऋषियों ने कहा है—

व्यास भाष्य में महर्षि व्यास लिखते हैं कि—

**स्तेयमशास्त्रं च पूर्वकद्रव्यारणांपरतस्वीकरणमतत्प्रतिषेध पुनरस्पृशहारूपमस्तेयमिति।**

अर्थात् शास्त्रीय ढंग से अर्थात् धर्म के विरुद्ध अन्याय पूर्वक किसी दूसरे व्यक्ति के द्रव्य इत्यादि को ग्रहण करना स्तेय है, पर वस्तु में राग का प्रतिषेध होना ही अस्तेश्य है।

योग सूत्र में अस्तेय सिद्धि के विषय में कहा है

**अस्तेयप्रतिष्ठा यां सर्वरत्नो प्रस्थानम्। 2/37**

अर्थात् अस्तेय की दृढ़ स्थिति होने पर सर्व रत्नों की प्राप्ति होती है।

ब्रह्मचर्य मन को ब्रह्म या ईश्वर परायण बनाये रखना ही ब्रह्मचर्य है। वीर्य शक्ति — की अविचल रूप में रक्षा करना या धारण करना ब्रह्मचर्य है।

महर्षि व्यास ने लिखा है —

**ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थरस्य संयमः।**

अर्थात् गुप्त इन्द्रिय (उपस्थेन्द्रिय) के संयम का नाम ब्रह्मचर्य है—

शाडिल्योपनिषद में इसकी और सूक्ष्म व्याख्या करते हुए कहते हैं।

**ब्रह्मचर्य नाम सर्वावस्थासु मनोवाक काय कर्मभिः सर्वतमेथुन त्यागः।**

अर्थात् सभी अवस्था में सर्वत शरीर, मन और वाणी द्वारा मैथुन का त्याग ब्रह्मचर्य—  
कहलाता है ब्रह्मचर्य सिद्ध कर लेने वाले साधकों के संबंध में पातंजल योग सूत्र में कहा गया है—

**ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठा या वीर्यलाभ 2/38**

अर्थात् ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा होने पर साधक को वीर्य लाभ होता है। वीर्य लाभ होने से साधना के अनुकूल गुण समूह पैदा होते हैं। जिससे योगाभ्यासी को आत्मज्ञान प्राप्त होता है।

#### बोध प्रश्न

**टिप्पणी** (क) नीचे दिए हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलान कीजिए।

6. अस्तेय के अर्थ को लिखिए।

.....  
.....  
.....  
.....  
.....

7. सत्य किसे कहते हैं ?

.....  
.....  
.....  
.....  
.....

#### • अपरिग्रह —

संचय वृत्ति का त्याग अपरिग्रह है। विषयों के अर्जन में रक्षण उनका क्षय उनके संग और उनमें हिंसादि दोष को विषयों को स्वीकार न करना ही अपरिग्रह है। इन्द्रियाणां पसंगेन दोषमृच्छत्य संशयम्।

**सन्नियम्यण तु तान्येछव ततरु सिद्धिं नियच्छित।। मनुस्मृति 2/13**

अर्थात् इन्द्रियों के विषयों में आशक्त होने से व्यक्ति निःसंदेह दोषी होता है परंतु इन्द्रियों को वश में रखने से विषयों के भोग से पूर्ण विरक्त हो जाता है। ऐसे आचरण से अपरिग्रह की सिद्धि होती है।

पूर्ण अपरिग्रह को प्राप्त साधक में काल — ज्ञान संबंधी सिद्धि आ जाती है, पातंजल योग सूत्र का इस संबंध में कथन है—

**अपरिग्रहस्थैर्य जन्मदृक्कथन्ता सम्बोध। 2/39**

अर्थात् अपरिग्रह के स्थिर होने से जन्म—जन्मान्तर का ज्ञान प्राप्त होता है। इसका अर्थ हुआ कि पूर्वजन्म में हम क्या थे, कैसे थे। इस जन्म की परिस्थितियाँ ऐसी क्यों हुई एवं हमारा भावी जन्म कब कहाँ, कैसा होगा। इस ज्ञान का उदय होना अपरिग्रह साधना द्वारा ही सम्भव होता है।

### 9.5.3 नियम—

नियम का तात्पर्य आन्तरिक अनुशासन से है। यम व्यक्ति के जीवन को सामाजिक एवं बाह्य क्रियाओं के सामंजस्यपूर्ण बनाते हैं और नियम उसके आन्तरिक जीवन को अनुशासित करते हैं। नियमों के अन्तर्गत शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणीधान आते हैं। अपने जीवन में इस अनुशासन को उत्पन्न और विकसित करना आवश्यक है। योग सूत्र में कहा है

#### शौचसन्तोषतपस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानि नियमाः 2/32

अर्थात्— शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान ये 5 नियम हैं

**क. शौच—** शौच का अर्थ है परिशुद्धि, सफाई, पवित्रता न खाने लायक चीज को न खाना, निन्दितों के साथ संग न करना और अपने धर्म में रहना शौच है। शौच मुख्यतः दो हैं बाह्य और आभ्यान्तर।

शौच या पवित्रता दो प्रकार की कही गई है।

1. बाह्य शौच

2. आभ्यान्तर शौच।

**1. बाह्य शौच—** जल व मिट्टी आदि से शरीर की शुद्धि, स्वार्थ त्याग, सत्याचरण से मानव व्यवहार की शुद्धि, विद्या व तप से पंचभूतों की शुद्धि, ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि ये सब बाह्य शुद्धि कहलाती है।

**2. आन्तरिक शौच** अहंकार, राग, द्वेष, ईर्ष्या, काम, क्रोध आदि मलों को दूर करना — आन्तरिक पवित्रता कहलाती है।

योग सूत्र में इसके फल के विषय में कहा है कि

#### शौचात्स्वागजुप्सा परैरसंसर्गः 2/40

अर्थात् शौच की स्थिरता होने पर निजी अंग समूह के प्रति घृणा और परदेह संसर्ग को अनिच्छा होती है।

### ख. सन्तोष —

सन्तोष नाम सन्तुष्टि का है। अन्तःकरण में सन्तुष्टि व भाव उदय हो जाना ही सन्तोष है।

अर्थात्— अत्यधिक पाने की इच्छा का अभाव ही सन्तोष है। मनुस्मृति कहती है सन्तोष ही सुख का मूल है। इसके विपरित असन्तोष या तृष्णा ही दुख का मूल है।

योग सूत्र में सन्तोष का फल बताते हैं

#### सन्तोषादनुत्तमसुखलाभ 2/42

अर्थात् चित्तम में सन्तोष भाव दृढ़ प्रतिष्ठित हो जाने पर योगी को निश्चय सुख यानी आनन्दत प्राप्त होता है।

### ग. तप—

अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और योग्यता के अनुसार स्वधर्म का पालन करना और उसके पालन में जो शारीरिक या मानसिक अधिक से अधिक कष्ट प्राप्त हो, उसे सहर्ष करने का नाम ही तप है। तपो द्वन्दसहनम् सब प्रकार के द्वन्दों को सहन करना तप है। तप के बिना साधना, सिद्धि नहीं होती है, अतः योग साधना के काल में सर्दी, गर्मी, भूख प्यास, आलस तथा जड़तादि द्वन्दों को सहन करते हुए अपनी साधना में उसका रहना तप कहा जाता है।

योग सूत्र में तप का फल बताते हुए कहा है —

#### कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयान्तफपस 2/43

अर्थात् तप के प्रभाव से जब अशुद्धि का नाश हो जाता है तब शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है। तप के द्वारा क्लेशों तथा पापों का क्षय नाश हो जाने पर शरीर में तो अणिमा महिमादि सिद्धि आ जाती है, और

इन्द्रियों में सूक्ष्मता अर्थात् दूर दर्शन, दूर श्रवण दिव्य गन्ध दिव्य रसादि सूक्ष्म विषयों को ग्रहण करने की शक्ति भी आ जाती है। अतः योगी के लिए तप साधना नितांत आवश्यक है।

#### घ. स्वाध्याय –

स्वाध्याय का तात्पर्य है आचार्य विद्वान तथा गुरुजनों से वेद उपनिषद् दर्शन आदि मोक्ष शास्त्रों का अध्ययन करना। यह एक अर्थ है। स्वाध्याय का दूसरा अर्थ है स्वयं का अध्ययन करना यह भी स्वाध्याय ही है।

योग भाष्य 2/1 में महर्षि व्यास जी ने लिखा है।

**स्वाध्याय प्रणव श्रीरुद्रपुरुषसूक्तसदि**

**मन्त्राणां जपमोक्षशास्त्राध्ययश्च॥ योग भाष्य 2/1**

अर्थात् प्रणव अर्थात् ओंकार मन्त्र का विधि पूर्वक जप करना रुद्र सूक्त और पुरुषसूक्त – आदि वैदिक मन्त्रों का अनुष्ठान पूर्व जप करना तथा दर्शनोपनिषद् एवं पुराण आदि आध्यात्मिक मोक्ष शास्त्रों का गुरुमुख से श्रवण करना अर्थात् अध्ययन करना स्वाध्याय है।

पं० श्री राम शर्मा के अनुसार अच्छी पुस्तकें जीवन देव प्रतिमाएँ हैं, जिनकी आराधना से तत्काल प्रकाश और उल्लास मिलता है।

पातंजल योग सूत्र में स्वाध्याय के फलों का वर्णन किया है।

**स्वाध्यादिष्टा देवतासम्प्रयोग 2/44**

अर्थात् स्वाध्याय से इष्टदेवता की भलीभांति प्राप्ति (साक्षात्कार) हो जाती है। – शास्त्राभ्यास, मंत्रजप और अपने जीवन का अध्ययन रूप स्वाध्याय के प्रभाव से योगी जिस इष्ट देव का दर्शन करना चाहता है, उसी का दर्शन हो जाता है।

#### ड. ईश्वर प्रणिधान –

ईश्वर की उपासना या भक्ति विशेष को ईश्वर प्रणिधान कहते हैं।

परमेश्वर के निर्मित अर्पित कर देना ईश्वर प्रविधान है। अथर्ववेद कहता है है वरणीय परमेश्वर। हम जिस शुभ संकल्प इच्छा से आप की उपासना में लगे हुए हैं आप उसमें पूर्णतः प्रदान करें सिद्धि दें और हमारे समस्त कर्म तथा कर्मफल आप के निमित्त अर्पित हैं, इसी का नाम ईश्वर प्रणिधान है।

योग सूत्र के 1/23 सूत्र में ईश्वरप्रणिधानाद्वा

**समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्। योग सूत्र के 1/23**

अर्थात् ईश्वर प्राणीधान से समाधि की सिद्धि हो जाती है। ईश्वर प्रणिधान से ईश्वर की अनुकम्पा होती है। उस अनुभव से योग के समस्त अनिष्ट दूर हो जाते हैं तब योग सिद्धि में नहीं होता, योगी शीघ्र ही योगसिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

#### बोध प्रश्न

टिप्पणी (क) नीचे दिए हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलान कीजिए।

8. नियम के प्रकार व उनके नाम लिखिए।

.....  
.....  
.....  
.....

शौच के प्रकारों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

#### 9.5.4 आसन—

आसन शब्द संस्कृत भाषा के अस धातु से बना है जिनका दो अर्थ है। पहला है सीट बैठने का स्थान दूसरा अर्थ शारीरिक अवस्था शरीर मन और आत्मा जब एक संग और स्थिर हो जाता है, उससे जो सुख की अनुभूति होती है वह स्थिति आसन कहलाती है। तेजबिन्दुपनिषद में आसन के विषय में कहा है —

**सुखेनैव भवेत् यस्मिन्न जस्रं ब्रह्मचिन्तम**

अर्थात् जिस स्थिति में बैठकर सुखपूर्वक निरन्तर परमब्रह्म का चिन्तन किया जा सके उसे ही आसन समझना चाहिए। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है —

योग सूत्र के अनुसार —

**स्थिरसुखमासनम् 2/46 योऽसू०**

अर्थात् स्थिर और सुख पूर्वक बैठना आसन कहलाता है। —

#### 9.5.5 प्राणायामः

प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है। प्राण एवं आयाम।

प्राण का अर्थ होता है, जीवनी शक्ति आयाम के दो अर्थ है। पहला— नियन्त्रण करना या रोकना तथा दूसरा लम्बा या विस्तार करना।

प्राणवायु का निरोध करना प्राणायाम कहलाता है।

योग सूत्र में प्राणायाम को इस प्रकार प्रतिपादित किया है —

**तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद प्राणायामः 2/49**

अर्थात् उसकी (आसनों की) स्थिरता होने पर श्वास—प्रश्वास की स्वाभाविक गति के —नियमन करना प्राणायाम है।

#### 9.5.6 प्रत्याहार—

पतंजलि योग में प्राणायाम के पश्चात् प्रत्याहार का कथन एवं विवेचन उसकी उपयोगिता की दृष्टि से किया गया है। प्रत्याहार का सामान्य अर्थ होता है, पीछे हटना उल्टा होना, विषयों से विमुख होना। इसमें इन्द्रिया अपने बहिर्मुख विषयों से अलग होकर अन्तर्मुख हो जाती है, इसलिए इसे प्रत्याहार कहा गया है। इन्द्रियों के संयम को भी प्राणायाम कहते हैं।

**त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद के अनुसार**

**चित्तिस्थोन्तुर्मुखी भाव प्रत्याहारस्तु सत्तयम**

अर्थात् चित्त का अन्तर्मुखी भाव होना ही प्रत्याहार है।

महर्षि पतंजलि ने प्रत्याहार का लक्षण निम्न प्रकार से प्रतिपादित किया है।

**स्वथविषयासम्प्रयोगे चित्तम् स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।**

अर्थात् अपने विषयों के साथ इन्द्रियों का संबंध न होने पर चित्त के स्वरूप का अनुकरण करना अर्थात् चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाना प्रत्याहार कहलाता है।

प्रत्याहार का फल बतलाते हुए महर्षि पतंजलि लिखते हैं—

ततः परमा वश्यततेन्द्रियाणाम 2/55 यो० सू०

अर्थात् उस प्रत्याहार से इन्द्रियों की सर्वोत्कृष्टा वश्यता होती है अर्थात् प्रत्याहार से इन्द्रियां एकदम वशीभूत हो जाती हैं।

अन्तरंग साधन

महर्षि पतंजलि ने निम्न तीन अन्तरंग साधन बताये हैं।



### 9.5.7 धारणा—

महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग के अन्तरंग यह योग का छठा — अंग है। मन (चित्त) को एक विशेष स्थान पर स्थिर करने का नाम धारणा है। यह वस्तुतः मन की स्थिरता का घोटक है।

हमारे सामान्य दैनिक जीवन में विभिन्न प्रकार के विचार आते जाते रहते हैं। दीर्घकाल तक स्थिर रूप से वे नहीं टिक पाते और मन की सामान्य एकाग्रता केवल अल्प समय के लिए ही अपनी पूर्णता में रहती है। इसके विपरीत धारणा में सम्पूर्णतः चित्त की एकाग्रता की पूर्णता रहती है।

महर्षि पतंजलि द्वारा धारणा का निम्न लक्षण बतलाया गया है —

देशबन्धश्चतस्य धारणा। 3/1 यो० सू०

अर्थात् ( बाहर या शरीर के भीतर कहीं भी ) किसी एक स्थान विशेष (देश) में चित्त को — बांधाना धारणा कहलाता है।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि जब किसी देश विशेष में चित्त की वृत्ति स्थिर हो जाती है और तदाकार रूप होकर उसका अनुष्ठान होने लगता है तो वह धारणा कहलाता है।

### 9.5.8 ध्यान—

धारणा की उच्च अवस्था ध्यान है ध्यान शब्द की उत्पत्ति ध्येचित्तायाम् धातु — से होती है जिसका अर्थ होता है, चिन्तन करना। किन्तु यहाँ पर ध्यान का अर्थ चिन्तन करना नहीं अपितु चिन्तन का एकाग्रिकरण अर्थात् चित्त को एक ही लक्ष्य पर स्थिर करना।

सामान्यतः ईश्वर या परमात्मा में ही अपना मनोनियोग इस प्रकार करना कि केवल उसमें ही साधक निगमन हो और किसी अन्य विषय की ओर उसकी वृत्ति आकर्षित न हो ध्यान कहलाता है। योग शास्त्रों के अनुसार जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाये उसी में चित्त का एकाग्र से जाना अर्थात् केवल ध्येय मात्र में एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह चलना, उसके बीच में किसी दूसरी वृत्ति का नहीं उठना ध्यान कहलाता है। महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र में ध्यान को इस प्रकार प्रतिपादित किया है।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम 3/2 यो० सू०

अर्थात् — इस देश में ध्येय विषयक ज्ञान या वृत्ति का लगातार एक जैसा बना रहना ध्यान है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिसमें धारणा की गई उसमें चित्त जिस वृत्ति मात्र से ध्येय में लगता है, वह वृत्ति जब इस प्रकार समान प्रवाह से लगातार उदित होता रहे कि कोई दूसरी वृत्ति बीच में न आये उसे ध्यान कहते हैं।

### 9.5.9 समाधि —

अष्टांग योग में समाधि का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है। साधना की यह चरम अवस्था है, जिसमें समाधि स्वयं योगी का बाह्य जगत् के साथ संबंध टूट जाता है। यह योग की एक ऐसी दशा है, जिसमें योगी चरमोत्कर्ष की प्राप्ति कर मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। और यही योग साधना का लक्ष्य है। अतः मोक्ष प्राप्ति से पूर्व योगी को समाधि की अवस्था से गुजरना पड़ता है। योग शास्त्र में समाधि को मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन बताया गया है, योग भाष्य में सम्भवतः इसलिए योग को समाधि कहा गया है। यथा योगः समाधि पातंजलि योगसूत्र में चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है। योगश्चित्तवृत्ति निरोध समाधि अवस्था में भी योगी की समस्त प्रकार की चित्त वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं।

महर्षि पतंजलि ने समाधि का स्वरूप निम्न प्रकार से बताया है—

**तदेवार्थमात्रनिर्भासंस्वरूपशून्यमिव समाधिः । ३/३ योऽसू०**

अर्थात् जब (ध्यान में) केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वथप शून्य सा हो जाता है, तब वह (ध्यान ही) समाधि हो जाता है।

### बोध प्रश्न

**टिप्पणी** (क) नीचे दिए हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलान कीजिए।

9. प्राणायाम कितने शब्दों से मिलकर बना है?

.....

अंतरंग साधनों के नाम लिखिए।

.....

महर्षि पतंजलि के अनुसार समाधि का स्वरूप बताइए।

.....

.....

## 9.6 सारांश

प्रस्तुत अध्याय में योग के विभिन्न पद्धतियों के अंतर्गत आने वाले महत्वपूर्ण योग पद्धति अष्टांग योग के संबंध में विस्तार पूर्वक चर्चा की गई। योग एक विधा नहीं अपितु विज्ञान है योग शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास का एक सशक्त माध्यम है। हमारे ऋषियों एवं मनीषियों ने योग के माध्यम से तन एवं मन की शुद्धि के अनेकों सर्वोत्तम उदाहरण मानव मात्र के कल्याणार्थ प्रस्तुत किए हैं। जिस प्रकार हठ योग द्वारा शारीरिक शुद्धि, भक्ति योग द्वारा आध्यात्मिकता का विकास होता है उसी प्रकार अष्टांग योग द्वारा मानसिक शुद्धि की प्राप्ति की जाती है। इस अध्याय में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि के माध्यम से तन मन की शुद्धि कैसे होती है तथा इसके द्वारा मानसिक शांति कैसे प्राप्त की जा सकती है, इसका विवेचन विभिन्न विद्वानों के मतों के माध्यम से किया गया है।

## 9.7 अभ्यास के प्रश्न

1. अष्टांग योग क्या है? इसके विभिन्न अवस्थाओं की विवेचना कीजिए।
2. अष्टांग योग के विभिन्न अंगों का वर्णन कीजिए?
3. महर्षि पतंजलि के योगदान का वर्णन कीजिए।

4. अष्टांग योग किसके द्वारा रचित है? वर्तमान समय में अष्टांग योग की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।

---

## 9.8 चर्चा के बिन्दु

---

1. पतंजलि के अष्टांग योग पर चर्चा कीजिए।

---

## 9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

2. अष्टांग योग
3. धारणा, ध्यान और समाधि के होने से संयम होता है।
4. धारणा की योग्यता
5. चार प्रकार के
6. प्रथम कल्पित रोधुभूमिक मधुप्रतीक अतिक्रान्त भावनीय
7. तीन प्रकार के
8. अष्टांग योग
9. पांच प्रकार के यम
10. चोरी ना करना। शरीर, मन और वाणी द्वारा दूसरों के द्रव्य की इच्छा ना करना अस्तेय कहलाता है।
11. जैसा देखा गया हो और अनुमान कारक बुद्धि से निर्णय लिया गया हो और सुना गया हो उसे वैसा ही व्यक्त कर देना यही सत्य का स्वरूप है। मन, वचन और कर्म में एकरूपता अर्थात् अर्थानुकूल वाणी और मन का व्यवहार होना यही सत्य कहलाता है।
12. नियम पांच प्रकार के होते हैं। शौच, संतोष तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान
13. बाह्य शौच आभ्यांतर शौच
14. प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है। प्राण आयाम
15. धारणा ध्यान एवं समाधि
16. जब (ध्यान में) केवल ध्येय मात्र की प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वधय शून्य सा हो जाता है, तब वह समाधि हो जाता है।

---

## 9.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

1. सिन्हा, जे. (2010) – भारतीय दर्शन. दिल्लीरू मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।
2. हिरियन्ना, एम. (2018) – भारतीय दर्शन की रूपरेखा. नई दिल्लीरू राजकमल प्रकाशन।
3. नेमिचन्द्र (Ed) (1975) – कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्यरचित योगशास्त्र. दिल्ली: श्री निर्ग्रंथ साहित्य प्रकाशसंघ।
4. शर्मा, आर. के. एवं दुबे एस. के. (2017) – योग शिक्षा. आगरारू राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड।
5. शर्मा, आर.के. एवं दुबे, एस. (2016) – योग शिक्षा. आगरारू राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड।
6. शर्मा, सी. (2019) – भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन. दिल्लीरू मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।

---

## इकाई 10    ज्ञान योग, भक्ति योग एवं कर्म योग

---

### इकाई की रूपरेखा

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 इकाई के उद्देश्य
- 10.3 ज्ञान का अर्थ एवं स्वरूप
- 10.4 ज्ञान योग के लक्षण
- 10.5 ज्ञान योग साधना के चरण
  - 10.5.1 बहिरंग साधन
  - 10.5.2 अंतरंग साधन
- 10.6 भक्ति योग
- 10.7 भक्त के भेद
  - 10.7.1 आर्त भक्त
  - 10.7.2 जिज्ञासु भक्त
  - 10.7.3 अर्थार्थी भक्त
  - 10.7.4 ज्ञानी भक्त
- 10.8 नवधा भक्ति
  - 10.8.1 श्रवण भक्ति
  - 10.8.2 कीर्तन भक्ति
  - 10.8.3 स्मरण भक्ति
  - 10.8.4 पाद सेवन भक्ति
  - 10.8.5 अर्चन भक्ति
  - 10.8.6 वंदन भक्ति
  - 10.8.7 दास्य भक्ति
  - 10.8.8 सांख्य भक्ति
  - 10.8.9 आत्म निवेदन भक्ति
- 10.9 भक्ति के भेद
  - 10.9.1 रागात्मिका भक्ति
  - 10.9.2 पराभक्ति
- 10.10 कर्म योग
- 10.11 कर्म एवं अवधारणा
- 10.12 कर्म के प्रकार
  - 10.12.1 विहित कर्म
  - 10.12.2 निषिद्ध कर्म

- 10.13 कर्म योग की परिभाषाएँ
- 10.14 कर्म योग साधना
  - 10.14.1 कार्त्तापन का त्याग
  - 10.14.2 कर्मफल का त्याग
  - 10.14.3 कर्म तथा कर्मफल का ईश्वरार्पण
  - 10.14.4 यज्ञ कर्म
- 10.15 कर्मयोग की फलश्रुतियाँ
  - 10.15.1 कर्म बन्धन से मुक्ति
  - 10.15.2 परमात्मा की प्राप्ति
  - 10.15.3 सच्चिदानन्द की प्राप्ति
  - 10.15.4 जन्म रूप भव बन्धन से मुक्ति
- 10.16 सारांश
- 10.17 अभ्यास के प्रश्न
- 10.18 चर्चा के बिन्दु
- 10.19 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 10.20 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

## 10.1 प्रस्तावना

---

शास्त्रों में अनेक प्रकार के योग मार्गों के बारे में बताया गया है। इन समस्त मार्गों को मुख्य उद्देश्य मनुष्य को उसके परम लक्ष्य तक पहुंचाना ही है। जिस तरह अनेकों नदियां अंत में अपने अलग अलग मार्गों से बहती हुई अंत में सागर में मिल जाती हैं वैसे ही योग की विभिन्न धाराओं का मूल लक्ष्य कैवल्य की प्राप्ति ही है।

दिव्य चेतना के विकास की चरम अवस्था मानव जीवन का चरम उद्देश्य है। साधारण शब्दों में इसे आत्मज्ञान, आत्मबोध, मोक्ष या अपवर्ग भी कहा जाता है। मोक्ष प्राप्त करने के मार्गों में सर्वाधिक साहस की माँग करने वाली धारा 'ज्ञानयोग' है।

भक्ति योग का मार्ग भाव प्रधान साधकों के लिए अधिक लाभकारी माना गया है। भक्ति मार्ग में भक्ति योग के उपासक या साधक का मन एवं चित्त एकाग्र हो जाता है। यह मार्ग अत्यधिक सरल होने के कारण जनसाधारण में लोकप्रिय एवं एक सरल मार्ग है। अच्छे कर्म का फल अच्छा बुरे कर्म का फल बुरा ही प्राप्त होता है। कर्म का संबंध मानव मात्र से आजीवन जुड़ा रहता है यदि जीवन है तो मनुष्य का जीवन कर्म के साथ सदा ही जुड़ा रहता है मानव जीवन बिना कर्म के एक पल भी गतिमान नहीं हो सकता। प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत ज्ञान योग, भक्ति योग एवं कर्म योग का विस्तृत वर्णन किया गया है।

---

## 10.2 इकाई के उद्देश्य

---

इस अध्याय के अध्ययन के उपरान्त हम इस योग्य हो जाएंगे –

1. ज्ञान योग के संबंध में छात्र जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. ज्ञान योग साधना के विभिन्न चरणों एवं ज्ञान योग के लक्षणों से भली भांति परिचित हो सकेंगे।
3. भक्ति योग के अर्थ एवं उसके प्रकार के विषय से अवगत हो सकेंगे।

4. भक्त एवं भक्ति के भेद को शिक्षार्थी समझ सकेंगे।
5. कर्म योग के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
6. कर्म भेद एवं उनकी फलश्रुतियों की अवधारणा को समझ सकेंगे।
7. ज्ञान योग, भक्ति योग एवं कर्म योग के मध्य विभेद को समझ सकेंगे।

### 10.3 ज्ञान का अर्थ एवं स्वरूप

ज्ञान, यथार्थतः वह है जिसके द्वारा व्यष्टि व समष्टि के वास्तविक स्वरूप का बोध होता है। ज्ञान शब्द संस्कृत व्याकरण के 'ज्ञ' धातु से बना है जिसका अभिप्राय है— साक्षात् अनुभव, जानना, बोध, अथवा प्रकाश। प्रकारान्तर से यह किसी तत्व की गहराई में पहुँचकर जानने का प्रयास करना एवं साक्षात्कार करना है। साधारण बोलचाल की भाषा में कहा जाए तो किसी वस्तु अथवा विषय के स्वरूप का वैसा ही अनुभव करना ही पूर्ण ज्ञान है। उदाहरणार्थ कि यदि हमें दूर से पानी दिखाई दे रहा है और निकट जाने पर भी हमें पानी ही मिलता है तो कहा जाएगा उस जगह पानी होने का वास्तविक ज्ञान हुआ।

“ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते” तथा, अर्थात् जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि इंधन को भस्म कर देती है, वैसे ही ज्ञान रूपी अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्म कर देती है।

ज्ञान पर आधारित योगसाधना पद्धति को ज्ञानयोग की संज्ञा दी जाती है, यह योग का बौद्धिक और दार्शनिक पक्ष है।

ज्ञानयोग के सिद्धांत के अनुसार आत्मा आनंदस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, सत्य, कूटस्थ, नित्य, शुद्ध है। अपने वास्तविक रूप में वह ब्रह्म ही है। ब्रह्म के अतिरिक्त इस संसार में अन्य किसी की सत्ता नहीं है। यह समस्त जगत् उसी अद्वितीय तत्व में स्थित होकर प्रकाशित हो रहा है।

ब्रह्म स्वयं प्रकाशवान्, अनन्त, अखंड, अनादि, चेतन स्वरूप तथा आनन्दमय है, जिस प्रकार एक ही अग्नि विभिन्न रूपों में प्रकट होती है, उसी प्रकार समस्त जीवों की अन्तरात्मा एक ही ब्रह्म की नाना रूपों में अभिव्यक्ति है। ज्ञानयोग का उद्देश्य वही है जो भक्तियोग और राजयोग का है किन्तु प्रक्रिया भिन्न है। यह योग के दृढ़ साधकों के लिए है उनके लिए जो न तो रहस्यवादी है, न भक्तिमान्, अपितु बौद्धिक है।

ज्ञानयोग विशुद्ध बुद्धि के द्वारा ईश्वर साक्षात्कार अथवा आत्म साक्षात्कार का अपना मार्ग प्रशस्त स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार उसे सभी पुरानी मूर्तियों को सभी पुराने विश्वासों और करता है।

अन्धविश्वासों को, और दैहिक या पारलौकिक सभी कामनाओं को निकाल फेंकने हेतु तत्पर रहना चाहिए और केवल मोक्ष लाभ के लिए कृतनिश्चय होना चाहिए क्योंकि ज्ञान के बिना मोक्ष लाभ नहीं हो सकता। स्वामी जी के अनुसार जो ज्ञानी बनना चाहे उसे सर्वप्रथम भय से मुक्त होना चाहिए, जब तक — किसी बात को जान न लो उस पर विश्वास न करे, ज्ञानी का ध्यान दो प्रकार का होता है एक, हर ऐसी वस्तु से विचार हटाना, और उसको अस्वीकार करना जो हम नहीं है, दूसरा केवल उसी पर दृढ़ रहना जो कि वास्तव में हम है।

जब तुम अयथार्थ छोड़ दोगे तो यथार्थ आत्म तत्व ही शेष रह जायेगा, और वह है आत्मा एक सच्चिदानंद परमात्मा। अभी अज्ञान की परत पर चढ़ी परत ही उसे हमारी दृष्टि से ओझल किये हुये है, वह सदैव वही रहता है। एक सच्चे विवेकी को, विवेक की सुदूरतम सीमाओं तक निर्भयता पूर्वक इसका अनुसरण करना चाहिए।

जीवन की किसी भी समस्या का सामना करने से ज्ञानयोगी भयभीत नहीं होता, वह जीवन के सभी दुःखात्मक एवं सुखात्मक पक्षों के लिए तैयार रहता है। यह तो मृत्यु को जीवन का अभिन्न अंग मानकर जन्म एवं मृत्यु से पार जाने के लिए संकल्पित रहता है।

ज्ञानयोगी कहता है— जो मिथ्या है उसे अस्वीकार करो और अपने सक्षम विवेक से सत्य की तलाश करो जो भी इस कठिन पथ का अनुसरण करने का प्रयास करता है। उसके पास अतिमानवीय मानसिक बल होना चाहिए, जिस प्रकार एक लचीली डाली हवा के स्पर्श से झुक जाती है ठीक उसी प्रकार उसका शरीर उसके उच्च विचारों के निर्देश के सामने झुक जाता है।

सामान्य आदमी तो अपनी मानवीय दुर्बलताओं के फलस्वरूप ही अपने कार्यों को, अपने, आदर्शों और

चेष्टाओं से भिन्न पाता है। शरीर ज्ञान को अलग करना बड़ा कठिन होता है, कोई हजारों बार दुहरा सकता है कि वह शरीर नहीं आत्मा है परन्तु सिर्फ थोड़ा सिरदर्द ही पर्याप्त है जो सारे विचारों को शरीर पर केन्द्रित कर देता है।

---

## 10.4 ज्ञानयोग के लक्षण

---

1. एक सच्चे ज्ञानयोगी के लक्षण मुख्यतः इस प्रकार है, वह ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ कामना नहीं करता है। उसकी सभी इन्द्रियाँ पूर्ण नियंत्रण में रहती हैं। वह चुपचाप सभी कष्ट सहन कर सकता है।
2. उन्मुक्त आकाश के नीचे नग्न वंसुधरा पर उसकी शय्या हो या वह राजमहल में निवास करे, वह समान रूप से संतुष्ट रहता है।
3. उसका दृढ़ विश्वास होता है कि ब्रह्म के अतिरिक्त सब मिथ्या है।
4. उसे मुक्ति की प्रबल इच्छा होती है। प्रबल इच्छा शक्ति द्वारा वह अपने मन को उच्चतर वस्तुओं पर दृढ़ रखता है।

---

## 10.5 ज्ञानयोग साधना के चरण

---

ज्ञानयोगी के अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने हुते प्रथमतः शरीर एवं मन की विशेष पात्रता की आवश्यकता होती है। इसीलिए ज्ञानयोग को प्रमुख दो चरणों में विभाजित किया गया है।

- बहिरंग साधन
- अन्तरंग साधन

बहिरंग साधनों के अन्तर्गत उन सोपानों का समावेश है जो कि ज्ञानयोग की उच्चश्रेणी की साधना (अंतरंग) हेतु पात्रता सम्बन्धी शर्तों को पूरा करती है। यह प्रारम्भिक तैयारी है, ज्ञानयोग के उच्च सोपानों की साधना के लिए।

### 10.5.1 बहिरंग साधन

बहिरंग साधनों के अर्न्तगत निम्न चार प्रमुख चरण बताये गये हैं।

- विवेक
- वैराग्य
- षट्सम्पत्ति—
- मुमुक्षुत्व

पहला साधन है विवेक, मानवीय जीवन धारा को आमूल परिवर्तित कर देने वाली चमत्कारिक शक्ति है यह, जिसने भी विवेक का सहारा लिया उसका कभी पतन नहीं हो सकता, वह कुशल—सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता है। विवेक का तात्पर्य है— नित्यानित्य वस्तु का ज्ञान,

**‘नित्यवस्त्वेकं ब्रह्म तद्व्यतिरिक्तं सर्वमनित्यम् अयमेव नित्यानित्यवस्तु विवेक तत्त्वोद्घ ॥**

अर्थात् नित्य वस्तु (शाश्वत) एकमात्र ब्रह्म ही है, ब्रह्म के अतिरिक्त समस्त जगत अनित्य, नाशवान है यह विवेचन दृष्टि विवेक कहलाती है।

### ● वैराग्य

वैराग्य का अभिप्राय है इहलौकिक भोग—ऐश्वर्यों से लेकर पारलौकिक दिव्य स्वर्गीय सुख भोगों को क्षणभंगुर मानकर उनके प्रति भोगेच्छा का पूर्णतया परित्याग कर देना।

## यथा (इह स्वर्गभोगेषु इच्छाराहित्यम् ।)

● **षट्सम्पत्ति** – षट्सम्पत्ति का तात्पर्य निम्न 6 प्रकार के साधनों से है।

1. शम 2. दम 3. उपरति 4. तितिक्षा 5. श्रद्धा 6. समाधान

### 1. शम

शम का तात्पर्य है— भीतरी इन्द्रिय (मन) का निग्रह कर लेना, यथा—शमो नाम आन्तरिन्द्रियनिग्रहः, मन के निग्रह से ही शरीरेन्द्रिय का निग्रह संभव होता है।

### 2. दम

चक्षुरादि इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटा लेना अथवा निग्रह कर लेना श्दमश् है।

### 3. उपरति

उपरति का तात्पर्य यहां विरत हो जाना है। अर्थात् जगत की किसी भी वस्तु में आसक्ति का न होना उपरति है। व्यक्त विषयों में पुनः आसक्ति न होना भी उपरति है।

### 4. तितिक्षा

समस्त द्वन्दों को सहन करते हुये भी अपने ध्येय या लक्ष्य वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहना तितिक्षा है।

‘शीतोष्ण दुःखादि सहिष्णुत्वम्’

अर्थात् शीत, उष्ण, सुख—दुख, मानें— अपमान आदि इन्दों को धैर्यपूर्वक सहन कर लेना ही तितिक्षा है।

### 5. श्रद्धा

#### गुरुवेदान्तवाक्यादिषु विश्वासः श्रद्धा

अर्थात् — वेद, वेदान्त, शास्त्र, गुरुवाक्यों में दृढ़ निष्ठा एवं अटल आस्था विश्वास का नाम श्रद्धा है।

### 6. समाधान

चित्त की एकाग्रता का नाम समाधान है। अनेक प्रकार के मल, विक्षेप, आवरणों के कारण चित्त चंचल बना रहता है। इनके निवारण हेतु इनका समाधान आवश्यक है।

चित्त की एकाग्रता का नाम समाधान है। अनेक प्रकार के मल, विक्षेप, आवरणों के कारण चित्त चंचल बना रहता है। इनके निवारण हेतु इनका समाधान आवश्यक है।

### ● मुमुक्षुत्व

आध्यात्मिक, आधिभौतिक, अधिदैविक, त्रितापों से समस्त इस संसार से तट कर मोक्ष रूप अमृतपद को प्राप्त करने की प्रबलतम इच्छा मुमुक्षुत्व है। संसार की अनित्यता का ज्ञान होने पर उत्पन्न वैराग्य के कारण अक्षयपद प्राप्ति की उत्कट इच्छा की मुकुक्षुत्व है।

#### 10.5.2 अन्तरंग साधनः—

अन्तरंग साधन के तीन प्रकार बताये गए हैं। जो निम्नवत है—

1. श्रवण 2. मनन 3. निदिध्यासन

### 1. श्रवण

गुरु मुख से तत्त्वज्ञान के संबन्ध में निश्चयात्मक ज्ञान का श्रवण करना इसका अभिप्राय है। इस प्रकार संशय निवृत्ति हेतु गुरुमुख से ब्रह्मात्मा के विषय में श्रवण करना होता है।

## 2. मनन

ब्रह्मविद् गुरु के मुख से ब्रह्म के विषय में श्रवण किये हुये विषय को अन्तःकरण में ठीक-ठीक रूप में धारण कर लेना, निश्चय कर लेना मनन कहलाता है। मनन से अस्पष्ट विषय भी स्पष्ट हो जाता है।

## 3. निदिध्यासन

निदिध्यासन का अर्थ है साक्षात्कार या अनुभूति, शरीर से लेकर बुद्धि पर्यन्त जितने भी जड़ पदार्थ हैं उनमें भिन्नत्व की भावना को तिरोहित कर एकमात्र ब्रह्मभाव की अनुभूति निदिध्यासन की चरम परिणति है। यही ज्ञानयोग साधना की भी चरम उपलब्धि अथवा परम लक्ष्य की प्राप्ति है। इस अवस्था में साधक परमतत्त्व के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

### बोध प्रश्न

टिप्पणी (क) नीचे दिए हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलान कीजिए।

1. ज्ञान योग के दो लक्षण लिखिए।

.....  
.....  
बहिरंग साधन के चरणों के नाम लिखिए।

2. अंतरंग साधनों के प्रकार बताइए।

.....  
.....

## 10.6 भक्ति योग

शिक्षार्थी भक्ति शब्द से निश्चित परिचित होंगे आपने-अपने घर के मन्दिर में, उपासना गृहों में तीर्थों में लोगों को पूजा पाठ करते देखा होगा। भारतीय चिन्तन में ज्ञान तथा कर्म के साथ भक्ति को कैवल्य प्राप्ति का साधन माना है। आपको कुछ प्रश्न अवश्य उत्तर जानने के लिए प्रेरित कर रहे होंगे जैसे—

- भक्ति क्या है।
- भक्ति के भेद क्या है।
- भक्त के क्या कोई प्रकार होते हैं।
- भक्ति से कैसे समाधि की सिद्धि होती है।

मुझे विश्वास है कि आगामी पृष्ठों का अध्ययन कर लेने के बाद आपको उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर मिल जायेंगे। भक्तियोग प्रेम की उच्च पराकाष्ठा है। ईश्वर के प्रति अत्याधिक प्रेम ही भक्ति है जब व्यक्ति संसार के भौतिक पदार्थों से मोह त्याग कर अनन्य भाव से ईश्वर की उपासना करता है तो वह भक्ति कहलाती है।

प्रश्न उठता है कि भक्ति शब्द संस्कृत व्याकरण के किस धातु से बना है। भज सेवायाम धातु से क्तिन प्रत्यय लगाकर भक्ति शब्द बनता है जिसका अर्थ सेवा पूजा उपासना और संगतिकरण करना आदि होता है। भक्ति भाव से ओतप्रोत साधक पूर्ण रूप से ब्रह्म, ईश्वर के भाव में भावित होकर सर्वतोभावेन तदरूपता की अनुभूति को अनुभव करता है। इसलिए कहा गया है—

**भक्ति नाम प्रेम विशेषः**

अर्थात् ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम विशेष का नाम ही भक्ति है।

भक्ति योग का मार्ग भाव—प्रधान साधकों के लिए अधिक उपयुक्त माना गया है। भक्ति मार्ग में भक्ति योग के साधक का मन एकाग्र हो जाता है। यह मार्ग अति सरल होने के कारण जनसाधारण में काफी लोकप्रिय व प्रचलित है।

भक्ति योग की परिभाषा देते हुए नारद भक्ति सा तस्मिन् परम प्रेमरूपा 1/2 सूत्र में कहा गया है—

अर्थात् प्रभु के प्रति परम प्रेम को भक्ति कहते हैं। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में भक्ति को परिभाषित करते हुए कहा गया है—

### सा भक्तिः परानुरक्तिरीश्वरे 1/2

अर्थात् ईश्वर में परम अनुरक्ति भक्ति है। इस प्रकार प्रभु के प्रति अनन्य प्रेम में डूब भक्ति कहलाता है। जैसा की स्पष्ट हो चुका है कि अपने आराध्य से अनन्य प्रेम का नाम भक्ति है। यह तो निश्चित है कि साधक ईश्वर की भक्ति किसी प्रयोजन से करता है।

---

## 10.7 भक्त के भेद

---

गीता में भक्ति के प्रयोजन को भक्त के भेद के परिपेक्ष्य में आप समझ सकते हैं।

चतुर्विधा भजन्ते मां जताः सुकृतिनोऽर्जुन।

आतजिज्ञासुर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

गीता (7/16)

अर्थात् हे भरतवंशी अर्जुन चार प्रकार के पुण्यशाली मनुष्य मेरा भजन करते हैं यानि उपासना करते हैं। वे हैं आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी।

### 10.7.1 आर्त भक्त—

पाठको अपने मानस पटल पर द्रोपदी के चीर हरण की कहानी को लाइये जब द्रोपदी ने देखा कि दुःसासन द्वारा चीर हरण किया जा रहा है, तो उसने आर्त भाव से भगवान कृष्ण को पुकारा है और भगवान कृष्ण स्वयं उसकी रक्षा के लिए आये। कहने का तात्पर्य है कि आर्त भक्त वो कहलाते हैं जब वे गम्भीर संकट में फंस जाते हैं तो वे अपने आराध्य को आर्त भाव से पुकारते हैं और उसकी शरण में जाते हैं।

### 10.7.2 जिज्ञासु भक्त—

जिज्ञासु जैसा नाम से स्पष्ट है कि जिज्ञासा रखने वाले अर्थात् किसी वस्तु को जानने की इच्छा रखने वाले अब प्रश्न उठता है कि वह वस्तु क्या है — वह है आत्मा को जानने की इच्छा, ब्रह्म को जानने की इच्छा ऐसे भक्त जिज्ञासु भक्त कहलाते हैं।

उदाहरण के रूप में आप जाने कि एक बार राजा चण्डिकापालि, घेरण्ड 135/267 में जाकर कहने लगे कि तत्त्व ज्ञान का कारण जो घटस्थ योग है उसक बतायें। महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्डिकापालि के प्रश्न की प्रशंसा करते हुए उसे आत्म कल्याण के लिए घटस्थ योग की शिक्षा दी। हम कह सकते हैं कि राजा चण्डिकापालि जिज्ञासु भक्त थे।

**नोटः—** स्मरण रहे कि हठयोग की महत्वपूर्ण पुस्तक घेरण्ड संहिता की रचना राजा चण्डिकापालि व घेरण्ड ऋषि के संवाद का प्रतिफल है।

### 10.7.3 अर्थार्थी भक्त—

समस्त संसार के व्यक्ति इस श्रेणी में आते हैं ऐसे भक्त किसी सांसारिक वस्तु मकान, जमीन, धन, स्त्री वैभव मान—सम्मान, परीक्षाओं में सफलता विवाह के लिए अपने आराध्य को भजते हैं। ऐसे भक्त अर्थार्थी भक्त कहलाते हैं।

#### 10.7.4 ज्ञानी भक्त –

ज्ञानी भक्त ऐसे भक्त हैं जो आत्म-कल्याण, ब्रह्म की प्राप्ति के लिए अपने आराध्य को भजते हैं। उपरोक्त चार प्रकार के भक्तों में ज्ञानी भक्त श्रेष्ठ हैं।

---

### 10.8 नवधा भक्ति

---

नवधा भक्ति, भक्ति योग का बड़ा महत्वपूर्ण पक्ष है। नौ प्रकार से भगवान की भक्ति की जाती है। भगवत पुराण में कहा है। श्रवण, कीर्तन, विष्णो स्मरणं पादसेवनम्।

**अर्चन वन्दनं दास्य साख्यमात्मनिवेदनम्॥**

अर्थात् श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन दास्य, साख्य और आत्मानिवेदन ये भक्ति के नौ भेद हैं।

#### 10.8.1 श्रवण भक्ति –

परमपिता परमेश्वर, अपने आराध्य ईश्वर के दिव्य गुणों व लीला आदि के विषय में सुनना श्रवण भक्ति कहलाती है।

#### 10.8.2 कीर्तन भक्ति—

कीर्तन से आप भली भाँति परिचित होंगे। भगवान के दिव्य गुणों, लीला – का गायन इत्यादि कीर्तन भक्ति कहलाती है।

#### 10.8.3 स्मरण भक्ति—

सर्वत्र भगवान का स्मरण करना। अपने आराध्य की लीला, गुणों का निरन्तर अनन्य भाव से स्मरण करना स्मरण भक्ति कहलाती है।

#### 10.8.4 पादसेवन भक्ति—

भगवान के चरणों की सेवा करना पाद सेवन भक्ति कहलाती है। यह भक्ति एक तो भगवान के चरणों का चिन्तन करते हुए तथा दूसरी उनकी प्रतिमा में चरणों को धोकर श्रद्धाभाव से साधना करते हुए की जाती है।

#### 10.8.5 अर्चन भक्ति—

अर्चन भक्ति का अर्थ है पूजन करना यह पूजन मानसिक रूप से या स्थूल रूप से अपने आराध्य की हो सकती है।

#### 10.8.6 वन्दन भक्ति—

भाव भरे मन से भगवान की वन्दना करना वन्दन भक्ति का उदाहरण है।

वैदिक ऋचाओं, भक्तों के द्वारा भगवान की स्तुति करना वन्दन भक्ति का उदाहरण है।

#### 10.8.7 दास्य भक्ति—

अपने आप को भगवान का दास समझना, अपने आप को भगवान का – सेवक समझना दास्य भक्ति का उदाहरण है। जैसे हनुमान जी श्री रामचन्द्र जी के प्रति रखते थे।

#### 10.8.8 साख्य भक्ति—

साख्य का अर्थ है मित्र अपने आराध्य को अपना मित्र समझना जैसे सुदामा-कृष्ण अर्जुन-कृष्ण इस भक्ति के उदाहरण हैं।

#### 10.8.9 आत्म निवेदन भक्ति—

आत्मनिवेदन भक्त के द्वारा अपने जीवन में आनेवाली समस्याएँ, बाधाएँ, मुश्किलें और अपने दोषों का ईश्वर के सामने वर्णन करके उसे दूर करने के लिए प्रार्थना करने का एक प्रकार है। आत्म निवेदन भक्ति अपने दुखों को ईश्वर को अर्पण कर देना कहलाती है। आत्मनिवेदन भक्ति अपने को भगवान के स्वरूप में अर्पण करना ही है।

---

## 10.9 भक्ति के भेद

---

भक्ति मुख्यतः दो स्वरूपों में वर्णित है जो निम्नलिखित हैं –

### 10.9.1 रागात्मिका भक्ति—

जब नवधा भक्ति अपनी चरम अवस्था में होती है तब रागात्मिका भक्ति की शुरुवात होती है जब नवधा भक्ति अपनी चरम अवस्था को पार कर जाती है और अन्तःकरण में एक अलौकिक भगवत् प्रेम भाव उत्पन्न होने लगे तो रागात्मिका भक्ति एक आनुभूतिक अवस्था है। ऐसी अवस्था में साधक अपने आराध्या की झलक का अनुभव कर सकता है। उसे अपने आराध्य दिखाई देने लगते हैं वह भी सजीव उनकी झलक वह कभी आसमान में, कभी पेड़ों में, कभी जलाशय में तो कभी अपने मन्दिर में उसको उनकी प्रतिमा सजीव दिखाई देने लगती है।

### 10.9.2 पराभक्ति—

पराभक्ति रागात्मिका भक्ति की चरम अवस्था है। यह साधक की उत्कृष्ट ओर अन्तिम पराकाष्ठा है। पराभक्ति में द्वैत नहीं रहता है इस अवस्था में उपासक और आराध्य एक हो जाते हैं और साधक को एक मात्र ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

भक्ति योग का स्वरूप कुछ इसी प्रकार से ही है जो योग के परम लक्ष्य को प्राप्त कराने वाली योग साधना मार्ग है। अनेक भक्तों जैसे मीरा, राधा, शबरी, कबीर, नानक, केवट आदि भक्ति मार्ग के आदर्श साधक के रूप में विख्यात हैं।

#### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) नीचे दिए हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलान कीजिए।

3. भक्ति क्या है?

.....

अर्चना भक्ति का क्या अर्थ है?

.....

संख्या भक्ति का क्या अर्थ है?

.....

परा भक्ति क्या है?

.....

.....

## 10.10 कर्मयोग

---

योग की विभिन्न शाखाओं में से कर्मयोग विशिष्ट एवं व्यवहारिक है। कर्मयोग हमें कर्म करने की विधि और हमारे प्रत्येक कर्म को कर्मयोग बनाने का उपाय सिखाता है। कर्म से हम बंधे हुए हैं। हमारे विगत कर्म का ही परिणाम है, हमारा यह जन्म कर्मों का चक्रवत् अनुबंधन ही वह कारण है। जिससे हमें बार-बार जन्म लेना पड़ता है। जब तक हम कर्म की गति व विधान को समझकर कर्मयोग साधना नहीं करते तब यह क्रम अनवरत चलता रहता है, और इससे अज्ञान मुक्ति नहीं मिलती। मनुष्य जीवन का उच्चतम लक्ष्य है— कर्मबंधन से मुक्ति, जो केवल

कर्मयोग द्वारा ही संभव है।

यह एक अकार्य विधान है कि प्रत्येक कर्म का कोई न कोई फल अवश्य होता है। शुभ या अच्छे कर्म का पुण्य या अच्छे फल और अशुभ या बुरे कर्म का पाप या बुरे फल होता है। व्यक्ति जैसा कर्मबीज बोता है वैसा ही कर्मफल काटता है। जीवन भर किये जाने वाले इन्हीं कर्मों से प्रारब्ध बनते हैं और उसी अनुरूप आगामी जन्म मिलता है। कर्म के इस अदभुत विधान को जानना और उससे पार पाने का उपयुक्त साधन ही कर्मयोग है। प्रस्तुत इकाई में कर्मयोग के अन्तर्गत हम, कर्म का अर्थ व महत्व, कर्म के प्रकार, कर्मयोग की परिभाषा, कर्मयोग साधना, कर्मयोग की फलश्रुतियाँ और कर्मयोग का व्यवहारिक महत्व का सुव्यवस्थित अध्ययन करेंगे।

---

### 10.11 कर्म एवं अवधारणा

---

कर्म शब्द कृ धातु से विनिर्मित है जिसका अर्थ है— करना। सामान्य अर्थ में कर्म का तात्पर्य है— क्रिया, कृत्य, कार्य करना, आदि। किन्तु योग साहित्य में प्रयुक्त कर्म का अर्थ थोड़ा गहन है। सभी कार्य या क्रिया कर्म नहीं हैं। कोई भी क्रिया, कृत्य व कार्य तत्र कर्म कहलाता है जब उसके पीछे कर्त्ता का संकल्प भाव—विचार जुड़ जाता है। क्योंकि ऐसे अज्ञान क्रिया के बीज कर्त्ता के चित में अंकित नहीं होते हैं। और उनका कोई फल नहीं होता। जैसा कि निद्रा के समय खटमल दबकर मर जाना, पेट में पाचन क्रिया का होना यह कर्म नहीं है क्रिया है। अतः कोई भी क्रिया, कार्य व कृत्य तब कर्म कहलाता है जब उसके होने में संकल्प भाव, विचार जुड़ जाता है।

कर्म मनुष्य जीवन से अविच्छिन्न जुड़ा रहता है। यदि जीवन है तो अनिवार्य रूप से कर्म भी है। अगर व्यक्ति न चाहे तो भी यह प्रकृति बलात् उससे कर्म कराती ही है। क्योंकि सभी मनुष्य प्रकृति व सृष्टि के विधान से बंधे हुए हैं। कहा गया है बिना हरकत या कर्म के मनुष्य एक क्षण भी नहीं रह सकता। गीता (३/१५) कहती है न हि कच्चितक्षणमपि जात तिस्तत्यकर्मकृत अर्थात् निःसन्देह कोई भी मनुष्य किसी भी कालमें क्षणमात्र भी बिना कर्म नहीं रहता।

कर्म का एक अर्थ होता है वह क्रिया जिसका कुछ न कुछ परिणाम निकले। परिणाम फल के बिना कोई भी क्रिया कर्म नहीं कहलाती प्रत्येक कर्म के पीछे उसका कारण यानी प्रेरणा और उसका फल यानी परिणाम अवश्य होता है। कर्म की इसी गहन गति को समझने का और उससे पाने का उपाय कर्मयोग है। कहा जाता है कि बड़े विद्वान व ज्ञानी जन भी इस कर्म बंधन के चक्र में फँस जाते हैं और जन्म जन्मान्तर तक उससे मुक्त नहीं हो पाते। प्रत्येक चेतन मनुष्य का कर्त्तव्य है कि कर्म की गति को समझे और उससे पार पाने का सतत पुरुषार्थ करे।

---

### 10.12 कर्म के प्रकार

---

भारतीय अर्थ साहित्य में कर्म और कर्म के प्रकार एवं स्वरूप पर विभिन्न धारणाएँ उपलब्ध हैं। यहाँ पर विशेष रूप से कर्म के प्रमुख भेद पर चर्चा की जा रही है—

वैदिक साहित्य में कर्म के प्रकार वैदिक ग्रन्थों में कर्म के दो प्रकार बताए गए हैं

- (1) विहित कर्म
- (2) निषिद्ध कर्म

#### 10.12.1 विहित कर्म—

मनुष्य के द्वारा किए जाने योग्य कर्म को विहित कर्म कहते हैं। मनुष्य क्या करें कौन सा कार्य करें, इसका निर्धारण हमारे शास्त्र, स्मृति, आप्तपुरुष एवं ऋषि गणों के द्वारा किया गया है। यह सभी कर्म विहित कर्म कहलाते हैं। सभी विहित कर्म में अच्छाईयाँ निहित होती हैं। इसके चार भेद बताए गए हैं— (क) नित्य कर्म (ख) नैमित्तिक कर्म (ग) काम्य कर्म (घ) प्रायश्चित्त कर्म

(क) **नित्य कर्म** — जो मनुष्योचित दैनिक कर्म होते हैं नित्य कर्म कहलाते हैं। जैसे दिनचर्या के शौचादि, भोजनादि, आजीविका श्रम, अध्ययन—अध्यापन कार्य।

(ख) **नैमित्तिक कर्म**— ऐसे कर्म जो धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र के निर्देश अनुरूप किए जाते हैं अर्थात् जो किसी

निमित्त को लेकर किए जाते हैं, उसे नैमित्तिक कर्म कहते हैं। जैसे कि शिशु जन्म लेने के बाद नामकरण कर्म, शिक्षारंभ से पूर्व विद्यारंभ संस्कार, विवाह संस्कार, शवदाह कर्म आदि कर्म नैमित्तिक कर्म हैं।

(ग) **काम्य कर्म**— कोई भी कार्य कामनापूर्ति इच्छापूर्ति तथा वासनापूर्ति के लिए यानी कोई न कोई उद्देश्य प्राप्ति के साथ किया जाता है वह काम्य कर्म कहलाता है।

(घ) **प्रायश्चित्त कर्म**— स्वयं के द्वारा की गई गलती, दोष, त्रुटि तथा पाप के पश्चात्ताप से मुक्त होने के लिए जो कर्म किए जाते हैं जिससे उन पापों का क्षय होता है वैसे कर्म प्रायश्चित्त कर्म कहलाते हैं।

उदाहरणार्थ तप साधना, उपवास, मौन, तितिक्षा आदि प्रायश्चित्त कर्म हैं।

#### 10.12.2 निषिद्ध कर्म —

उपनिषद् एवं मीमांसा दर्शन के अनुसार —

(क) संचित कर्म (ख) क्रियमाण कर्म (ग) प्रारब्ध कर्म

(क) **संचित कर्म** — वह कर्म जो हमने विगत समय में किया और जिसका बीज हमारे चित्त में अंकित है वह संचित कर्म है। हमारा चित्त विगत के कई जन्मों के अनेक विध संचित कर्मों का भण्डागर है। चित्त कर्म भूतकाल अर्थात् पूर्व जन्मों के अनेक शरीरों के द्वारा किये गये होते हैं जिनके कर्मों का फल फलारम्भ सहित कर्म संस्कार संहित हो जाते हैं।

(ख) **क्रियमाण कर्म**— इसको आगामी कर्म भी कहा जाता है। जो कर्म आगामी समय में किये जाने वाले हैं तथा जिन कर्मों का आरंभ अभी नहीं किया है वही आगामी कर्म है। ऐसे कर्म करने के बाद भविष्य में फल प्रदान करने वाले होते हैं। क्रियमाण कर्म को भविष्यत् काल कर्म की संज्ञा दी जाती है।

इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि संचित संस्कार कर्मफल बनकर जब आगामी दिन में अभिव्यक्त होते हैं क्रियमाण कर्म के रूपमें जाने जाते हैं।

(ग) **प्रारब्ध कर्म** — संचित कर्म परिपक्व होने पर जब अभिव्यक्त होता है वह प्रारब्ध कर्म कहलाता है। प्रारब्ध कर्म के बीज हमारे अन्दर संस्कार व वासना के रूप में संचित रहते हैं। ऐसे कर्म एक समय परिपाक होकर, प्रबल बनकर, सामने आते हैं। सुख-दुःख, भाग्य, सफलता आदि के पीछे ये प्रारब्ध कर्म ही कारण रूपमें रहते हैं।

#### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) नीचे दिए हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलान कीजिए।

8. कर्म कितने प्रकार के होते हैं? कर्म के प्रकारों के नाम लिखिए।

.....

उपनिषद् एवं मीमांसा दर्शन के अनुसार निषिद्ध कर्म के प्रकारों के नाम लिखिए।

.....

काम्य कर्म किसे कहते हैं?

.....

.....

## श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार—

समूचे गीता शास्त्र के अध्ययन के बाद गीता में तीन प्रकार के कर्म का ज्ञात होता है— सकाम कर्म, निष्काम कर्म और यज्ञ कर्म। किन्तु कर्म के भेद को प्रकाशित करते हुए एक स्थान पर कर्म के निम्न तीन प्रकार बताए गए हैं

**‘कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं च विकर्मणा अकर्मण्य बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।**

कर्म का स्वरूप भी जाननी चाहिए और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए तथा विकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए, क्योंकि कर्म की गति गहन है।

- (१) **कर्म** — वेद, शास्त्र तथा महापुरुष के निर्देश अनुरूप किए जाने वाले मन व्योचित कर्म ही कर्म कहलाते हैं। अर्थात् जो मनुष्य द्वारा करने लायक है वही कर्म है। इसी कर्म को योग साधना द्वारा कर्म योग में बदला जाता है।
- (२) **अकर्म**— जो कर्म अनासक्त भाव से किया जाता है और जिस को करने से अन्तःकरण में किसी प्रकाश का संस्कार नहीं बनता वह अकर्म है। इस में हर तरह के कर्म आते हैं, शास्त्र विहित भी एवं शास्त्र विरुद्ध भी।
- (३) **विकर्म** — शास्त्र तथा मनुष्य धर्म के विपरीत कर्म विकर्म है। यह कर्म शास्त्र अविहित स्वार्थ सिद्धि तथा वासनापूर्ति के लिए किये जाते हैं। पाप कर्म ही विकर्म है।

### • पातंजल योग सूत्र के अनुसार—

योग दर्शन का प्रतिपादक ग्रन्थ महर्षि पतंजलिकृत योग सूत्र में कर्म के चार प्रकार बताए गए हैं जिसकी चर्चा चतुर्थ पाद के सातवें सूत्र पर की गयी है।

- (१) शुक्ल कर्म, (२) कृष्ण कर्म, (३) शुक्ल कृष्ण कर्म (४) अशुक्ल अकृष्ण कर्म
- (१) **शुक्ल कर्म** अच्छे कर्म तथा पुण्य कर्म शुक्ल कर्म है ऐसे कर्म शास्त्रानुकूल होते हैं।
- (२) **कृष्ण कर्म**— बुरे कर्म तथा पाप कर्म कृष्ण कर्म हैं। ऐसे कर्म शास्त्र के विपरीत होते हैं।
- (३) **शुक्लकृष्ण कर्म**— दोनों प्रकार के कर्म अच्छे और बुरे जब एक साथ किए जाते हैं शुक्लकृष्ण कर्म कहलाते हैं ऐसे कर्म सामान्य सासारिक लोग करते हैं कभी पुण्य कर्म कभी पाप कर्म।
- (४) **अशुक्ल अकृष्ण कर्म**— न पुण्य यानी अच्छे कर्म और न पाप यानी बुरे कर्म दोनों से भिन्न कर्म अथवा दोनों मिश्रित पाप—पुण्य कर्म हो, उसे अशुक्ल अकृष्ण कर्म कहा जाता है। ऐसे कर्म के मात्र योगी पुरुष के होते हैं।

## 10.13 कर्मयोग की परिभाषाएँ

विभिन्न योग ग्रन्थ तथा महापुरुषों के मत में कर्मयोग की परिभाषा है।

श्रीमद्भगवद् गीता के अनुसार —

**बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।**

**तस्माद्योगाय युज्यस्य योगः कर्मसु कौशलम्॥**

**गीता २/५०**

समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है, अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तू समत्वरूप योग में लग जा यह समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता है

अर्थात् कर्म त्रिशिवब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार— बन्धन से छूटने का उपाय है।

**कर्म कर्तव्यमित्येव विहिते कर्मसु।**

**बन्धनं मनसो नित्यं कर्मयोगः स उच्यते॥**

विहित कर्मों में इस बुद्धि का होना कि यह कर्तव्य कर्म है, मन का ऐसा नित्य बन्धन कर्मयोग है।

## ● स्वामी विवेकानंद के अनुसार—

कर्मयोग का अर्थ है— मौत के मुँह में बिना तर्क—वितर्क किए सबकी सहायता करना, भले ही तुम लाख बार ठगे जाओ पर मुँह से एक बात न निकालो और तुम जो कुछ भला कार्य कर रहे हो उसके संबंध में सोचो तक नहीं। पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार, कर्मयोग इसी कुशलता का नाम है जो इस प्रकार कलापूर्ण कार्य करना जानता है कि किए हुए कार्य का उलटा फल न निकले वह कर्मयोगी है।

कर्मयोग की उपर्युक्त परिभाषा के विश्लेषण से हमें निम्न सार संक्षेप हस्तगत होते हैं।

- १— कर्म के पीछे फल की इच्छा न रखना और निरंतर स्वकर्म का पालन करना कर्मयोग है।
२. आत्मकल्याण और लोककल्याण के लिए बिना स्वार्थ सिद्धि कर्तव्य करते रहना कर्मयोग है।
- ३— मृत्यु पराजय हानि और जय, सिद्धि व लाभ किसी भी कारणों से अप्रभावित रहकर नित्य कर्म में रत रहना कर्मयोग है।
- ४— कर्मयोगी का कर्म सदा ही विहित निष्काम एवं अहंकार रहित होते हैं।

---

### 10.14 कर्मयोग साधना

---

हम जो भी कर्म करते हैं उन प्रत्येक कर्मों को योग का साधन बनाने की विधि को कर्म योग साधना कहा जाता है। सभी मनुष्य कर्म करते हैं। किन्तु ऐसे कर्म योग प्रदायक तथा योग लाभ देने वाले नहीं होते। साधक अपने स्वधर्म, स्वकर्म का पालन करते हुए अपने चित्त को शुद्ध कर योग को प्राप्त कर सकता है। कर्मयोग साधना कर्म से विमुख होना और कर्म से पलायन होकर एकान्तवासी बनने का देश नहीं है हमारे हर कर्म कैसे दिव्या श्रेष्ठ, निष्काम बने जो हमें योग की प्राप्ति कराने में समर्थ हो ऐसी कुर्म की कुशलता ही कर्मयोग साधना है श्रीमद्भगवद्गीता को कर्मयोग का शीर्ष ग्रन्थ माना गया है। गीता में निरूपित कर्मयोग साधना की चर्चा किया जा सकता है।

निष्काम कर्म व आसक्ति रहित कर्म जब कर्त्ता पूर्णतः निष्काम भाव से कर्म व कर्म फल में अनासक्त होकर कर्म करता है वह कर्म उसे योग की ओर अग्रसर करता है। जहाँ कर्म के पीछे मोह, कामना, वासना इच्छा आदि जुड़े रहते हैं उसका परिणाम घोर बन्धनकारी होते हैं। यही कर्म बंधन है। निष्काम भाव से जो कर्म किए जाते हैं उसका बीज व परिणाम कर्त्ता के चित्त में संचित नहीं होते। फलस्वरूप साधक का चित्त निर्मल होता जाता है और अन्ततः उसे योग की स्थिति प्राप्त होती है। इस पर गीता का उदघोष है—

**तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।**

**असक्तो ह ध्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः॥**

गीता ३/९

इसलिए हे अर्जुन तू निरंतर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्त्तव्य कर्म को भली भाँति करता रह क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। गीता में अन्य स्थान पर भी आसक्ति रहित कर्म के माध्यम से योग के लक्ष्य की प्राप्ति पर व्याख्या मिलती हैं।

#### 10.14.1 कर्त्तापन का त्याग —

कोई भी व्यक्ति जब मैं कर रहा हूँ या मैं ही कर्त्ता हूँ ऐसा मानकर कर्म करता है वह अवश्यमेव कर्मबंधन से बंध जाता है। न उसे कभी योग की प्राप्ति होती है। अभिमान, कर्त्तापन का भाव तथा अहंकार—ये कर्मयोग के बाधक हैं। साधक जब कर्त्तापन या अभिमान का त्याग करके अपने को एक निमित्त साधन मानकर कर्म करने लगता है उसके लिए योग रूपी ग्रन्थ कठिन नहीं रहता। ऐसा मानो कि मैं नहीं कर रहा हूँ जो कुछ हो रहा है यह प्रकृति करा रही है— यही कर्त्ता का त्याग है।

वास्तव में सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं, तो भी जिसका अन्तः करण अहंकार से भरा हुआ हो, ऐसा अज्ञानी मैं कर्त्ता हूँ ऐसा मानता है। परन्तु है महा बाहो ! गुणविभाग और कर्मविभाग के तत्त्व को जानने वाला ज्ञानयोगी सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बरत रहे हैं ऐसा समझकर अन्त में आसक्त नहीं होता।

### 10.14.2 कर्मफल का त्याग

वैसे कर्म जो फल व परिणाम त्याग कर किये जाते हैं योग प्रदायक माने जाते हैं। अन्यथा कर्मयोनि में ही बंधन वाले होते हैं। कर्मयोग साधना में साधक निरन्तर यह प्रयत्न करता है कि विहित व कर्तव्य कर्म करते रहें किन्तु उनके फल के प्रति उदासीन हो। गीता इस सुन्दर तथ्य को इस प्रकार उजागर करती है—

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन,  
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गदस्त्वकर्मणि।**

गीता २/४७

तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिये तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो। कर्मयोग साधना में साधक किस प्रकार कर्मफल का त्याग करें। गीता में अन्य एक जगह निर्देश है:

‘जो पुरुष समस्त कर्मों में और उनके फल में आसक्ति का सर्वथा त्याग करके संसार के आश्रय से रहित हो गया है और परमात्मा में नित्य तृप्त है, वह कर्मों में भलीभाँति बरतता हुआ भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता।

### 10.14.3 कर्म तथा कर्मफल का ईश्वरार्पण—

कर्मयोग साधना में तिरत कर्मयोगी के लिए गीता में श्रीकृष्ण का निर्देश है कि साधक अपने समस्त कर्म और उसके फल को मुझमें अर्पित करे। यह एक विशिष्ट साधना विधान है। मनुष्य जब कर्म करने वाला कर्ता भी स्वयं को मानता है और कर्मफल का अधिकारी भी स्वयं को समझता है तब वह कर्म के घोर चक्र में फँस जाता है। किन्तु कर्म साधना करने वाले को अपने प्रत्येक कर्म ईश्वर के चरण में अर्पित कर देना चाहिए।

जैसा गीता का मत है—

**शुभाशुभफलैरेवं मोक्षयसेकर्मबन्धनैः।  
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।।**

गीता ६/ २८

इस प्रकार जिसमें समस्त कर्म मुझ भगवान को अर्पण होते हैं— सन्न्यास योग से युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्म बन्धन से मुक्त हो जायेगा और उनसे मुक्त होकर मुझको प्राप्त होगा। साधक किस प्रकार अपने कर्म को ईश्वर में अर्पित करे इस पर गीता के १/२७, ३/३० पर भी इसका निरूपण देखा जा सकता है।

### 10.14.4 यज्ञ कर्म—

कर्मयोग साधना में यज्ञ कर्म का भी समावेश किया गया है। निरन्तर रूप से स्वधर्म तथा कर्तव्य का पालन परमार्थ भाव से करते रहना भी यज्ञ है। गीता में विभिन्न प्रकार के यज्ञ की चर्चा की गयी है। जो साधक यज्ञ कर्म का सम्पादन हुए कर्म साधना में निमग्न रहता है, उसका अन्तःकरण निर्मल होता है और उसे परमात्मा की प्राप्ति होती है। इस यथार्थ को प्रकाशित करती हुई गीता कहती है—

**यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।  
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंङ्ग समाचर।।**

यज्ञ के निमित्त किये जाने वाले कर्मों से अतिरिक्त दूसरे कर्मों में लगा हुआ ही यह मनुष्य समुदाय कर्मों से बँधता है। इसलिये हे अर्जुन तू आसक्ति से रहित होकर उस यज्ञ के निमित्त ही भलीभाँति कर्तव्य कर्म कर स्वधर्म पालन, कर्तव्य सम्पादन, विहित कर्म अपने गुण, कर्म और स्वभाव के अनुरूप शास्त्र विहित कर्तव्य कर्म तथा स्वधर्म का अनवरत पालन भी कर्मयोग साधना है। ऐसे कर्मों का परिणाम भी अन्ततः साधक को योगमार्ग में प्रेरित करते हैं किस व्यक्ति का क्या कर्तव्य तथा स्वधर्म है इसका निर्धारण गीता तथा अन्य शास्त्रों में वर्ण व्यवस्था के रूपमें उपलब्ध हैं। कर्तव्य कर्म किस प्रकार किया जाए गीता का उद्घोष है—

“तू शास्त्रविहित कर्तव्य कर्म कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने

से तेरे शरीर निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा।” गीता में स्वधर्म के पालन को योग साधना का एक अंग बताती है, कहती है—

**श्रेयास्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।**

**स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥**

अच्छी प्रकार आचरण में लाये हुए दूसरे के धर्म से ग्रहणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में तो मरना भी कल्याण कारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है।

## **10.15 कर्मयोग की फलश्रुतियाँ**

जिस प्रकार कर्म का कोई न कोई फल होता है उसी प्रकार कर्मयोग साधना का भी सुनिश्चित परिणाम होता है जो साधक अपने प्रत्येक कर्म को परिष्कृत कर दिव्य, अनासक्त, निष्काम बनता है उसका परिणाम चित्त शुद्धि के रूप में उसे हस्तगत होता है। इससे उसका कर्म बंधन छूट जाता है। अन्ततः कर्मयोग की निरंतर साधना उसे परमात्मा प्राप्ति तक पहुँचाती है। कर्मयोग की इन फलश्रुतियों की चर्चा निम्नानुसार की जा सकती है—

### **10.15.1 कर्म बन्धन से मुक्ति—**

कर्मयोग की साधना जब परिपक्व हो जाती है फलीभूत होने लगती हैं। तो, उसके परिणाम स्वरूप साधक कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है। कर्मयोगी को किसी प्रकार के कर्म नहीं बाँधते। वह सभी प्रकार के कर्म बंधन से छूट जाता है। वह सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करता। कर्मयोग के इस परिणाम पर गीता कहती है—

**योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।**

**आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥**

**गीता ४/४१**

हे धनज्जय। जिसने कर्मयोग की विधि से समस्त कर्मों का परमात्मा में अर्पण कर दिया है और जिसमें विवेक द्वारा समस्त संशयों का नाश कर दिया है, ऐसे वश में किये हुए अन्तः करण वाले पुरुष को कर्म नहीं बाँधते।

### **10.15.2 परमात्मा की प्राप्ति —**

कर्मयोग साधना का दूसरा परिणाम है परमात्मा की प्राप्ति कर्मयोग साधना का दूसरा परिणाम है परमात्मा की प्राप्ति कर्मयोग साधना से साधक का चित्त निर्मल होने लगता है। चित्त निर्मल होने पर वह अन्तः परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। गीता का संदेश है कि निरंतर निरासक्त होकर कर्म करने से मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

### **10.15.3 सच्चिदानन्द की प्राप्ति—**

सच्चिदानन्द की प्राप्ति कर्मयोग करने वाले के लिए एक सुनिश्चित परिणाम है। सच्चिदानन्द अर्थात् सबसे उत्तम आनन्द दिव्य परम आनन्द की स्थिति। इस स्थिति में साधक सभी विषयों से निवृत्त होकर केवल परमात्म रस सच्चिदानन्द में लीन हो जाता है।

**सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्यास्ते सुखं वशी नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ गीता ५/१३**

अन्तःकरण को वश में करने वाला ऐसा पुरुष न करता हुआ और न करवाता हुआ ही नव द्वारों वाले शरीर रूप घर में सब कर्मों को मन से त्यागकर आनन्द पूर्वक सच्चिदानन्द परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहता है।

### **10.15.4 जन्मरूप भवबन्धन से मुक्ति —**

कर्मयोगी साधक अन्ततः बार बार जन्म मरण रूप चक्र से भी उन्मुक्त हो जाता है। उसे अपने कर्मों के परिणाम स्वरूप फिर जन्म लेना और मरना नहीं पड़ता। वह परम पद को प्राप्त करके सदा आनन्द में लीन रहता है। जैसा कि गीता में कहा है—

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।

जन्मबन्धविनिर्मुक्ता पदं गच्छन्त्यनामयम्।।

समबुद्धि से युक्त ज्ञानीजन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्यागकर जन्मरूप से युक्त हो निर्विकार परमपद को प्राप्त हो जाते हैं।

### बोध प्रश्न

टिप्पणी (क) नीचे दिए हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलान कीजिए।

11. कर्म योग की फलश्रुतियों के प्रकारों के नाम लिखिए।

.....  
.....

### 10.16 सारांश

योग भारत का एक प्राचीनतम विज्ञान है। इस विधा के द्वारा मनुष्य का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास किया जा सकता है। इस इकाई के अंतर्गत ज्ञान योग, भक्ति योग एवं कर्म योग के विषय में विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। ज्ञान योग की साधना ऐसे व्यक्ति के द्वारा ही संभव है जो दृढ़निश्चयी एवं विश्लेषक बुद्धि से परिपूर्ण हो यदि उसके अंदर यह गुण नहीं है तो वह स्वयं को नष्ट करने का उत्तरदायी होगा। ज्ञान योग के माध्यम से मनुष्य के अंदर एकाग्रता, मन की शुद्धता, सत्य के पथ का अनुसरण, सेवा भाव सभी प्रकार के भौतिक सुखों से विरक्ति के साथ ईश्वर में अपार आस्था आ जाती है। ईश्वर के प्रति अगाध आस्था भक्ति योग का परिचायक है। भक्ति मार्ग पर चलने वाला मनुष्य भी परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है अपने द्वारा किए गए सभी कार्यों को ईश्वर को अर्पित करना तथा जो भी संसार में प्रिया या अप्रिय घटित हो रहा उसे ईश्वर की कृपा मानकर स्वीकार करना ही भक्ति मार्ग का प्रबल उद्देश्य है। योग की विभिन्न विधाओं में कर्मयोग सबसे अधिक विशिष्ट एवं व्यावहारिक है। कर्म योग हमें कर्म करने का तरीका सिखाता है। सभी मनुष्य कर्म से बंधे होते हैं जब तक मनुष्य कर्म की प्रकृति को समझकर कर्म योग साधना नहीं करते तब तक यह कर्म अनवरत चलता रहता है और अज्ञानता से मुक्ति नहीं मिलती। मनुष्य जीवन का उच्चतम लक्ष्य है कर्म बंधन से मुक्ति यह कर्म योग द्वारा ही संभव है। इस इकाई में ज्ञान योग का स्वरूप, लक्षण, भक्ति योग, भक्ति के भेद, कर्म योग के अंतर्गत कर्म की अवधारणा, अर्थ, कर्म के प्रकार, कर्म साधन तथा कर्म योग की फलश्रुतियों के विषय में सुंदर विवेचन किया गया है।

### 10.17 अभ्यास के प्रश्न

1. ज्ञान योग क्या है? ज्ञान योग साधना के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए।
2. ज्ञान योगी के लक्षणों का वर्णन कीजिए।
3. भक्ति के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
4. कर्म योग क्या है? कर्म योग के स्वरूप की विवेचना कीजिए।
5. कर्म योग की फलश्रुतियों की विवेचना कीजिए।

### 10.18 चर्चा के बिन्दु

1. ज्ञान योग पर चर्चा कीजिए।
2. भक्ति योग एवं कर्म योग पर चर्चा कीजिए।

---

## 10.19 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

- (i) ज्ञान योगी उन्मुक्त आकाश के नीचे नग्न वंसुधरा पर उसकी शय्या हो या वह राजमहल में निवास करे, वह समान रूप से संतुष्ट रहता है।  
(ii) ज्ञान योगी का दृढ़ विश्वास होता है कि ब्रह्म के अतिरिक्त सब मिथ्या है।
- विवेक, वैराग्य, 'टसंपत्ति एवं मुमुक्षुत्व
- श्रवण मनन निदिध्यासन
- भक्ति शब्द संस्कृत व्याकरण के किस धातु से बना है। भज सेवायाम धातु से क्तिन प्रत्यय लगाकर भक्ति शब्द बनता है जिसका अर्थ सेवा पूजा उपासना और संगतिकरण करना आदि होता है। भक्ति भाव से ओतप्रोत साधक पूर्ण रूप से ब्रह्म, ईश्वर के भाव में भावित होकर सर्वतोभावेन तदरूपता की अनुभूति को अनुभव करता है। इसलिए कहा गया है—

### भक्ति नाम प्रेम विशेषः

अर्थात् ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम विशेष का नाम ही भक्ति है।

- अर्चन भक्ति का अर्थ है पूजन करना यह पूजन मानसिक रूप से या स्थूल रूप से अपने आराध्य की हो सकती है।
- साख्य का अर्थ है मित्र अपने आराध्य को अपना मित्र समझना जैसे सुदामा—कृष्ण अर्जुन—कृष्ण इस भक्ति के उदाहरण हैं।
- पराभक्ति रागात्मिका भक्ति की चरम अवस्था है। यह साधक की उत्कृष्ट ओर अन्तिम पराकाष्ठा है। पराभक्ति में द्वैत नहीं रहता है इस अवस्था में उपासक और आराध्य एक हो जाते हैं और साधक को एक मात्र ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।
- कर्म दो प्रकार के होते हैं — 1. विहित कर्म 2. नित्य कर्म
- संचित कर्म, क्रियामाण कर्म एवं प्रारब्ध कर्म
- कोई भी कार्य कामनापूर्ति इच्छापूर्ति तथा वासनापूर्ति के लिए यानी कोई न कोई उद्देश्य प्राप्ति के साथ किया जाता है वह काम्य कर्म कहलाता है।
- (i) कर्म बन्धन से मुक्ति  
(ii) परमात्मा की प्राप्ति  
(iii) सच्चिदानन्द की प्राप्ति  
(iv) जन्म रूप भव बन्धन से मुक्ति

---

## 10.20 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

- सिन्हा, जे. (2010) — भारतीय दर्शन. दिल्लीरू मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।
- हिरियन्ना, एम. (2018) — भारतीय दर्शन की रूपरेखा. नई दिल्लीरू राजकमल प्रकाशन।
- नेमिचन्द्र (Ed) (1975) — कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्यरचित योगशास्त्र. दिल्ली: श्री निर्ग्रंथ साहित्य प्रकाशसंघ।
- शर्मा, आर. के. एवं दुबे एस. के. (2017) — योग शिक्षा. आगरारू राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड।
- शर्मा, आर.के. एवं दुबे, एस. (2016) — योग शिक्षा. आगरारू राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड।
- शर्मा, सी. (2019) — भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन. दिल्लीरू मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।



---

## इकाई 11 : श्री अरविन्द का समग्र योग एवं योग के आधुनिक स्वरूप

---

### इकाई की रूपरेखा

- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 इकाई के उद्देश्य
- 11.3 समग्र योग का अर्थ
- 11.4 श्री अरविन्द का समग्र योग
  - 11.4.1 आत्मिकता की प्रक्रिया
  - 11.4.2 आध्यात्मिकता की प्रक्रिया
  - 11.4.3 अतिमानसिकरण की प्रक्रिया
- 11.5 श्री अरविन्द के सर्वांग योग दर्शन
- 11.6 श्री अरविन्द के सर्वांग योग दर्शन की तत्व मीमांसा
- 11.7 श्री अरविन्द के सर्वांग योग दर्शन की ज्ञान एवं तर्क मीमांसा
- 11.8 श्री अरविन्द के सर्वांग योग दर्शन की मूल्य एवं आचार मीमांसा
- 11.9 योग एवं दर्शन की अभिरुचि
  - 11.9.1 अरविन्द की विचारधारा
- 11.10 अरविन्द की शिक्षा पद्धति की संकल्पना
  - 11.10.1 अरविन्द के अनुसार पाठ्यक्रम
- 11.11 श्री अरविन्द की एकीकृत शिक्षा
- 11.12 श्री अरविन्द आश्रम
- 11.13 सारांश
- 11.14 अभ्यास के प्रश्न
- 11.15 चर्चा के बिन्दु
- 11.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 11.17 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

### 11.1 प्रस्तावना

---

अरविन्द घोष या श्री अरविन्द एक महान योगी एवं दार्शनिक थे। इनका जन्म 11 अगस्त, सन् 1872 ई० को कलकत्ता में हुआ। इनके पिता का नाम डॉ० कृष्णधन घोष था। वे कलकत्ता के प्रसिद्ध सर्जन थे और उन्होंने अपनी चिकित्साशास्त्र की शिक्षा इंग्लैण्ड से प्राप्त की थी। श्री अरविन्द की पाँच वर्ष की उम्र में ही ग्रीक और लैटिन भाषा में योग्यता प्राप्त हो गई थी। श्री अरविन्द को अंग्रेजी और मँग साहित्य की कई विदेशी भाषाओं पर भी दक्षता प्राप्त थी। अपनी शिक्षा के लिए सन् 1890 ई० में श्री अरविन्द कैंब्रिज के किंग्स कॉलेज में प्रवेशित हुए। आपने आई.सी. एस. की परीक्षा में ग्यारहवा स्थान प्राप्त किया। श्री अरविन्द ने आइ.सी.एस. की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् भी अंग्रेजी सरकार की दासता को स्वीकार नहीं किया इसके लिए वे स्वयं घुड़सवारी की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गये।

श्री अरविन्द ने सर्वांग योग दर्शन को समझने के लिए उसकी तत्व मीमांसा, ज्ञान एवं मीमांसा तथा मूल्य एवं आचार मीमांसा को समझना प्रासंगिक है। आधुनिक स्वरूप की संकल्पना हेतु श्री अरविन्द एकीकृत शिक्षा को

शिक्षार्थियों तक पहुँचाने के पक्षधर थे।

श्री अरविन्द जी द्वारा भारतीय शिक्षा के विषय में महत्वपूर्ण चिन्तन किया गया है। उन्होंने अपने अध्ययन-मनन एवं तपस्या से बताया कि मानव सांसारिक जीवन में भी दैवीय शक्ति को अर्जित कर सकता है। उनका ऐसा विश्वास था कि मानव भौतिक जीवन व्यतीत करते हुए तथा मानवों की सेवा से अपने मानस को 'अति मानस' तथा स्वयं को 'अति मानव' के रूप में परिवर्तित कर सकता है। इसे शिक्षा के द्वारा ही संभव बनाया जा सकता है। आज की परिस्थितियों में जब हम अपनी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति एवं परम्परा को भूल कर भौतिकवादी सभ्यता का अनुसरण कर रहे हैं, तब ऐसी परिस्थिति में अरविन्द के शिक्षा दर्शन द्वारा हम सही दिशा प्राप्त कर सकते हैं। आज धार्मिक एवं अध्यात्मिक जनचेतना की नितान्त आवश्यकता है।

श्री वी० आर० तनेजा के शब्दों में – “श्री अरविन्द का शिक्षा – दर्शन लक्ष्य की दृष्टि से आदर्शवादी, उपागम की दृष्टि से यथार्थवादी, क्रिया की दृष्टि से प्रयोजनवादी तथा महत्वाकांक्षा की दृष्टि से मानवतावादी है। हमें इस दृष्टिकोण को शिक्षा में अपनाना चाहिए।”

राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़े शिक्षार्थियों को शैक्षिक सुविधाएं उपलब्ध कराने हेतु कलकत्ता में एक राष्ट्रीय महाविद्यालय स्थापित किया गया। श्री अरविन्द ने 150 रु. प्रतिमाह के वेतन पर इस कॉलेज में प्रधानाचार्य के पद पर कार्य किया। इस अवसर का लाभ उठाते हुए श्री अरविन्द ने 'राष्ट्रीय शिक्षा' की संकल्पना का विकास किया तथा अपने शिक्षा-दर्शन की नींव रखी। यही कॉलेज आगे चलकर जादवपनुर विश्वविद्यालय के रूप में स्थापित हुआ। प्रधानाचार्य के कार्य के साथ ही श्री अरविन्द अपने लेखन तथा भाषणों द्वारा देशवासियों को प्रेरणा देते हुए राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेते रहें।

1908 ई. में राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण श्री अरविन्द गिरफ्तार हुए व जेल में रहें। उन पर मुकदमा चलाया गया तथा अदालत में दैवयोग से उनके मुकदमें की सुनवाई सेशन जज सी० पी० बीचक्राफ्ट ने की जो अरविन्द के आई.सी.एस. के साथी रह चुके थे तथा वे अरविन्द की कुशाग्र बुद्धि से प्रभावित थे। अरविन्द के वकील चितरंजन दास ने जज बीचक्राफ्ट से कहा – “जब आप अरविन्द की बुद्धि से प्रभावित हैं तब यह कैसे सम्भव है कि अरविन्द किसी षड्यंत्र में भाग ले सकते हैं। इन दलीलों को सुनने के बाद बीचक्राफ्ट ने अरविन्द को जेल से मुक्त कर दिया।

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत, अरविन्द के समग्र योग, उसकी संकल्पना, सर्वांग योग दर्शन के विभिन्न मीमांसाओं, योग दर्शन, अरविन्द की शिक्षा पद्धति पाठ्यक्रम, एकीकृत शिक्षा तथा अरविन्द आश्रम के विषय में विस्तृत चर्चा की गई है।

---

## 11.2 इकाई के उद्देश्य

---

1. श्री अरविन्द के जीवन के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे—
2. श्री अरविन्द के दार्शनिक पक्ष से परिचित हो सकेंगे।
3. श्री अरविन्द के समग्र योग के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
4. श्री अरविन्द के सर्वांग योग दर्शन के तत्व मीमांसा, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा तथा मूल्य एवं आचार मीमांसा की अवधारणा में अन्तर को स्पष्ट कर सकेंगे।
5. श्री अरविन्द की शिक्षा पद्धति के विषय में समझ विकसित कर सकेंगे।
6. श्री अरविन्द के द्वारा प्रस्तुत पाठ्यक्रम के महत्वपूर्ण पक्ष से अवगत हो सकेंगे।
7. श्री अरविन्द द्वारा प्रतिपादित एकीकृत शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त कर सकेंगे।
8. श्री अरविन्द आश्रम के विषय में चर्चा कर सकेंगे।

---

## 11.3 समग्र योग का अर्थ

---

समग्र योग एक ऐसी अभ्यास व क्रिया है जो व्यक्ति को यौगिक दिनचर्या अथवा जीवन जीने की कला की ओर उन्मुख करता है। मनुष्य प्रमाणिक योग अभ्यास को सर्वप्रथम सीखता है और उसमें निहित एवं वर्णित अभ्यासों

का पालन करके उसे अपने दैनिक जीवन में आत्मसात करता है। ऐसा करने से शरीर, मन और आत्मा में संचित बुराइयों एवं अशुद्धियों को दूर करने में सहायता पहुंचाता है।

---

## 11.4 श्री अरविन्द का समग्र योग

---

महर्षि अरविन्द ने अपने अनुभवों और साधनाओं के आधार पर योग की ऐसी विधि का प्रचार व प्रसार किया जिसे मनुष्य गृहस्थ जीवन में अन्य कार्यों में संलिप्त होने के उपरान्त भी इस योग क्रिया को सीखकर अभ्यास कर सकते हैं। वे इस योग के माध्यम से आध्यात्मिकता के शिखर पर भी पहुंच सकें। उन्होंने वर्षों की साधना एवं अध्ययन से अपने शिक्षार्थियों को जिस उद्देश्य से समग्र योग का ज्ञान अपने उपदेशों के द्वारा प्रदान किया उससे उन्हें लक्ष्य प्राप्ति में निश्चित ही सफलता प्राप्त होती है।

समग्र योग वह सर्वांग विधि है जिससे सांसारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन के मध्य एक अच्छा समन्वय स्थापित हो सके। समग्र योग इस बात का भी परिचायक है कि मनुष्य को जीवन में पूर्ण तत्व अथवा सफलता प्राप्त हो।

श्री अरविन्द का योग समग्र या पूर्ण योग है इसके अंतर्गत सभी योग का सामंजस्य है या हम कह सकते हैं कि इसमें विभिन्न प्रकार के योग सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार योग का लक्ष्य मानस को अतिमानस स्वरूप में परिवर्तित करने से है। अतिमानस की स्थिति में मनुष्य पूर्ण चेतन की अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

श्री अरविन्द अपने समग्र योग में सांसारिक गतिविधियों में संलिप्त रहते हुए आत्मा से परमात्मा के संगम की बात को वर्णित करते हैं आप सांसारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए साधना के माध्यम से आध्यात्मिक क्षेत्र के उच्चतम शिखर पर पहुंचकर अपने जीवन को दिव्य बनाने की बात करते हैं।

श्री अरविन्द ने संपूर्ण योग में तीन प्रक्रिया का वर्णन किया है।

1. आत्मिकता की प्रक्रिया
2. आध्यात्मिकता की प्रक्रिया
3. अतिमानसीकरण की प्रक्रिया

### 11.4.1. आत्मिकता की प्रक्रिया

आत्मिक प्रक्रिया के अंतर्गत व्यक्ति अपने अंदर की आत्मीय शक्ति को प्रकट करता है तथा अपने चिन्तन एवं मनन करने की सकारात्मक शक्ति को लगातार स्थिर रखता है। इसके प्रयोग से मनुष्य की क्रियाविधि या मनःस्थिति में सकारात्मक परिवर्तन पाया जाता है। ऐसा करने से मनुष्य अपने जीवन में निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर बढ़ता है।

### 11.4.2. आध्यात्मिकता की प्रक्रिया

यह प्रक्रिया संपूर्ण योग का द्वितीय चरण है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति स्वयं को आध्यात्मिक ज्ञान से जोड़कर चिंतन, मनन एवं स्वाध्याय व स्वावलंबन के माध्यम से दिव्य ज्ञान प्राप्त करने हेतु अपना अधिकतम प्रयास करता है।

### 11.4.3. अतिमानसीकरण की प्रक्रिया

यह प्रक्रिया या चरण पूर्ण योग की अन्तिम कड़ी है। इसके अंतर्गत आत्मा अत्यधिक साधना एवं योगाभ्यास के कारण अतिमानस की स्थिति को प्राप्त कर लेता है, जिससे उसके सभी प्रकार के मानसिक विकास की भावना शांत हो जाती है।

समग्र योग आत्मा एवं परमात्मा के मध्य अंतर की भावना को समाप्त करना चाहता है। साथ ही साथ व्यक्ति केवल अपने आत्मा की मुक्ति के लिए ही प्रयास नहीं करता अपितु वह समस्त मानव समाज को पूर्णता प्रदान करना चाहता है।

जब साधक पूर्ण योग की साधना पद्धति पर विचार करते हैं तब ऐसी स्थिति में कुछ मुख्य बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता प्रतीत होती है –

1. शुद्ध अंतःकरण से आत्मोत्सर्ग की भावना का विकास।
2. ईश्वर के साथ चेतना के साथ एकीकरण का विकास
3. ईश्वर के द्वारा जो भी कार्य व्यक्ति के लिए बनाए गए हैं उसे दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ स्वीकार करना।
4. अहंकार, द्वेष, अभिमान एवं वासना आदि दोषों का परित्याग कर भगवान द्वारा दिए जाने वाले मूल्यों को आत्मसात करना।
5. प्राणों की शुद्धि का विकास
6. मां की स्थिरता का विकास
7. सौंदर्य एवं सामंजस्य का विकास
8. प्रेम एवं भक्ति भाव का विकास

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी

(क) नीचे दिये हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए

1. श्री अरविन्द का जन्म कब हुआ था ?

.....

2. समग्र योग किसे कहते हैं ?

.....

3. आध्यात्मिकता की प्रक्रिया क्या है ?

.....

4. श्री अरविन्द के अनुसार विकास के कितने चरण हैं तथा उनके नाम भी लिखिए।

.....

### 11.5 श्री अरविन्द के योग दर्शन

श्री अरविन्द गीता ग्रन्थ के अनन्य उपासक थे। आपने गीता में निहित कर्म योग एवं ध्यान योग का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से व्याख्या की है। इनके अनुसार मानव एवं दिव्य शक्ति का संयोग या मिलन ही योग है। अरविन्द के अनुसार योग वह साधन है जिसके अभ्यास करने से मनुष्य दिव्य शक्ति की अनुभूति करता है। श्री अरविन्द मानव को योग के माध्यम से आत्मतत्त्व की अनुभूति कर ब्रह्म में एकाग्रचित्त होने का उपदेश नहीं देते थे अपितु वे इसके द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति को अज्ञान, अधकार, मृत्यु से ज्ञान, प्रकाश और अमरता की ओर ले जाना चाहते थे। इसलिए इनकी इस विचार धारा या कथन को समग्र योग दर्शन कहा जाता है।

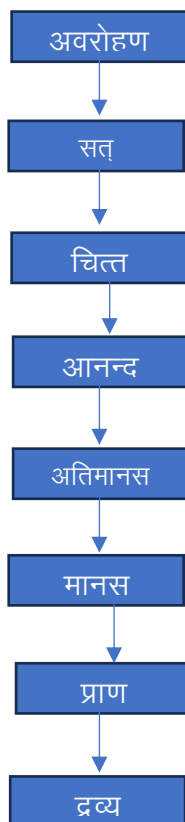
### 11.6 श्री अरविन्द के सर्वांग योग दर्शन की तत्त्व मीमांसा

महर्षि अरविन्द के अनुसार इस संसार का निर्माता ईश्वर है। अब मन में यह जिज्ञासा होती है कि इस

संसार का निर्माण किसने किया है। अरविन्द ने इस संकल्पना की पुष्टि विकास के सिद्धान्त के आधार पर की है। श्री अरविन्द के अनुसार विकास के दो चरण हैं –

1. अवरोहण 2. आरोहण

महर्षि अरविन्द ने अवरोहण के सात सोपानों का वर्णन किया है। जो निम्नवत् हैं –



द्रव्य रूपी इस संसार में मानव अपने द्रव्य अवस्था से आरोहण के कारण सत् की तरफ आगे बढ़ता है। अरविन्द ने इसमें भी सात सोपानों की चर्चा की है।

द्रव्य → प्राण → मानस → अतिमानस → आनन्द → चित्त → सत्

श्री अरविन्द ब्रह्म को सत् और ईश्वर को सत्-चित्त-आनन्द के रूप में स्वीकार करते हैं। श्री अरविन्द के अनुसार मनुष्य जीवन का उद्देश्य सत्य + चित्त + आनन्द अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति से है। मनुष्य के विकास के विषय में श्री अरविन्द का विचार है कि मनुष्य के भौतिक विकास के लिए द्रव्यज्ञान का होना अत्यन्त जरूरी है। यह ज्ञान इन्द्रियों द्वारा प्राप्त की जा सकती है। जबकि मनुष्य के आत्मिक विकास के लिए आत्म ज्ञान का होना आवश्यक है जो मनुष्य को योग की क्रियाओं यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि से प्राप्त होती है। इस प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए श्री अरविन्द का मानना है कि इसके लिए स्वस्थ शरीर, सुन्दर मन और संयमित जीवनचर्या का होना नितान्त आवश्यक है।

### 11.7 श्री अरविन्द के सर्वांग योग दर्शन की ज्ञान एवं तर्क मीमांसा

महर्षि अरविन्द का कथन है कि भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों तत्वों में ब्रह्म ही मूल तत्व है। भौतिक एवं आध्यात्मिक तत्वों के मध्य भेद को समझना ही सत्य ज्ञान है। अरविन्द ने ज्ञान को दो तत्वों में विभक्त किया है, जो निम्नवत् हैं—

1. द्रव्य ज्ञान
2. आत्म ज्ञान

अरविन्द के अनुसार द्रव्य ज्ञान से आशय जगत ज्ञान से है और इसे वे सामान्य ज्ञान मानते हैं जबकि आत्मज्ञान को श्री अरविन्द उच्च ज्ञान की संज्ञा प्रदान करते हैं। अरविन्द के अनुसार वस्तु जगत का ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा और आत्म तत्त्व का ज्ञान अंतःकरण द्वारा अर्जित किया जाता है। आत्म तत्त्व के ज्ञान के लिए योग के निम्न क्रियाओं को श्री अरविन्द आवश्यक मानते हैं जो निम्नवत हैं –

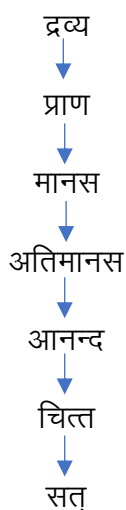
यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि।

---

## 11.8 श्री अरविन्द के सर्वांग योग दर्शन की मूल्य एवं आचार मीमांसा

---

श्री अरविन्द ने सर्वांग योग दर्शन में आरोहण के सात सोपानों का वर्णन किया है।



अरविन्द के अनुसार बालक या मनुष्य द्रव्य, प्राण एवं मानस के चरण को जन्म के समय से ही पूर्ण कर चुका होता है। इसके बाद की अवस्था में उसे अतिमानस की स्थिति को प्राप्त कर परम आनन्द को प्राप्त करना होता है। इस दर्शन के अनुसार मनुष्य के जीवन का अन्तिम उद्देश्य आनन्द, चित्त और सत् को प्राप्त करना है। अरविन्द के अनुसार मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन निष्काम भाव से तभी पूर्ण कर सकता है जब वह सत्, चित्त और आनन्द में ध्यान लगाकर किसी कार्य को पूर्ण करे। मनुष्य अपने सत् कर्म को तभी अच्छे ढंग से पूर्ण कर सकता है जब वह शारीरिक रूप से स्वस्थ हो, मन में किसी प्रकार का विकार न हो और उसके जीवन में संयम हो। अरविन्द के अनुसार यह योग की पद्धति यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और समाधि के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।

---

## 11.9 योग एवं दर्शन की अभिरुचि

---

कारागार में रहते हुए ही श्री अरविन्द ने आध्यात्मिक साधना की तथा उन्हें ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके पूर्व वे 1907 ई. में जब बड़ौदा में थे तो एक प्रसिद्ध योगी विष्णु भास्कर लेले के संपर्क में आये और योग – साधना की विद्या प्राप्त की। जेल से मुक्त होकर वे 4 अप्रैल 1910 को पांडिचेरी चले गये और उन्होंने अपना जीवन अनन्त सत्य की खोज में लगा दिया। सतत साधना द्वारा उन्होंने अपनी आध्यात्मिक दार्शनिक विचारधारा का विकास किया।

### 11.9.1 अरविन्द की दार्शनिक विचारधारा

श्री अरविन्द के दर्शन का लक्ष्य "उदात्त सत्य का ज्ञान" है जो "समय" जीवन-दृष्टि द्वारा प्राप्त होता है। समय जीवन-दृष्टि मानव के ब्रह्म में लीन होने या उनसे एकाकार होने पर विकसित होती है। ईश्वर के प्रति पूर्ण आस्थावान व्यक्ति 'अति मानव' बन जाता है अर्थात् वह सत्, रज व तम की प्रवृत्ति से ऊपर उठ कर ज्ञानी बन जाता है। अतिमानव की स्थिति में व्यक्ति सभी प्राणियों को अपना ही रूप समझता है। जब व्यक्ति शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से एक हो जाता है तब ऐसी स्थिति में उसके अन्दर दैवीय शक्ति का बोध होने लगता है।

अरविन्द ने मानव को ज्ञानवान, निरोगी एवं चरित्रवान होने के लिए योग की शिक्षा प्राप्त करने हेतु अभिप्रेरित किया है। योग क्रिया के द्वारा व्यक्ति को मानसिक शांति एवं संतोष की प्राप्ति होती है। अरविन्द के अनुसार योग का अर्थ जीवन को त्यागना नहीं है बल्कि ईश्वरीय शक्ति पर आस्था रखते हुए जीवन की विभिन्न समस्याओं एवं चुनौतियों का सामना करना है। अरविन्द के अनुसार योग कठिन आसन व प्राणायाम तक ही सीमित नहीं है अपितु ईश्वर के प्रति निष्काम भाव से आत्म समर्पण करना तथा मानसिक शिक्षा द्वारा स्वयं को दैवीय स्वरूप में परिवर्तित करने से है।

अरविन्द ने मस्तिष्क की धारणा स्पष्ट करते हुए कहा कि मस्तिष्क के विचार-स्तर चित्त, मनस, बुद्धि तथा अन्तर्ज्ञान होते हैं जिनका क्रमशः विकास होता है। अन्तर्ज्ञान में व्यक्ति को अज्ञान से संदेश प्राप्त होता है जो ब्रह्म ज्ञान का परिचायक है। अरविन्द ने अपनी शिक्षा में अन्तर्ज्ञान को विशेष स्थान दिया है। श्री अरविन्द ने कहा है कि शिक्षक को अपने शिष्य की प्रतिभा का नैतिक – कार्य द्वारा दमन एवं शोषण नहीं करना चाहिए। वर्तमान शिक्षा पद्धति में विद्यार्थियों की प्रतिभा के विकास हेतु अवसर नहीं दिया जाता। अरविन्द के अनुसार यह एक चिन्ता का विषय है। शिक्षक को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विद्यार्थियों की प्रतिभा के विकास के लिए उनके प्रति उदार एवं सरल दृष्टिकोण को अपनाना चाहिए।

अरविन्द की मस्तिष्क की धारणा की परिणति 'अतिमानस' की कल्पना व उसके अस्तित्व में है। अतिमानस चेतना का उच्चतम स्तर है तथा दैवी आत्म शक्ति का रूप है। अतिमानस की स्थिति तक धीरे-धीरे पहुँचना ही शिक्षा का परम लक्ष्य होना चाहिए। अरविन्द के अनुसार भारतीय प्रतिभा की तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं—

1. आत्म ज्ञान 2. सर्जनात्मकता 3. बुद्धिमत्ता।

## बोध प्रश्न

### टिप्पणी

(क) नीचे दिये हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

5. अरविन्द के अनुसार वर्णित भारतीय प्रतिभा की तीन विशेषताएँ लिखिए।

.....

6. अन्तर्ज्ञान में व्यक्ति को कहाँ से संदेश प्राप्त होता है ?

.....

अरविन्द देशवासियों के अन्दर इन्हीं प्राचीन आध्यात्मिक शक्तियों को विकसित करने हेतु संदेश प्रदान कर उनके अन्दर भारतीय पुनर्जागरण की अलख जगाना चाहते थे।

**अरविन्द के शब्दों में** – “भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान जैसी उत्कृष्ट उपलब्धि बगैर उच्च कोटि के अनुशासन के अभाव में संभव नहीं हो सकती जिसमें कि आत्मा व मस्तिष्क की पूर्ण शिक्षा निहित है।” इस प्रकार श्री अरविन्द के दर्शन की चरम परिणति उनके शैक्षिक दर्शन में स्पष्ट दिखाई देती है।

## 11.10 अरविन्द की शिक्षा पद्धति की संकल्पना

अरविन्द ऐसी शिक्षा पद्धति को अपनाना चाहते थे, जो शिक्षार्थी के ज्ञान के स्तर को ऊँचा उठा सके जो उनकी स्मृति, निर्णयन शक्ति एवं सृजनात्मकता की क्षमता का समुचित विकास कर सके। उनके अनुसार शिक्षार्थियों को शिक्षा मातृभाषा में प्रदान की जानी चाहिए। श्री अरविन्द राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति को भारतीय परम्परा एवं आवश्यकतानुसार लागू करना चाहते थे। उन्होंने शिक्षा द्वारा पुनर्जागरण का संदेश दिया था। यह पुनर्जागरण तीन दिशाओं की ओर उन्मुक्त होना चाहिए:—

- (1) प्राचीन आध्यात्म-ज्ञान को पुनः स्थापित किया जाय।

- (2) आध्यात्म-ज्ञान का दर्शन, साहित्य, कला, विज्ञान, व विवेचनात्मक ज्ञान के प्रयोग पर बल।
- (3) वर्तमान समस्याओं का भारतीय आत्म-ज्ञान की दृष्टि से समाधान तथा उसके नित नये खोज एवं आध्यात्म से पूर्ण समाज की स्थापना।

श्री अरविन्द के शैक्षिक विचार महात्मा गांधी द्वारा लागू किए गए शिक्षा पद्धति के समान हैं। अरविन्द की ऐसी मान्यता थी कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के अन्दर ऐसा विश्वास उत्पन्न करते से है कि मानसिक तथा आत्मिक दृष्टि से व्यक्ति पूर्ण सक्षम हो तथा वह धीरे-धीरे अतिमानव की स्थिति में पहुँच जाय। अरविन्द के अनुसार – “मस्तिष्क का उच्चतम सीमा तक पूर्ण प्रशिक्षण होना चाहिए अन्यथा बालक अपूर्ण तथा एकांगी रह जायेगा। अतः शिक्षा का लक्ष्य मानव – व्यक्तित्व के समेकित विकास हेतु अतिमानस का उपयोग करना है।”

श्री अरविन्द के योग को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम ब्रह्म की प्राप्ति तथा सत्य से साक्षात्कार। यही भारतीय परम्परा का सदैव लक्ष्य रहा है। द्वितीय पक्ष, प्रथम पक्ष से अधिक कठिन है। इसके अंतर्गत दिव्य प्रकाश के द्वारा जड़, जगत, शरीर, प्राण तथा मन का रूपान्तर विद्यमान होता है। सत्य के दर्शन मात्र से हमारा दुख दूर नहीं हो सकता। हमें इस सत्य को स्थायी बनाना होगा जिससे कि हमारी सहज प्रकृति बन सके।

इसी अर्थ में उन्होंने लिखा है – “मेरा योग ब्रह्म साक्षात्कार से समाप्त नहीं होता बल्कि प्रारम्भ होता है।” यहीं पर उनका अतिमानस का सिद्धान्त आता है। वर्तमान युग का मनुष्य साधारण चेतना की स्थिति में रहता है जो कि सत्य को केवल आंशिक रूप में ही ग्रहण कर सकती है। कुछ योगियों ने इस सीमा का अतिक्रमण भी किया है परन्तु सर्वसाधारण की समस्या जहाँ की तहाँ रही। अतिमानस ही सत्य को ग्रहण करता है।

## बोध प्रश्न

### टिप्पणी

(क) नीचे दिये हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए

7. किसका कथन है –

“मेरा योग ब्रह्म साक्षात्कार से समाप्त नहीं होता बल्कि प्रारम्भ होता है।”

8. अरविन्द के योग को हम कितने भागों में विभक्त कर सकते हैं और उन भागों के नाम भी लिखिए।

9. श्री अरविन्द बालकों को किस भाषा में शिक्षा देने के पक्षधर थे ?

## 11.10.1 अरविन्द के अनुसार पाठ्यक्रम

श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा का माध्यम मातृभाषा में होनी चाहिये, इस बात पर वे बराबर बल देते रहे। इसके विषय में उनका मत था कि शिक्षा सबसे अधिक प्रभावपूर्ण तभी हो सकती है, जब उसे अज्ञात रूप से आत्मसात् कर लिया जाता है। कोई भी विदेशी भाषा कितनी ही समृद्ध क्यों न हो, उसके अपने अलग विचार व संदर्भ होते हैं, उसका अलग वातावरण होता है। ऐसी स्थिति में बालक उन संदर्भों और वातावरण से परिचित नहीं होता, इसलिये वे उसके मन मस्तिष्क पर भार – स्वरूप हो जाते हैं। जब बालक कोई बात विदेशी भाषा में सुनता है। तब उसका ध्यान विषय और भाषा के बीच में विभाजित हो जाता है, जबकि मातृभाषा में सिखायी गयी बात से

बालक का ध्यान विचलित नहीं होता है।

उपरोक्त के आलोक में श्री अरविन्द ने विदेशी भाषा के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा को संकुचित, औपचारिक एवं असाहित्यिक बताकर उसका न केवल विरोध किया अपितु उसे नकारने हेतु जीवन भर संघर्ष किया। उन्होंने शिक्षा को भारतीय दर्शन, आदर्श, कला, साहित्य एवं संस्कृति पर आधारित करने पर बल दिया। इसके साथ ही ये स्वदेशी भाषा के ज्ञान को भी महत्वपूर्ण मानते थे। श्री अरविन्द ने अपने पाठ्यक्रम में अनेक विषयों की शिक्षा के साथ क्रियाओं और पाठ्य सहगामी क्रियाओं की शिक्षा को विशेष महत्व दिया है।

श्री अरविन्द ने बालकों में इन्द्रियों एवं मानसिक शक्तियों के संवर्धन हेतु प्रशिक्षण पर बल दिया।

### इन्द्रियों का प्रशिक्षण

श्री अरविन्द ने इस बात पर बल दिया कि बालकों की शिक्षा का प्रारम्भ उनके इन्द्रियों आँख, कान, नाक, जीभ एवं त्वचा के प्रशिक्षण से प्रारम्भ होनी चाहिए। उनके अनुसार इन इन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों में कोई अपूर्णता है तो उसे उपचार के माध्यम से अविलम्ब ठीक करने का प्रयास किया जाना चाहिए। यदि मनुष्य की नाड़ियों में कोई विकार है जिसका निवारण चिकित्सा से पूरा नहीं होता तो ऐसी परिस्थिति में श्वास क्रिया की विकृति को यौगिक अनुशासन के द्वारा दूर किया जा सकता है। ज्ञानेन्द्रियों के प्रयोग हेतु मनुष्यों को अधिकाधिक अभिप्रेरित करना चाहिए। ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग कम करने से उनकी क्षमता में कमी आ जाती है। अतः ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण के लिए विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में मनुष्यों को रखकर उन्हें ज्यादा से ज्यादा इसके प्रयोग के लिए अभिप्रेरित करना चाहिए।

### मानसिक प्रशिक्षण

श्री अरविन्द बालकों के इन्द्रिय प्रशिक्षण के साथ ही उनके मानसिक प्रशिक्षण पर भी बल देते हैं। मानसिक शक्तियों के विकास के प्रशिक्षण में ध्यान को केन्द्रित करना अत्यन्त ही आवश्यक है। किसी कार्य में ध्यान केन्द्रित करके ही लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है तथा लक्ष्य की प्राप्ति अभ्यास के द्वारा ही सम्भव है। मानसिक प्रशिक्षण प्रदान करने से बालकों में निरीक्षण शक्ति, कण्ठस्थीकरण करने की शक्ति, निर्णयन शक्ति, कल्पना शक्ति के साथ ही तार्किक शक्ति का विकास सुलभता के साथ किया जा सकता है। अतः हम कह सकते हैं उपयुक्त सभी प्रकार की मानसिक शक्तियों का विकास ब्रह्मचर्य के द्वारा पूर्ण किया जा सकता है। श्री अरविन्द ने मस्तिष्क, हृदय, इन्द्रिय एवं विचारों की शुद्धता के लिए ब्रह्मचर्य को आवश्यक मानते हैं। ब्रह्मचर्य के पालन से आध्यात्म जगत में प्रवेश प्राप्त करने में सुविधा होती है।

---

## 11.11 श्री अरविन्द की एकीकृत शिक्षा

---

श्री अरविन्द के अनुसार ब्रह्म संसार में निहित और संसार से दूर भी है। दर्शन जिसे ब्रह्म मानता है उसे ही धर्म ईश्वर के रूप में स्वीकार करता है। ईश्वर पालनहार, सृष्टि निर्माता, अनन्त, पूर्णमुक्त परमात्मा है। ईश्वर परम पुरुष है और ब्रह्म निरपेक्ष सत्ता। अतः हम कह सकते हैं ईश्वर और ब्रह्म दोनों एक ही है। ईश्वर प्रकट हुए हैं जब कि ब्रह्म स्वरूप में स्वीकार किए जाते हैं।

संसार को प्रगतिशील एवं परिमार्जित करने वाली शक्ति चित् है। यह चेतन शक्ति शुद्ध सत्ता का भाग है। अरविन्द के अनुसार सर्वोच्च शक्ति गतिमान के साथ-साथ स्थिर भी है। इसी चेतन शक्ति को अरविन्द ने माता की संज्ञा दी है। माता देवत्व एवं सृजनकर्त्ता तत्व है। श्री अरविन्द के अनुसार मानवता, विश्वात्मा एवं परमात्मा तीनों ही परम सत्य है।

संसार में दिव्य जीवन की स्थापना के लिए पूर्ण योग का होना परम आवश्यक है। दिव्य जीवन में प्रेम, सहानुभूति एवं प्रत्यक्ष पूर्ण ज्ञान का कार्य करता है। पूर्ण योग की क्रिया जीवात्मा के अतिमानस, विश्वात्मा एवं परमात्मा में प्रवेश का साधन है। श्री अरविन्द के अनुसार जिस योग की हम साधना करते हैं वह केवल हमारे लिए उपयोगी नहीं, प्रत्युत भगवान के लिए है। इस योग के लिए आत्म समर्पण, दिव्य शक्ति की क्रिया को अपने अन्दर देखना तथा सभी वस्तुओं को भगवान के रूप में देखना आवश्यक है। अरविन्द अतिमानस को सत्यवृत्ति भी कहते हैं। यह एक प्रकार की रचनात्मक वृत्ति है, जिसे सत्य चेतना भी कहा गया है। मानस के लिए जो अप्राप्त है, वह अतिमानस के लिए सुलभ है। मानस के दोषों को अतिमानस द्वारा दूर किया जा सकता है। अतिमानस के प्रकट

होने से मानस प्राणी दिव्य-प्राणी में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में दिव्यगति में दिव्य चेतना अनेकों रूपों में कार्य करने लगती है। दिव्य व्यक्ति आध्यात्मिक आरोहण के साथ सुख-दुख में समान भाव वाला हो जायेगा।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी

(क) नीचे दिये हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए

10. श्री अरविन्द ने किन प्रशिक्षणों पर बल दिया है ?

.....

11. श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा को किस पर आधारित होना चाहिए।

.....

### 11.12 श्री अरविन्द आश्रम

श्री अरविन्द अपने जीवन काल में राजनीति को छोड़कर आध्यात्मिक काम को पूर्ण करने के लिए पांडिचेरी गये। उन्होंने यहाँ 'योगाश्रम' की स्थापना की। अरविन्द के इस आश्रम की कीर्ति पूरे संसार में प्रचारित एवं प्रसारित हुयी। श्री अरविन्द को इस आश्रम में उनके कई अनुयायी प्राप्त हुए। श्री अरविन्द अपने जीवन काल में हमेशा एकांत में रहकर आध्यात्म पर चिन्तन एवं मनन करते थे। सन् 1914 से 1921 तक उन्होंने 'आर्य' नाम का आध्यात्मिक मासिक पत्रिका का संचालन किया।

अरविन्द के आश्रम में बालकों के शारीरिक श्रम हेतु शारीरिक शिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध किया गया है। इस आश्रम में आध्यात्मिक शिक्षा के साथ ही बालकों के लिए खेलकूद एवं व्यायाम की भी पूर्ण सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। इस आश्रम में शिक्षकों की संख्या कम है और उन्हें वेतन नहीं दिया जाता बल्कि उसके स्थान पर शिक्षकों की आवश्यकताओं की पूर्ति आश्रम के प्रबन्धकों द्वारा किया जाता है। विज्ञान विषयों की पढ़ाई के लिए सुविधायुक्त प्रयोगशालाएँ स्थापित हैं। शिक्षार्थियों की परीक्षा वार्षिक आधार पर न होकर मासिक आधार पर सम्पन्न कराई जाती है।

इस आश्रम में गौशाला भी है। सफाई का कार्य आश्रम में रहने वाले व्यक्ति ही करते हैं। आश्रम में ही कई भाषाओं के मुद्रण हेतु प्रेस स्थापित है। इस आश्रम में सभी को स्वावलम्बी व आत्मनिर्भर बनाने की शिक्षा प्रदान की जाती है। आश्रम में आध्यात्म की शिक्षा पर बल दिया जाता है। इस आश्रम में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति मन, वचन व कर्म से अपने को पवित्र व उत्तम बनाने का प्रयास करते हैं और यहीं इस आश्रम की स्थापना का उद्देश्य भी है।

पांडिचेरी में उन्होंने आध्यात्मिकता का अभ्यास किया और सम्पूर्ण योग विद्या का ज्ञान प्राप्त किया। श्री अरविन्द द्वारा ये सब करने का मुख्य उद्देश्य मानवता का विकास करना और मानवीय जीवन को और अधिक सुन्दर बनाना था। उन्होंने आध्यात्मिक सहकर्मियों, मित्रों एवं माता की मदद से श्री अरविन्दो आश्रम की स्थापना की। उनका प्रमुख साहित्यिक काम जीवन को सुन्दर एवं गरिमामयी बनाना था। उनके द्वारा रचित सावित्री एक महाकाव्य की कविता है जिसके अन्दर महाराष्ट्र को परिभाषित किया गया है, जहाँ उनके चरित्र को सम्पूर्ण योग करते हुए दर्शाया गया है। वे दर्शनशास्त्री, कवि, अनुवादक थे। वे वेद, उपनिषद और भगवत् गीता पर लिखने का भी काम किया करते थे। 1943 में साहित्य के नोबेल पुरस्कार के लिए उनके नाम की संस्तुति की गयी थी और 1950 के शांति के नोबेल पुरस्कार के लिए भी उनका नाम चयनित किया गया था। महात्मा गांधी जी के अहिंसा के तत्व का पालन करते हुए भारत में मानवीय जीवन का विकास और लोगों की आध्यात्मिकता को बदलना चाहते थे। उनके पिता के पढ़े-लिखे होने की वजह से उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में बहुत सहायता मिली, और इसी वजह से वे आसानी से अंग्रेजी भाषा सीख गये परन्तु अंग्रेजी भाषा का ज्ञान रखने के बाद भी वे भारत में हिंदी को अधिक

महत्व देते थे शायद ही हमें श्री अरविन्दों जैसा नाम इतिहास में सुनने को मिलेगा। श्री अरविन्द द्वारा रचित ग्रंथसंपत्ती दी लाइया दिव्हाईन, अहिंसात्मक प्रतिकार का सिद्धान्त, भारतीय नवजीवन वेद – रहस्य, यौगिक समन्वय आदि ग्रंथ आज भी बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त 'सावित्री' नाम की कविता भी उनके द्वारा लिखी गयी। 5 दिसंबर 1950 को अरविन्द घोष का देहावसान हो गया।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी

(क) नीचे दिये हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए

12. एकीकृत शिक्षा व्यवस्था पर किसने बल दिया था ?

.....

13. अरविन्द द्वारा किस पत्रिका का लेख संचालन किया गया।

.....

14. अरविन्द आश्रम कहाँ स्थित है।

.....

### 11.13 सारांश

प्रस्तुत अध्याय में श्री अरविन्द के जीवन पर प्रकाश डालने के साथ ही विदेशी सभ्यता से मोह भंग एवं भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के आधार पर बालकों को मातृभाषा में शिक्षा देने पर बल दिया गया है। श्री अरविन्द बालकों के इन्द्रियों एवं मानसिक प्रशिक्षण पर बल देते थे। श्री अरविन्द ने योग विद्या को भी शिक्षार्थियों को उपलब्ध कराना चाहिए। ऐसा कुछ विद्वानों का मानना है कि एक दार्शनिक के रूप में श्री अरविन्द ने भारत की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर जिस सर्वांग योग दर्शन का विकास किया है। उसे कई दार्शनिकों द्वारा सराहा गया। श्री अरविन्द शिक्षार्थियों के लिए मुक्त शिक्षा की व्यवस्था हेतु निरन्तर कार्य करते रहे। अरविन्द आश्रम एक अनूठे उदाहरण के रूप में आज तक अलौकिक है। श्री अरविन्द ने एकीकृत शिक्षा व्यवस्था को भी अत्यधिक महत्व प्रदान किया है। आपके अनुसार शिक्षा को मानव-आत्मा की माँगों की पूर्ति करनी चाहिए। इसके लिए पांडिचेरी में योग आश्रम की स्थापना की, इस आश्रम में लोगों को आध्यात्मिक चिन्तन की शिक्षा प्रदान की जाती है। उपरोक्त वर्णित अध्याय में वे क्रिया के माध्यम से व्यवहारिक पक्ष पर बल देते हैं। उनका ऐसा विचार है कि प्रत्येक धार्मिक संगठनों को समाज के व्यक्तियों को सच्चे धर्म की शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। मनुष्य को अन्धविश्वासों पर विश्वास न करते हुए सत्य पर आधारित तथ्यों को ही अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के आलोक में आत्मसात करना चाहिए।

### 11.14 अभ्यास के प्रश्न

1. श्री अरविन्द की दार्शनिक विचारधारा का वर्णन कीजिए।
2. श्री अरविन्द के जीवनवृत्त पर प्रकाश डालिए।
3. श्री अरविन्द के शिक्षा पद्धति की विवेचना कीजिए।
4. श्री अरविन्द के अनुसार दिए गये पाठ्यक्रम की विवेचना कीजिए।
5. श्री अरविन्द के द्वारा स्थापित आश्रम पर प्रकाश डालिए

---

### 11.15 चर्चा के बिन्दु

---

1. श्री अरविन्द के द्वारा प्रतिपादित समग्र योग की चर्चा कीजिए।

---

### 11.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

1. 11 अगस्त सन् 1872
2. समग्र योग एक ऐसी अभ्यास व क्रिया है जो व्यक्ति को यौगिक दिनचर्या अथवा जीवन जीने की कला की ओर उन्मुख करता है। मनुष्य प्रमाणिक योग अभ्यासन को सर्वप्रथम सीखता है और उसमें निहित एवं वर्णित अभ्यासों का पालन करके उसे अपने दैनिक जीवन में आत्मसात करता है। ऐसा करने से शरीर, मन और आत्मा में संचित बुराइयों एवं अशुद्धियों को दूर करने में सहायता पहुँचाता है।
3. यह प्रक्रिया संपूर्ण योग का द्वितीय चरण है इस प्रक्रिया में व्यक्ति स्वयं को आध्यात्मिक ज्ञान से जोड़कर चिंतन, मनन एवं स्वाध्याय व स्वावलंबन के माध्यम से दिव्य ज्ञान प्राप्त करने हेतु अपना अधिकतम प्रयास करता है।
4. श्री अरविन्द के अनुसार विकास के दो चरण है –
  1. अवरोहण
  2. आरोहण
5. आत्मज्ञान, सृजनात्मकता एवं बुद्धिमत्ता
6. अज्ञानता में
7. श्री अरविन्द
8. अरविन्द के योग को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं –
  1. ब्रह्म की प्राप्ति
  2. सत्य से साक्षात्कार
9. मातृभाषा में
10. इन्द्रियों एवं मानसिक शक्तियों के संवर्धन के प्रशिक्षण पर बल दिया
11. अरविन्द के अनुसार शिक्षा को भारतीय दर्शन, आदर्श, कला, साहित्य एवं संस्कृति पर आधारित होना चाहिए।
12. श्री अरविन्द ने
13. आर्य
14. पांडिचेरी

---

### 11.17 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

1. प्रो. रामशकल पाण्डेय (2008) : विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा-शास्त्री, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
2. डॉ. सी.एस. शुक्ला (2011) : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्री आधार, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
3. प्रो. रमन बिहारी लाल एवं डॉ. गजेन्द्र सिंह तोमर (2017) : विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिंतक, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
4. सफाया, शैदा एवं शुक्ला (2005) : उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षक, धनपत राय पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।

---

## इकाई — 12 : मंत्र के साथ सूर्य नमस्कार एवं आसन

---

### इकाई की संरचना

- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 इकाई के उद्देश्य
- 12.3 सूर्य नमस्कार
- 12.4 सूर्य नमस्कार हेतु प्रयुक्त मंत्रों के प्रयोग की विधि
- 12.5 सूर्य नमस्कार की विभिन्न मंत्र
- 12.6 सूर्य नमस्कार के विभिन्न आसन एवं उनकी स्थितियां
- 12.7 सूर्य नमस्कार के महत्व
- 12.8 सूर्य नमस्कार से होने वाले लाभ
- 12.9 सूर्य नमस्कार के समय ली जाने वाली सावधानियां
- 12.10 सारांश
- 12.11 अभ्यास के प्रश्न
- 12.12 चर्चा के बिन्दु
- 12.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 12.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

### 12.1 प्रस्तावना

---

सूर्य नमस्कार का सम्बन्ध सूर्य भगवान की पूजा, वंदना तथा आराधना से है। यह सनातनी भारतीय व्यायाम पद्धति है। स्नान के पश्चात पूर्व दिशा की ओर खड़े होकर शांत मन से सूर्य देव का ध्यान कर उनकी स्तुति करते हुए सूर्य नमस्कार किया जाता है। सूर्य नमस्कार के अन्दर शारीरिक व्यायाम के साथ ही साथ आध्यात्मिकता का भाव भी निहित होता है। संसार को ऊर्जा रूपी शक्ति, ऊर्जा एवं प्रकाश देने वाले, विभिन्न ऋतुओं का सृजन करने वाले के रूप में, खाद्य पदार्थ उत्पन्न करने वाले सूर्य भगवान की आराधना करने से प्रातः काल की किरणें मनुष्य के ऊपर पड़ती है तब ऐसी स्थिति में उनके अंदर एक अलग प्रकार की ऊर्जा शक्ति का संचार होता है और शरीर निरोगी भी होता है। सूर्य की ऊर्जा से शरीर को विटामिन डी की प्राप्ति होती है और रक्त शुद्ध होता है तथा हड्डियां एवं फेफड़े मजबूत होते हैं। प्रस्तुति इकाई में सूर्य नमस्कार की अवस्थाएं, सूर्य नमस्कार के विभिन्न मंत्र एवं सम्बन्धित आसन के सम्बन्ध में विवेचना की गई है।

---

### 12.2 इकाई के उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जाएंगे की—

1. सूर्य नमस्कार के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. सूर्य नमस्कार के विभिन्न अवस्थाओं से परिचित हो सकेंगे।
3. सूर्य नमस्कार के मंत्रों का उच्चारण कर सकेंगे।
4. सूर्य नमस्कार से संबंधित आसनों को कर सकेंगे।
5. सूर्य नमस्कार से क्या लाभ है उसके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

---

## 12.3 सूर्य नमस्कार

---

सूर्य हमारी आध्यात्मिक चेतना का शक्तिशाली प्रतीक है। सूर्य नमस्कार का अर्थ सूर्य देव को नमन या प्रणाम से है। सूर्य के कारण ही यह संसार है। सूर्य के प्रकाश को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह श्वेत है परंतु यह सप्त वर्णों की प्रकाश की किरणों का मिश्रण है। सूर्य नमस्कार से मनुष्य का शारीरिक विकास तो होता ही है, साथ ही साथ आध्यात्मिकता का विकास भी होता है। सूर्य नमस्कार के समय जो स्तुतियां की जाती हैं उससे मनुष्य का मन एवं मस्तिष्क ध्यान केंद्रित करने के कारण एकाग्रचित्त हो जाता है और इसके कारण परम सुख एवं शांति का अनुभव होता है। सूर्य नमस्कार की परम्परा हमें ऋषियों एवं मुनियों के द्वारा प्राप्त हुई है। सृष्टि के संरक्षक, संवाहक एवं अन्नदाता होने के कारण सूर्य का महत्व अत्यधिक बढ़ जाता है। प्राचीन काल में दैनिक क्रियाकलापों में सूर्य उपासना के महत्व को देखा जा सकता है जो आज भी मानव करता चला आ रहा है। सूर्य नमस्कार सूर्योदय के समय पूर्वाभिमुख होकर जब किया जाता है तो प्रकाश के मूल रंगों की तीन किरणें हमें निरोगी बनाती हैं।

---

## 12.4 सूर्य नमस्कार हेतु प्रयुक्त मंत्रों के प्रयोग की विधि

---

सूर्य नमस्कार के लिए सबसे उपयुक्त समय प्रातः काल की बेला में सूर्योदय के समय होता है। स्वच्छ मन से प्रसन्न होकर सुविधाजनक ढीले परिधान को धारण कर शांत एवं मनमोहक वातावरण में अभ्यास करना चाहिए। प्रातः काल (सूर्योदय) एवं सायंकाल (सूर्यास्त) के समय अभ्यास करने से सूर्य के द्वारा जो किरणें निकलती हैं वे हानिकारक नहीं होती। वैसे यह अभ्यास किसी भी समय किया जा सकता है बस इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अभ्यास के समय पेट खाली होना चाहिए। अभ्यास की शुरुआती अवस्था में साधक को अपने शरीर का ध्यान रखते हुए दो या तीन बार अभ्यास करना चाहिए। सूर्य नमस्कार प्रारंभ करने से पहले मनुष्य को अपने संपूर्ण शरीर के प्रति सचेष्ट होना चाहिए और उसके साथ सामंजस्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि शरीर में किसी भी प्रकार के तनाव का अनुभव हो रहा है, यदि मनुष्य को तनाव का अनुभव हो कि तलवों के माध्यम से गुरुत्व बल के कारण पृथ्वी में समाहित हो रहा है तब ऐसी परिस्थिति में उस समय यह भी अनुभव करें कि पृथ्वी से जीवन शक्ति आपके अंदर प्रवाहित हो रही है तथा यह क्रिया संपूर्ण व्यक्तित्व को ऊर्जावान बना रही है। इस क्रिया के अंत में सजगता को भूमध्य में ले जाएं और वहां उदीयमान सूर्य का दर्शन करें।

सूर्य की आराधना अथवा सूर्य नमस्कार शुरू करने से पहले निम्नलिखित मन्त्र की स्तुति कर सूर्य को प्रणाम अथवा नमस्कार करें—

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर।

दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोस्तुते॥

सूर्य नमस्कार के सभी मंत्र सूर्य नमस्कार के पूर्व (आह्वान मंत्र) एवं सूर्य नमस्कार के पश्चात् (विसर्जन मंत्र) कहे जाने वाले मंत्र सूर्य नमस्कार की स्थिति में ही वाचन करना चाहिए। सूर्य नमस्कार प्रारम्भ करने से पूर्व निम्नलिखित मंत्र को पढ़ना चाहिए —

ॐ ध्येय सदा सवितृ मंडल मध्यवर्ती,

नारायणः सरसिजासन सन्निविष्टः

केयूर वान मकर कुण्डलगान किरीट,

हारी हिराग्यमय वपुर्धृत शंखचक्रः॥

सूर्य नमस्कार के पूर्ण होने पर निम्नलिखित मन्त्रों के साथ उसका समापन करना चाहिए—

आदित्याय नमस्कारान ये कुर्वन्ति दिने दिने,

दीर्घमार्गुबल्लम् वीर्य तेजस्तै षां ष्जायते,

जन्मान्तर सहस्त्रेणु दारिद्र्यं नोपजायते।

नमो धर्म विधानाय नमस्ते कृत साक्षिने,  
नमः प्रत्यक्ष देवाय, भास्कराय नमो नमः।  
अकाल मृत्यु हरणम् सर्व व्याधि विनाशनम्  
सूर्य पापोदकम् नीर्थम् जठरे धारयाम्यम्॥  
सूर्य नमस्कार आसनों की प्रयोगात्मक तैयारी –

---

## 12.5 सूर्य नमस्कार के विभिन्न मंत्र

---

सूर्य नमस्कार करते समय तथा उनकी आराधना करने के पश्चात प्रत्येक अवस्था के साथ सूर्य भगवान के विभिन्न नामों का उच्चारण करते हुए उनकी आराधना करनी चाहिए।

ॐ मित्राय नमः  
ॐ सूर्याय नमः  
ॐ भानवे नमः  
ॐ रवये नमः  
ॐ खगाय नमः  
ॐ मरीचये नमः  
ॐ पूष्णे नमः  
ॐ हिरण्यगर्भाय नमः  
ॐ आदित्याय नमः  
ॐ सावित्रे नमः  
ॐ अर्काय नमः  
ॐ भास्कराय नमः

---

## 12.6 सूर्य नमस्कार के विभिन्न आसन एवं उनकी स्थितियाँ

---

सूर्य नमस्कार के अंतर्गत 12 स्थितियाँ होती हैं। सूर्य नमस्कार प्रातः काल सूर्य के सामने खड़े होकर करने से अत्यधिक लाभ की प्राप्ति होती है। सूर्य नमस्कार करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सूर्य नमस्कार के समय पेट खाली हो। सूर्य नमस्कार की एक-एक आवृत्ति में अलग-अलग स्थितियाँ होती हैं। प्रत्येक आसन का अपना एक मंत्र है। इसके अंतर्गत सात प्रकार के आसनों से 12 प्रकार की अलग-अलग स्थितियाँ बनाई जाती हैं, जो निम्नानुसार वर्णित हैं –

1. प्रणाम आसन या नमस्कारासन
2. हस्त उत्तानासन
3. पाद हस्तासन
4. अश्व संचालनासन
5. पर्वतासन
6. अष्टांग नमस्कारासन
7. भुजंगासन

8. पर्वतासन (अधोमुख स्वनासन)
9. अश्व संचालनासन
10. पाद हस्तासन
11. हस्त उत्तानासन
12. प्रणामासन

### बोध प्रश्न

**टिप्पणी** (क) नीचे दिए हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलान कीजिए।

1. सूर्य नमस्कार का संबंध किससे है?

.....  
 .....

2. सूर्य नमस्कार कब एवं किस स्थिति में करना चाहिए?

.....  
 .....

3. सूर्य नमस्कार के दो मंत्र लिखिए।

.....  
 .....

4. सूर्य नमस्कार के अंतर्गत कितनी स्थितियां आती हैं?

.....  
 .....

### सूर्य नमस्कार के आसन

#### (1) प्रणामासन या नमस्कारासन —

प्रार्थना की मुद्रा में पंजों को मिलाकर पूर्व दिशा की तरफ सीधे खड़े होना चाहिए। नमस्कार की मुद्रा में दोनों अंगूठों के पर्व अनाहत चक्र पर तथा दोनों प्रकोष्ठ जमीन के समान्तर, कंधे पीछे की ओर सिर सन्तुलित, गर्दन सीधी, व दृष्टि सामने होनी चाहिए।



**सजगता** — सूर्य नमस्कार के समय वक्ष प्रवेश पर तथा ध्यान अनाहत चक्र पर होना चाहिए।

**मंत्र – ॐ मित्राय नमः**

**लाभ** – इस आसन के करने से मनुष्य के शरीर में रक्त का संचार सामान्य रूप में प्रवाहमान होता है। इसे करने से मनुष्य को एकाग्रता एवं शक्ति की प्राप्ति होती है।

## **(2) हस्तउत्तानासन—**

इस आसन में मनुष्य को दोनों भुजाओं को सिर के उपर उठना चाहिए। मनुष्य को दोनों भुजाओं के बीच कन्धों की चौड़ाई के बराबर दूरी बनाए रखना चाहिए। इस अवस्था में मनुष्य को सिर, भुजाओं और धड़ के ऊपरी भाग को थोड़ा सा पीछे की तरफ झुकाना चाहिए। इस आसन के दौरान भुजाओं को ऊपर उठाते समय श्वास लेना चाहिए।



**ध्यान** – इस अवस्था में मनुष्य का ध्यान विशुद्धि चक्र पर तथा मनुष्य की दृष्टि हाथ की उगलियों के पोरों पर होनी चाहिए।

**मंत्र – ॐ रवये नमः**

**लाभ** – इस आसन के अभ्यास करने से मनुष्य के उदर की अतिरिक्त चर्बी हट जाती है तथा पाचन तंत्र अच्छा हो जाता है और फेफड़े मजबूत हो जाते हैं।

## **(3) पादहस्तासन—**

इस आसन में सामने की तरफ झुकते हुए दोनों हाथों के पंजों को पैरों के बगल में स्पर्श कराना चाहिए तथा ललाट को घुटने से स्पर्श कराने के साथ पैरों को सीधा रखना चाहिए।



**श्वास** – इस आसन में मनुष्य को सामने की तरफ झुकते हुए श्वास छोड़ना चाहिए। इस प्रक्रिया में अधिक से अधिक श्वास बाहर निकालने के लिए आमाशय को संकुचित करना चाहिए।

**ध्यान**– इस प्रकार के योग का ध्यान स्वाधिष्ठान चक्र और श्रोणी प्रदेश पर होना चाहिए।

**मंत्र – ॐ सूर्याय नमः**

**लाभ** – इस आसन के करने से आमाशय के रोगों से मुक्ति मिलती है, इसके साथ ही इसके अभ्यास से कब्ज सम्बन्धी विकार दूर होते हैं तथा यह उदर की चर्बी को कम करने में सहायक है। इस आसन को करने से मनुष्य के शरीर में रक्त संचार में सुधार, मेरुदण्ड का लचीला होना तथा उसकी तंत्रिकाओं को शक्ति मिलती है। जिन मनुष्यों के पीठ सम्बन्धी रोग हो, उन्हें पूरी तरह आगे की ओर नहीं झुकना चाहिए। ऐसे मनुष्यों को अपनी क्षमतानुसार ही झुक कर योगासन करना चाहिए।

#### (4) अश्व संचालन –

इस आसन के अंतर्गत मनुष्य को बाएं पैर को जितना सम्भव हो पीछे की तरफ ले जाना चाहिए। बाएं घुटने एवं पाद के पृष्ठ भाग को जमीन से स्पर्श कराना चाहिए। इस आसन में

दाएं पंजे को अपनी जगह पर स्थिर रखते हुए घुटने को मोड़ना चाहिए तथा भुजाओं को सीधा रखना चाहिए। इस आसन के दौरान दोनों हाथ के पंजों को तथा दाएं पैर के पंजे को एक सीधी रेखा में ही बनाए रखना चाहिए।

इस आसन के अन्तिम स्थिति में शरीर का भार दोनों हाथों पर, बाएं पैर का पाद पृष्ठ पर, घुटना एवं दाएं पैर के ऊपर शरीर का भार इस आसन को करते समय स्थित रहेगा। इस आसन में सिर को पीछे झुकाएं, पीठ को धनुषाकार तथा दृष्टि ऊपर की ओर भूमध्य पर केन्द्रित करना चाहिए। इस योगासन के समय पैर को पीछे ले जाते समय सांस को लेना चाहिए।



**ध्यान** – मनुष्य का ध्यान आज्ञाचक्र पर होना चाहिए।

**मन्त्र** – ॐ भानवे नमः

**लाभ** – इस आसन के करने से आमाशय के अंगों की मालिश होती है। पाचन तंत्र में रक्त संचार बढ़ता है तथा इस आसन के करने से पाचन तंत्र की कार्यक्षमता बढ़ जाती है तथा इस आसन के करने से पैरों की मांसपेशियां सुदृढ़ हो जाती हैं।

#### (5) पर्वत आसन – (पर्वतासन के स्थान पर – कहीं- कहीं दण्डासन)

इस आसन के अंतर्गत शरीर के वजन को दोनों हाथ पर स्थिर रखते हुए, दाएं पैर को सीधा करके, बाएं पंजे के पास रखना चाहिए। इस आसन के दौरान नितम्बों को अधिकतम ऊपर की तरफ उठना चाहिए तथा सिर को दोनों भुजाओं के बीच में ले आना चाहिए। नाड़ियां जमीन से ऊपर न उठें और घुटनों की तरफ देखते हुए पैर और भुजाओं को एक सीध में रखना चाहिए। इस आसन के समय दाएं पैर को पीछे ले जाते समय तथा नितम्बों को उठाते समय श्वास को छोड़ना चाहिए।



**ध्यान** – ध्यान विशुद्धि चक्र पर और सजगता नितम्बों को शिथिल करने पर और गले के आसपास होना

चाहिए।

**मंत्र – ॐ खगाय नमः**

**लाभ** – इस आसन के करने से रक्त संचार में वृद्धि होती है तथा चेहरे पर चमक एवं ताजगी आती है। इस आसन के करने से आँखों की रोशनी बढ़ती है और बालों का झड़ना रुक जाता है। इस आसन से भुजाओं व पैरों का व्यायाम होता है। यह आसन मेरुदण्ड के स्नायुओं को पुष्ट एवं दुरुस्त बनाता है। मेरुदण्ड के ऊपरी भाग में रक्त संचार को बढ़ाता है तथा मेरुदण्ड को लचीला भी बनाता है।

**(6) अष्टांग नमस्कारासन –**

इस आसन में घुटने को मोड़ते हुए शरीर को नीचे लाकर अष्टांग नमस्कार की स्थिति बनानी चाहिए। इस आसन में घुटने, छाती तथा टुड्डी को जमीन से स्पर्श कराना चाहिए इस दौरान नितम्ब का थोड़ा भाग उठा रहेगा तथा इस क्रिया में श्वास को बाहर ही रोक कर रखना चाहिए। इस आसन को करते समय श्वसन नहीं करना चाहिए।



**ध्यान** – सूर्य नमस्कार के इस आसन के समय ध्यान को मणिपुर चक्र पर तथा सजगता उदर प्रदेश पर ही रखना चाहिए।

**मंत्र – ॐ पूष्णे नमः**

**लाभ** – इस आसन के करने से छाती व फेफड़ों को शक्ति प्राप्त होती है। पैरों व हाथों की मांसपेशियों को मजबूती प्राप्त होती है तथा वक्ष विकसित होते हैं।

**(7) भुजंगासन –**

इस आसन में नितम्ब और श्रेणी प्रदेश को नीचे लाकर जमीन से स्पर्श कराना चाहिए। कोहनियों को सीधा करते हुए पीठ को धनुषाकार और वक्ष को सर्प की भंगिमा में आगे की ओर ले जाना चाहिए। इस दौरान सिर को पीछे की ओर झुकाना चाहिए।



**श्वास** – इस आसन को करते समय उदर एवं छाती को उपर उठाते समय श्वास लेना चाहिए।

**ध्यान** – इस प्रक्रिया में स्वाधिष्ठान चक्र पर तथा सजगता मेरुदण्ड के शिथिलीकरण पर ध्यान केंद्रित होना चाहिए।

**मंत्र – ॐ हिरण्यगर्भाय नमः**

**लाभ** – पीठ के रक्त संचार में सुधार लाकर मेरुदण्ड की तंत्रिकाओं को शक्ति प्रदान कर उसे लचीला बनाएं रखता है। पाचन तंत्र में तनाव उत्पन्न कर रक्त संचार बढ़ाता है। पाचन क्रिया को क्रियाशील करता है। कब्ज को कम करता है एवं फेफड़ों को सुचारु रूप से कार्य करने हेतु गति प्रदान करता है। दमा, ब्रोकाइटिस एवं सरवाइकल रोगियों के लिए यह लाभकारी आसन है।

#### **(8) पर्वतासन (अधोमुख स्वानासन) –**

यह आसन पर्वतासन के समान है अथवा उसकी पुनरावृत्ति है। भुजंगासन की स्थिति से पर्वत आसन में आ जाए। इस आसन में नितम्बों को ऊपर उठाएं और एड़ियों को जमीन पर ले आएं।



**श्वसन** – इस आसन के दौरान नितम्बों को ऊपर उठाते समय श्वास को छोड़ना चाहिए।

**ध्यान** – ध्यान की स्थिति विशुद्धि चक्र पर रहे तथा सजगता को कंठ क्षेत्र पर केन्द्रित करना चाहिए।

**मंत्र – ॐ मरीचये नमः**

**लाभ** – इस आसन के करने से रक्त संचार में वृद्धि होती है तथा चेहरे पर ताजगी आती है। आंखों की रोशनी बढ़ती है और बालों के झड़ने की गति रुक जाती है। इस आसन से भुजाओं व पैरों का व्यायाम होता है। यह आसन मेरुदण्ड के स्नायुओं को पुष्ट करता है। मेरुदण्ड के ऊपरी भाग में रक्त संचार बढ़ाता है तथा मेरुदण्ड को लचीला बनाता है।

#### **(9) अश्व संचालनासन –**

यह आसन अश्वसंचालन की आंशिक पुनरावृत्ति है। अश्वसंचालन आसन में बायां पैर पीछे ले जाते हैं, जबकि अश्वसंचालनासन स्थिति में दाया पैर पीछे की ओर रहता है।



**श्वास** – इस आसन में पैर को आगे लाते समय श्वास लेना चाहिए।

**ध्यान** – मनुष्य का ध्यान आज्ञाचक्र पर होना चाहिए।

**सजगता** – जांघ से पक्ष तक के खिंचाव अथवा भू मध्य पर सजगता की स्थिति केन्द्रित होनी चाहिए।

### मंत्र – ॐ आदित्याय नमः

**लाभ** – इस आसन के करने से आमाशय के अंगों की मालिश होती है। पाचन तंत्र में रक्त संचार बढ़ता है तथा यह आसन पाचन तंत्र की कार्यक्षमता को बढ़ाता है तथा पैरों की पेशियों को सुदृढ़ भी बनाता है।

#### (10) पादहस्तासन –

यह आसन स्थिति 3 पादहस्तासन की पुनरावृत्ति है। दाहिने पंजे को आगे की तरफ बाएँ पंजे के बंगल में ले आना चाहिए। दोनों घुटनों को सीधा रखना चाहिए। बिना जोर लगाये ललाट को जितना सम्भव हो घुटनों के पास ले जाना चाहिए।।



**श्वसन** – इस आसन में शारीरिक गति करते समय श्वास लेना चाहिए

**ध्यान** – ध्यान स्वाधिष्ठान चक्र पर होना चाहिए तथा सजगता का स्तर श्रोणी प्रदेश पर होना चाहिए।

### मंत्र – ॐ सवित्रे नमः

**लाभ** – इस आसन के करने से आमाशय के रोगों का उन्मूलन होता है, कब्ज को कम करने में सहायता मिलती है तथा उदर की चर्बी को कम करने में भी सहायक है। इस आसन के करने से रक्त संचार में सुधार आता है, मेरुदण्ड लचीला हो जाता है तथा उसकी तंत्रिकाओं को शक्ति मिलती है। जिन्हें पीठ की समस्या हो, उन्हें पूरी तरह आगे की ओर नहीं झुकना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को आवश्यकतानुसार ही झुकना चाहिए।

#### (11) हस्त उत्तानासन –

यह आसन स्थिति 2 हस्त उत्तानासन की पुनरावृत्ति है। इस प्रक्रिया में झुके हुए शरीर को उठाएँ एवं दोनों हाथों को सिर के उपर ले जाएँ। कन्धों की चौड़ाई के बराबर दोनों भुजाओं के बीच दूरी को बनाए रखें। सिर, भुजाओं और धड़ के ऊपरी भाग को थोड़ा पीछे की ओर झुकाए। मनुष्य की दृष्टि हाथों की अंगुलियों के पोरों पर होनी चाहिए तथा हाथों को उपर उठाते समय श्वास लेना चाहिए।



**ध्यान** – ध्यान विशुद्धि चक्र पर तथा सजगता उदर के खिंचाव और फेफड़ों के विस्तार पर होना चाहिए।

**मंत्र – ॐ अर्काय नमः**

**लाभ** – इस आसन के करने से उदर की बड़ी हुई चर्बी कम हो जाती है। पाचन तंत्र अच्छा हो जाता है तथा फेफड़े मजबूत होते जाते हैं।

## **(12) प्रणामासन –**

यह स्थिति क्रमांक 1 प्रणामासन या नमस्कारासन की पुनरावृत्ति है। इस आसन के समय ऊपर उठे हुए हाथों के पंजों को मिलाकर प्रार्थना की मुद्रा बनाकर सीधे खड़े हो जाना चाहिए। इस अवस्था में पूरे शरीर को शिथिल कर दें। इस प्रक्रिया के समय सिर को सन्तुलित, गर्दन को सीधी व दृष्टि को सामने रखना चाहिए। इस योगाभ्यास के समय श्वास छोड़कर सामान्य श्वास-प्रश्वास करना चाहिए।



**ध्यान** – ध्यान अनाहत चक्र पर होना चाहिए।

**मंत्र – ॐ भाष्कराय नमः**

**लाभ** – इस आसन के करने से मानुष्य के शरीर में रक्त का संचार सामान्य रूप में प्रवाहमान होता है। इस आसन के करने से मनुष्य शरीर को एकाग्रता एवं शक्ति की प्राप्ति होती है।

---

## **12.7 सूर्य नमस्कार के महत्व**

---

सूर्य नमस्कार आध्यात्मिक चेतना का प्रतीक है। इनका महत्व हमारे धर्म ग्रन्थों में अनादिकाल से वर्णित है। योग के क्षेत्र में सूर्य नमस्कार का महत्व जीवन शक्ति एवं प्राणदायक अभ्यास के रूप में प्रचलित है। सूर्योपासना प्रकृति की उन शक्तियों को अनुकूल बनाने हेतु की गयी है, जो मनुष्य के नियंत्रण सीमा से बाहर हैं। शारीरिक विकास तथा उसकी गति में वृद्धि लाने के लिए सूर्य नमस्कार का अभ्यास एक प्रभावी अभ्यास है। यह प्राण शक्ति को प्रदान करने वाला है। इसमें शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर ऊर्जा सन्तुलित होती है। इसके अभ्यास से सारे शरीर का व्यायाम हो जाता है।

मेरुदण्ड के बारी-बारी से आगे पीछे मुड़ने के कारण, चूंकि सुषुम्ना का मार्ग मेरुदण्ड ही है, अतः ऊर्जा उर्ध्वमुखी होती है। इससे स्मरण शक्ति, बल, वीर्य व तेज की वृद्धि होती है। यह क्रिया विधि समस्त बीमारियों का नाश करती है। सूर्य नमस्कार से सजकता में वृद्धि तथा अच्छे स्वास्थ्य के लिए सूर्य नमस्कार एक आदर्श अभ्यास है, लेकिन ये सारे लाभ हमें तभी मिलेंगे जब सूर्य नमस्कार की कई आवृत्तियों का नियमित अभ्यास किया जाए सूर्य नमस्कार नियमित करने से मनुष्य को उसके सबसे बड़े शत्रु आलस्य से मुक्ति मिल जाती है।

---

## 12.8 सूर्य नमस्कार से होने वाले लाभ

---

नियमित पांच से पन्द्रह मिनट तक सूर्य नमस्कार करने से निम्नलिखित लाभ की प्राप्ति की जा सकती है—

- सूर्य नमस्कार करने से प्राण शक्ति की प्राप्ति होती है।
- इसको करने से शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर ऊर्जा संतुलित होती है।
- सूर्य नमस्कार के अभ्यास से सारे शरीर का व्यायाम हो जाता है।  
सूर्य नमस्कार मानसिक शांति देता है तथा स्मरण शक्ति बढ़ाता है। बल, वीर्य व तेज की वृद्धि करता है।
- सूर्य नमस्कार के करने से कब्ज से मुक्ति मिलती है तथा यौवन बना रहता है।
- इस आसन के द्वारा स्त्रियां अपने शरीर को आकर्षक, सुंदर व सुडौल बना सकती हैं।
- सूर्य नमस्कार समस्त बीमारियों का नाश करता है।
- नियमित सूर्य नमस्कार करने करने से आयु प्रज्ञा अच्छी बुद्धि बल और तेज की प्राप्ति होती है।
- यह रक्त परिसंचरण, श्वसन और पाचन, प्रणाली सहित समस्त शारीरिक संस्थानों को उद्दीप्त और संतुलित करता है।

---

## 12.9 सूर्य नमस्कार के समय ली जाने वाली सावधानियाँ

---

सूर्य नमस्कार अभ्यास के समय निम्नलिखित, बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. सूर्य नमस्कार का अभ्यास अन्य आसनों से पूर्व करना चाहिए। वैसे तो यह आसन सभी के लिए उपयुक्त है, परन्तु अधिक उम्र के लोगों तथा 8 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए यह आवश्यक नहीं है।
2. मेरुदण्ड की समस्या, उच्च रक्त चाप, हृदय—रोग, हार्निया, रोगग्रस्त व्यक्ति किसी प्रशिक्षक के निर्देशन में ही यह आसन करें।
3. मासिक धर्म आरम्भ होते समय इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।
4. गर्भाधान के पश्चात बारह वें सप्ताह के प्रारम्भ तक थोड़ी सावधानी के साथ यह अभ्यास किया जा सकता है। प्रसव के 40 दिनों के बाद यह अभ्यास पुनः प्रारम्भ कर सकते हैं। क्षमतानुसार धीरे-धीरे अभ्यास को बढ़ाना चाहिए।
5. इस अभ्यास को एक झटके में नहीं अपितु धीरे-धीरे करना चाहिए।

### बोध प्रश्न

टिप्पणी (क) नीचे दिए हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से मिलान कीजिए।

5. हस्तउत्तानासन क्या है?

.....  
.....

6. भुजंगासन करने के लाभ बताइए।

.....  
.....  
7. ॐ भास्कराय नमः मंत्र का उच्चारण किस आसन में किया जाता है?

.....  
.....  
8. सूर्य नमस्कार से होने वाले दो लाभ लिखिए।

.....  
.....  
9. पादहस्तासन को लिखिए।

.....  
.....  
10. सूर्य नमस्कार के समय ली जाने वाली दो सावधानियों को लिखिए।

## 12.10 सारांश

ब्रह्मांड की संरचना में सूर्य का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। सूर्य के बिना पृथ्वी की कल्पना करना कोरी संकल्पना है। सूर्य मानव, जीव-जन्तु एवं पेड़-पौधों के लिए प्राणतत्व है। सूर्य संपूर्ण जगत को सनातन काल से ही आकर्षित करता आ रहा है। यह हमारे जीवन को ही नहीं अपितु जीवन की संपूर्ण गतिविधियों को जीवन्तता प्रदान करता है। वैज्ञानिक सूर्य को एक आग का गोला मानते हैं और इसे ग्रह की संज्ञा देते हैं। जबकि हमारे मनीषियों ने सूर्य के रहस्य को समझ कर आध्यात्मिक चेतना के विकास के लिए इनके महत्व को जगत के सम्मुख प्रस्तुत किया। हमारे ऋषि मनीषियों ने सूर्य के महत्व को समझते हुए उनके सम्मान में नतमस्तक होते हुए उनकी पूजा प्रारंभ की। इन्हीं ऋषियों एवं मनीषियों द्वारा सूर्य नमस्कार की परम्परा हमें प्राप्त हुई। सूर्य नमस्कार स्वयं में एक पूर्ण साधना है। प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत सूर्य नमस्कार के मंत्र, सूर्य नमस्कार की विभिन्न अवस्थाओं, सूर्य नमस्कार के प्रयोग की विधि, सूर्य नमस्कार के विभिन्न आसन एवं उनके निमित्त निर्मित मंत्रों के साथ सूर्य नमस्कार मानव मात्र के लिए क्यों उपयोगी है तथा इसके क्या महत्व हैं इत्यादि का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

## 12.11 अभ्यास के प्रश्न

1. सूर्य नमस्कार में प्रयुक्त कुछ प्रमुख मंत्रों को लिखिए।
2. सूर्य नमस्कार के विभिन्न आसनों का सचित्र वर्णन कीजिए।
3. सूर्य नमस्कार के महत्व की विवेचना कीजिए।
4. सूर्य नमस्कार के विभिन्न लाभों का वर्णन कीजिए।
5. सूर्य नमस्कार के लिए क्या सावधानियाँ अपेक्षित हैं? लिखिए।

## 12.12 चर्चा के बिन्दु

1. सूर्य नमस्कार के विभिन्न आसनों की चर्चा कीजिए।

---

## 12.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

1. सूर्य भगवान की वंदना से।
2. सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय। इसके साथ ही खाली पेट करना चाहिए।
3. ॐ मित्राय नमः , ॐ सूर्याय नमः
4. बारह स्थितियाँ
5. दोनों भुजाओं को सिर के उपर उठाएं। भुजाओं के बीच कन्धों की चौड़ाई के बराबर दूरी बनाए रखें। सिर, भुजाओं और धड़ के ऊपरी भाग को थोड़ा सा पीछे की तरफ झुकाएं। भुजाओं को ऊपर उठते समय श्वास लें।
6. पीठ के रक्त संचार में सुधार लाकर मेरुदण्ड की तंत्रिकाओं का शक्ति प्रदान कर उसे लचीला बनाएं रखता है। पाचन तंत्र में तनाव उत्पन्न कर रक्त संचार बढ़ाता है। पाचन क्रिया को क्रियाशील करता है। कब्ज हटाता है एवं फेफड़ों को सुचारु गति प्रदान करता है। दमा, ब्रोकाइटिस एवं सरवाइकल रोगियों के लिए लाभकारी आसन है।
7. प्रणामासन
8. (i) सूर्य नमस्कार करने से प्राण शक्ति की प्राप्ति होती है।  
(ii) इसको करने से शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर ऊर्जा संतुलित होती है।
9. इस आसन में सामने की तरफ झुकते हुए दोनों हाथों के पंजों को पैरों के बगल में स्पर्श कराएं। ललाट को घुटने से स्पर्श कराएं तथा पैरों को सीधा रखें।
10. सूर्य नमस्कार का अभ्यास अन्य आसनों से पूर्व करना चाहिए। वैसे तो यह आसन सभी के लिए उपयुक्त है, परन्तु अधिक उम्र के लोगों तथा 8 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए यह आवश्यक नहीं है।  
(i) मेरुदण्ड की समस्या, उच्च रक्त चाप, हृदय- रोग, हार्निया, रोगग्रस्त व्यक्ति किसी गुरु के निर्देशन में ही यह आसन करें।

---

## 12.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

1. सिन्हा, जे. (2010) – भारतीय दर्शन. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।
2. हिरियन्ना, एम. (2018) – भारतीय दर्शन की रुपरेखा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
3. नेमिचन्द्र (Ed) (1975) – कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्यरचित योगशास्त्र. दिल्ली: श्री निर्ग्रन्थ साहित्य प्रकाशसंघ।
4. शर्मा, आर. के. एवं दुबे एस. के. (2017) – योग शिक्षा. आगरा : राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड।
5. शर्मा, आर.के. एवं दुबे, एस. (2016) – योग शिक्षा. आगरा : राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड।
6. शर्मा, सी. (2019) – भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।



### खण्ड परिचय

योग को प्रत्येक मानव किसी न किसी रूप में अपने जीवन में अपनाता है। एक योगी और सामान्य मनुष्य दोनों जीवन यापन करते हैं। योगी के जीवन में क्रमबद्धता होती है। जबकि सामान्य मनुष्य उसी को पाना चाहता है। जिसे योग की संज्ञा दी जाती है। योग विद्या पूर्ण तथा वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित है। नियमित योग करने से मनुष्य निरोगी रहता है। योग विज्ञान में योग क्रिया के माध्यम से मनुष्य के प्रत्येक अंग के लिए किसी न किसी प्रकार की योग की क्रिया है, जो मनुष्य के प्रत्येक अंगों को चुस्त एवं दुरस्त रखते हुए निरोगी बनाने के सहायक है। इस खण्ड में योग के वैज्ञानिक आधार – योग और मनः स्वास्थ्य का अध्ययन चार इकाईयों के माध्यम से करेंगे।

### इकाई – 13

योग सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित एक आध्यात्मिक अनुशासन है, जो मन और शरीर के बीच सद्भाव लाने पर केंद्रित है। यह स्वस्थ जीवन जीने की एक कला और विज्ञान दोनों ही है। यदि जैव पृष्ठपोषण की बात कि जाए तो योग के तत्वों से मेल खाती हुई जैव प्रतिक्रिया का संबंध अनैच्छिक तंत्रों जैसे श्वसन तंत्र, तंत्रिका तंत्र, इत्यादि से है। तंत्रिका तंत्र धड़कन रक्तचाप और मस्तिष्क की तरंगों के विभिन्न प्रकारों जैसे मनोवैज्ञानिक कार्यों से संबंधित हैं। इसे मनोशारीरिक नियंत्रण के रूप में जाना जाता है जिसके द्वारा पूर्व में भी तमाम भारतीय सन्यासियों एवं योगियों ने कई बार चिकित्सकों एवं वैज्ञानिकों को आश्चर्यचकित किया है। हम सभी इन सन्यासियों और योगियों की तरह तकनीकों को नहीं सीख सकते और ना ही इस भागदौड़ भरी जिंदगी में जहां सभी हर वक्त जीविकोपार्जन के साधनों को जुटाने में लगे हैं और बमुश्किल ही योग करने के लिए समय निकाल पाते हैं। इस इकाई के अन्तर्गत मानव शरीर परिचय, जैव पृष्ठ पोषण उसके प्रकार जैव पृष्ठ पोषण मापन के उपकरण, जैव पृष्ठ पोषण का उपयोग एवं योग एवं जैव पृष्ठ पोषण के सम्बन्ध का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

### इकाई – 14

वर्तमान युग विज्ञान एवं तकनीकी का युग है। वैज्ञानिक अनुसंधानों एवं तकनीकों ने मानव जीवन को अत्यंत सरल और सहज बना दिया है। मनुष्य का जीवन सुगम एवं सुखी बनने के साथ ही जीवन प्रत्याशा में वृद्धि आयी है और मृत्युदर कम हुई है। चिकित्सकीय सुविधाओं के परिणामस्वरूप मनुष्यों का औसत जीवन वर्ष बढ़ गया है। वैसे तो चिकित्सा के कई प्रकार हैं जिनमें जीव चिकित्सा, रोगनिवारक चिकित्सा, यांत्रिक चिकित्सा, मनोचिकित्सा, औषधि चिकित्सा, आहार चिकित्सा, रस चिकित्सा, अन्तःस्रावी चिकित्सा, सूर्यरश्मि चिकित्सा इत्यादि आते हैं। इन्हीं में से एक चिकित्सा पद्धति योग चिकित्सा भी है। इस इकाई के अन्तर्गत स्वास्थ्य की भारतीय एवं पाश्चात्य संकल्पना, योग एवं चिकित्सा, योग के मूलभूत सिद्धान्त, बिमारियों में योग की भूमिका, योग के चिकित्सकीय मूल्य, योग चिकित्सा के तौर तरीकों का विस्तृत विवेचन करेंगे।

### इकाई – 15

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानव व्यक्तित्व के तीन आधार हैं; शरीर, मन और आत्मा जिसमें मात्र शरीर ही स्थूल है और मन तथा आत्मा सूक्ष्म रूप से ही मानव शरीर के अन्दर कहीं निवास करती हैं जिन्हें ना स्पर्श किया जा सकता है और ना ही देखा जा सकता है, मात्र अनुभूत किया जा सकता है। किसी व्यक्ति को तभी स्वस्थ कहा जा सकता है जब शरीर, मन एवं आत्मा तीनों स्वस्थ हों। जब यह तीनों स्वस्थ होती हैं तो अपने आप ही एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो जाता है, जो शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, साम्बेगिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण से संतुलित होता है। जैसा कि हम जानते हैं व्यक्ति के तीन आधारों में से दो आधार सूक्ष्म हैं अतः शरीर ही एक माध्यम बन जाता है जिसके द्वारा अन्य दो आधारों को संतुलित बनाया जाए और इस हेतु योगासन एक सहज मार्ग है। इस इकाई के अन्तर्गत स्वास्थ्य, समग्र स्वास्थ्य, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य, आसनों के प्रकार एवं उनके लाभ, उत्तम शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य हेतु आसनों का योगदान तथा योग के समय अपनाई जाने वाली सावधानियों के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा करेंगे।

## इकाई – 16

भारत के लिए योग कोई नवीन संकल्पना नहीं है बल्कि हजारों वर्षों से योग की अवधारणा चली आ रही है। योग का इतिहास लगभग 5000 वर्ष पुराना माना जाता है। योग का वर्णन वेदों, उपनिषदों, श्रीमद्भगवद्गीता इत्यादि में भी मिलता है जिसमें योग को शारीरिक, आध्यात्मिक, एवं बौद्धिक विकास के माध्यम के रूप में देखा गया है। यह मात्र मान्यता ही नहीं है कि योग के माध्यम से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक विकास हो सकता है बल्कि संतों और योगियों ने इसे तर्कपूर्ण ढंग से दृष्टान्तों को प्रस्तुत करते हुए सिद्ध किया है। योग एक ऐसा दर्शन है जिसका आधार वैज्ञानिक है। योग के करने से मनुष्य की मनः स्थिति में एकाग्रता आ जाती है। किसी कार्य में एकाग्र होकर ध्यान लगाने से शारीरिक एवं मानसिक विकार दूर होता ही है इसके साथ आध्यात्मिक चेतना जाग्रत होती है। योग एक ऐसी चिकित्सा पद्धति को लेकर प्रस्तुत होता है जिसका आधार वैज्ञानिक है। इस इकाई के अन्तर्गत ध्यान का अर्थ, ध्यान के प्रकार, ध्यान के चिकित्सिक लाभ एवं मूल्य इत्यादि का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

---

## इकाई— 13 : योग एवं जैव पृष्ठपोषण

---

### इकाई की संरचना

- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 इकाई के उद्देश्य
- 13.3 मानव शरीर : परिचय
- 13.4 जैव पृष्ठपोषण
- 13.5 जैव पृष्ठपोषण के प्रकार
  - 13.5.1 श्वाँस
  - 13.5.2 मस्तिष्क तरंगें
  - 13.5.3 हृदयगति
  - 13.5.4 रक्तचाप
  - 13.5.5 मांसपेशियों का तनाव
  - 13.5.6 त्वचा का तापमान
  - 13.5.7 स्वेद के आधार पर
- 13.6 जैव पृष्ठपोषण मापन के सामान्य उपकरण
  - 13.6.1 मस्तिष्क तरंगों के मापन के लिए ईईजी मशीन
  - 13.6.2 इलेक्ट्रोमायोग्राफी
  - 13.6.3 गैल्वेनिक स्किन रिस्पांस उपकरण
- 13.7 जैव पृष्ठपोषण का उपयोग
- 13.8 योग एवं जैव पृष्ठ पोषण में सम्बन्ध
- 13.9 सारांश
- 13.10 अभ्यास प्रश्न
- 13.11 चर्चा के बिंदु
- 13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 13.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 13.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

### 13.1 प्रस्तावना

---

योग सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित एक आध्यात्मिक अनुशासन है, जो मन और शरीर के बीच सद्भाव लाने पर केंद्रित है। यह स्वस्थ जीवन जीने की एक कला और विज्ञान दोनों ही है। योग 'शब्द की उत्पत्ति मूल रूप से संस्कृत के शब्द 'युज' से हुआ है, जिसका अर्थ है 'जुड़ना' अथवा 'एकजुट होना'। योग शास्त्र के अनुसार व्यक्ति के द्वारा किया गया यौगिक अभ्यास उसे व्यक्तिगत चेतना के साथ सार्वभौमिक चेतना को युग्मित करता है। यह युग्मन मन और शरीर, मनुष्य और प्रकृति के बीच एक परिपूर्ण सामंजस्य का द्योतक है। यदि जैव पृष्ठपोषण की बात कि जाए तो योग के तत्वों से मेल खाती हुई जैवप्रतिक्रिया का संबंध अनैच्छिक तंत्रों जैसे श्वसन तंत्र, तंत्रिका तंत्र, इत्यादि से है। यह तंत्रिका तंत्र धड़कन रक्तचाप और मस्तिष्क की तरंगों के विभिन्न प्रकारों जैसे मनोवैज्ञानिक

कार्यों से संबंधित हैं। इसे मनोशारीरिक नियंत्रण के रूप में जाना जाता है जिसके द्वारा पूर्व में भी तमाम भारतीय सन्यासियों एवं योगियों ने कई बार चिकित्सकों एवं वैज्ञानिकों को आश्चर्यचकित किया है। हम सभी इन सन्यासियों और योगियों की तरह तकनीकों को नहीं सीख सकते और ना ही इस भागदौड़ भरी जिंदगी में जहां सभी हर वक्त जीविकोपार्जन के साधनों को जुटाने में लगे हैं और बमुश्किल ही योग करने के लिए समय निकाल पाते हैं। उम्मीद रख सकते हैं कि वे इन प्राकृतिक क्रियाओं को सीख सकें और इनका प्रयोग अपने तंत्रिका तंत्र की प्रतिक्रियाओं को जानने हेतु कर सकें। ऐसे में सामान्य लोगों के द्वारा जैव प्रतिक्रिया के उपकरणों के माध्यम से इन तकनीकों को सीखा जा सकता है और स्वास्थ्य लाभ लिया जा सकता है। प्रस्तुत अध्याय में योग एवं जैव पृष्ठपोषण किस तरह से संबंधित है तथा योग द्वारा यह किस प्रकार प्राप्त की जाती है और अंत में जैव पृष्ठपोषण के लिए वर्तमान समय में किन-किन उपकरणों का प्रयोग किया जाता है, उनका उपयोग किस प्रकार किया जाता है, तथा योग एवं जैव पृष्ठपोषण किस प्रकार सम्बंधित हैं, का विशद वर्णन किया जाएगा।

## 13.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि—

1. मानव शरीर के विभिन्न तंत्रों की अंतर्निभरता की व्याख्या कर सकेंगे।
2. योग के इतिहास का वर्णन कर सकेंगे।
3. प्रसिद्ध योग मार्गों को उल्लिखित कर सकेंगे।
4. जैव पृष्ठपोषण को परिभाषित कर सकेंगे।
5. जैव पृष्ठपोषण के विभिन्न प्रकारों की विवेचना कर सकेंगे।
6. जैव पृष्ठपोषण में सम्मिलित उपकरणों और उनकी क्रियाविधि का वर्णन कर सकेंगे।
7. जैव पृष्ठपोषण के नैदानिक उपयोग की व्याख्या कर सकेंगे।
8. योग एवं जैव पृष्ठपोषण में किस प्रकार सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है का वर्णन कर सकेंगे।

## 13.3 मानव शरीर : परिचय

मानव शरीर की तुलना कई बार किसी जटिल मशीन से की जाती है। यदि मनुष्य के शरीर को एक बहुत बड़ी मशीन माना जाए जिसमें छोटे-छोटे अन्य कई प्रकार की मशीनरी हैं, तो यह कहीं से भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। मानव शरीर के अंदर कई सारे तंत्र होते हैं, जो अनवरत रूप से कार्य करते रहते हैं और उनकी वजह से ही मानव का जीवन चलता रहता है। इन तंत्रों में से रक्त परिसंचरण तंत्र, पाचन तंत्र, प्रजनन तंत्र, कंकाल तंत्र, श्वसन तंत्र इत्यादि से हम सभी परिचित हैं। मानव शरीर के ये सभी तंत्र एक-दूसरे से संबंधित हैं और एक में आयी समस्या दूसरे तंत्रों को भी प्रभावित करती है। हमारा शरीर सुचारु रूप से कार्य करे इसके लिए आवश्यक है कि मानव शरीर के यह सभी तंत्र सुचारु रूप से कार्य करें क्योंकि एक के साथ आयी समस्या दूसरे के लिए भी समस्या को जन्म देती है।

हमारे इस जटिल मशीनरूपी शरीर में कई ऐसे तंत्र हैं जिनसे की जाने वाली क्रियायें ऐच्छिक होती है और वहीं कुछ तंत्र ऐसे हैं जिनसे की जाने वाली क्रियायें अनैच्छिक होती हैं। जैसे शरीर की जो भी गामक क्रियायें होती हैं वह सभी ऐच्छिक होती हैं (परन्तु इसमें भी कभी-कभी कुछ क्रियायें अनैच्छिक होती हैं जैसे पलक का झपकना इत्यादि)। वहीं शरीर के तंत्रिका तंत्र से जुड़ी क्रियायें पूर्णतः अनैच्छिक होती हैं जैसे— हृदय का धड़कना, रक्त का परिसंचरण, मस्तिष्क में भेजी जाने वाली तरंगें व इन सभी तंत्रों पर नियंत्रण करना लगभग असंभव होता है। परन्तु ऐसा देखा गया है कि योग के माध्यम से अनैच्छिक क्रियायें जो हमारे तंत्रिका तंत्र से संबंधित हैं पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

### 4. भारतीय दर्शन एवं योग

भारत में योग का इतिहास अत्यन्त पुराना है। योग का वर्तमान स्वरूप अभी विगत कुछ वर्षों में लोकप्रिय हुआ है और घर-घर तक पहुँचा है परन्तु योग का अभ्यास लगभग 5000 वर्ष पूर्व से हमारे देश में किया जाता रहा

है। हालांकि कुछ विद्वान इसे 10000 वर्ष प्राचीन मानते हैं क्योंकि वेदों में, जो विश्व की सबसे प्राचीनतम पुस्तक मानी जाती है, उनमें योग का उल्लेख मिलता है। उदाहरणतः “यस्माहते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन द्य स धीनां योगमिन्वति” (ऋ.मंडल 1 सूक्त 9८ मंत्र-7) अर्थात् विद्वानों का कोई यज्ञ-कर्म बिना योग के सिद्ध नहीं होता द्य यह मात्र एक उदाहरण है। ऐसी ही कई ऋचायें वेदों में मिलती हैं। पुरातत्ववेत्ताओं ने इसकी उत्पत्ति को 5000 वर्ष प्राचीन माना है। इसके प्रमाण 1920 में पुरातत्ववेत्ताओं ने सिंधु सरस्वती सभ्यता में खोजा है जहां योग की परंपरा के अवशेष मिले हैं। यह प्रमाण उस समय के मोहरों व मूर्तियों के रूप में पाए गए हैं। इसके अतिरिक्त उपनिषदों में भी योग का वर्णन किया गया है। पुराण, स्मृतियों, महाभारत, विशेषकर श्रीमद्भागवत् गीता, वेदांत, योग वशिष्ठ, सांख्य, न्याय, मीमांसा, जैन, बौद्ध दर्शनों में योग के विषय में उल्लेख किया गया है। भारतीय दर्शन में योग को मुक्ति एवं ईश्वर की भक्ति का साधन माना गया है भारतीय दर्शनों में मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मुक्ति को माना गया है और इस मुक्ति में भी सदेह मुक्ति एवं विदेह मुक्ति की संकल्पना दी गयी है द्य योग की महत्ता को इन दोनों ही प्रकार की मुक्ति के लिए स्वीकार किया गया है। श्वेताश्वरोपनिषद में योग, इससे सम्बंधित क्रियायें एवं इनसे मिलने वाले फलों का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त मुण्डकोपनिषद, कठोपनिषद, वृहदाप्यकोपनिषद में योग की महत्ता का विवेचन किया गया है। इनके अलावा इक्कीस उपनिषद ऐसे जिनमें केवल योग का वर्णन है। योग का स्वरूप अत्यंत ही वृहद् एवं विस्तृत है। सामान्य रूप से हम योग की कुछ ही मार्गों एवं शाखाओं से परिचित हैं। वास्तव में योग की सौ से अधिक मार्ग हैं। कुछ प्रसिद्ध योग मार्ग जो वर्णित हैं उनमें राज योग, कर्म योग, ज्ञान योग, विज्ञान योग, ध्यान योग, भक्ति योग, क्रिया योग, हठ योग, मन्त्र योग, लय योग, भय योग, तंत्र योग, शब्द योग, स्वर योग, शिव योग, पाशुपत योग, पुरुषोत्तम योग, प्रणव योग, प्रेम योग, अनासक्त योग, हंस योग, समाधि योग, नामकीर्तन योग, ब्रह्म योग, तारक योग, बुद्धि योग, स्पर्श योग, अस्पर्श योग, भाव योग, प्रकृति पुष्प योग, अभाव योग, अस्पर्श योग, कुंडलिनी योग, पतिव्रत योग, गृहस्थ योग, सांख्य योग, सुष्टुप्ति योग, जैन मत योग, बौद्ध मत योग, स्वामीनारायण योग, पारसी मत योग, ईसाई मत योग, कबीरपंथी योग, पूर्ण योग, कर्मेन्द्रिय योग, ज्ञानेन्द्रिय योग, अहंकार योग, मानस योग, इच्छा योग, चिंतन योग, समाधि योग इत्यादि आते हैं।

योग एक ऐसा आध्यात्मिक विषय है जो सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित है और जिसका उद्देश्य मन एवं शरीर के मध्य सामंजस्य स्थापित करना है। यह सामंजस्य स्थापन ही जैव पृष्ठपोषण का आधार है। योग के आध्यात्मिकता एवं वैज्ञानिकता का यह परस्पर स्वरूप ही इसे व्यावहारिक बनाता है और एक बड़े वर्ग को इससे जोड़ता है।

## बोध प्रश्न

### टिप्पणी :

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 1. योग को कितने वर्ष प्राचीन मानते हैं ?

.....

प्रश्न 2. हमारे शरीर में कौन-कौन से तंत्र पाए जाते हैं ?

.....

प्रश्न 3. मुख्य रूप से शरीर के किस तंत्र से जुड़ी क्रियायें अनैच्छिक होती हैं ?

.....

प्रश्न 4. योग का कौन सा स्वरूप जैव पृष्ठपोषण का आधार है ?

.....

---

## 13.4 जैव पृष्ठपोषण

---

ग्रीक भाषा में Bio का अर्थ जीवन (life) होता है और Feedback का अर्थ पृष्ठपोषण होता है। योग के माध्यम से अन्तः प्रतिक्रिया किस रूप में प्राप्त की जा सकती है, यह जानने से पहले आवश्यक है कि यह जान लें कि जैव पृष्ठपोषण क्या है। जैव पृष्ठपोषण एक तकनीक है जिसमें अनैच्छिक शारीरिक क्रियाओं जो अधिकांश तंत्रिका-तंत्र से संबंधित होती हैं, पर नियंत्रण प्राप्त करने हेतु श्रव्य या दृश्य प्रतिक्रियाओं का उपयोग किया जाता है। इसमें हृदय गति, मांसपेशियों के तनाव, रक्त-प्रवाह, रक्तचाप, दर्द की अनुभूति जैसी क्रियाओं पर स्वैच्छिक नियंत्रण प्राप्त करना हो सकता है।

जैव पृष्ठपोषण को कई संगठनों ने मिलकर परिभाषित करने का प्रयास किया है। The Association for Applied Psychophysiology and Biofeedback, Biofeedback Certification International Alliance एवं International Society for Neurofeedback and Research ने मिलकर जैव पृष्ठपोषण को परिभाषित किया है और इसे परिभाषित करते हुए कहा है कि 'यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो लोगों को स्वास्थ्य या प्रदर्शन में सुधार करने के लिए अपनी शारीरिक गतिविधि में परिवर्तन लाने की अनुमति प्रदान करता है। सटीक मापन उपकरणों की सहायता से व्यक्ति को उसके शरीर के कार्यों के विषय में जानकारी दी जाती है।' The Association for Applied Psychophysiology and Biofeedback यह सुझाव देते हैं कि 'इस (जैव पृष्ठपोषण) जानकारी की प्रस्तुति— अक्सर सोच, भावनाओं और व्यवहार में बदलाव के साथ-साथ वांछित शारीरिक परिवर्तनों का समर्थन करती है। समय के साथ ये परिवर्तन बिना किसी उपकरण की सहायता के निरंतर उपयोग के माध्यम से भी हो सकते हैं।'

चिकित्सकीय क्षेत्र में सामान्य रूप से इस प्रक्रिया में उपकरणों का प्रयोग किया जाता है जिनमें सेंसर लगे होते हैं जो शरीर में हो रहे इन प्रक्रियाओं एवं पहलुओं के विषय में प्रतिक्रिया प्रदान करते हैं। वर्तमान समय में मशीनों की सहायता से इन प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करना अत्यंत सरल हो गया है।

जैव पृष्ठपोषण का उद्देश्य मानव शरीर में एक सूक्ष्म परिवर्तन करना है जिसके द्वारा स्वास्थ्य की दृष्टि से वांछित परिणाम प्राप्त होते हैं। यह व्यक्ति में शारीरिक, सांवेगिक, एवं मानसिक शांति लाकर स्वास्थ्य में सुधार करते हैं। इस क्रम में रक्तचाप को नियंत्रित करना, रक्त प्रवाह को सुचारु बनाना शरीर की विभिन्न मांस पेशियों को आराम देना, हृदय की धड़कन पर नियंत्रण, स्वास्थ्य प्रक्रिया को सुचारु बनाना, दर्द की अनुभूतियों को कम करना जैसी क्रियाएं की जा सकती है।

---

## 13.5 जैव पृष्ठपोषण के प्रकार

---

जैव पृष्ठपोषण के कई प्रकार हैं जो हमारे शरीर के आंतरिक प्रक्रियाओं से संबंध रखते हैं। इनमें से कुछ शारीरिक, कुछ भावनात्मक एवं कुछ मानसिक प्रक्रिया से संबंधित हैं। आइए इन पर दृष्टि डालते हैं

### 13.5.1 श्वास

जैव पृष्ठपोषण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण श्वास है। इसमें सांस लेने की दर और तरीके को देखा जाता है। इसके लिए व्यक्ति के सीने एवं पेट के पास सेंसर बैंड लगाए जाते हैं जो सांस की गति, लंबाई आदि का अध्ययन करते हैं। प्रशिक्षण के उपरांत व्यक्ति अपने सांस लेने की गति एवं तरीके पर नियंत्रण रखना सीख जाते हैं जो मानसिक, शारीरिक, एवं भावनात्मक उत्तेजना को शांत करने में सहायक सिद्ध होता है।

### 13.5.2 मस्तिष्क तरंगें

इस जैव पृष्ठपोषण को सामान्य रूप से तंत्रिका/न्यूरोप्रतिक्रिया के रूप में जाना जाता है, जिसमें मस्तिष्क की तरंगों के माध्यम से अध्ययन किया जाता है। इसके मापन के लिए EEG मशीन को प्रयोग में लाया जाता है। न्यूरोप्रतिक्रिया के माध्यम से ADHD, अवसाद, व्यसन, चिंता, नींद सम्बन्धी समस्याएं, दर्द इत्यादि की जानकारी ली जाती है तथा व्यक्ति को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता है कि वह इनपर नियंत्रण प्राप्त कर सके।

### 13.5.3 हृदय गति

हृदय गति के आधार पर व्यक्ति के अनैच्छिक तंत्रिका तंत्र का मापन किया जाता है। इसमें गति के

साथ-साथ इसकी परिवर्तनशीलता का भी मापन किया जाता है। इसके माध्यम से व्यक्ति के अस्थमा और अवसाद संबंधी विकारों को जाना जाता है और फिर जैव पृष्ठपोषण के माध्यम से इसका समाधान भी किया जा सकता है। पूर्व वर्णित समस्याओं के अतिरिक्त व्यक्ति अपने हृदय गति को जानकर इस पर नियंत्रण कर सकता है।

#### 13.5.4 रक्तचाप

रक्तचाप संबंधी जानकारी जैव पृष्ठपोषण की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसमें व्यक्ति एक ऐसा उपकरण पहनता है जो उसे उसके रक्तचाप की जानकारी देता है। जैव पृष्ठपोषण में विश्राम की तकनीकों के माध्यम से मार्गदर्शन देते हैं कि रक्तचाप को किस तरह बढ़ाया या घटाया जा सकता है। इसके लिए संगीत, श्वास अभ्यास या कुछ अन्य दृश्य संकेतों का सहारा लिया जाता है। रक्तचाप पर यह नियंत्रण उच्च एवं निम्न रक्तचाप जैसी समस्याओं के निदान में सहायक सिद्ध होता है।

#### 13.5.5 मांसपेशियों का तनाव

इस जैव पृष्ठपोषण में सेंसर, जो ईएमजी (EMG) मशीन से जुड़ा होता है, को शरीर के विभिन्न बिंदुओं पर रखा जाता है और मांसपेशियों में हो रहे/आए तनाव को मापा जाता है। यह मांसपेशियों के संकुचन के माध्यम से उनकी असामान्यता का मापन करता है।

#### 13.5.6 त्वचा का तापमान

त्वचा के तापमान के माध्यम से भी व्यक्ति के आंतरिक भागों में चल रही प्रक्रियाओं का आकलन किया जाता है। इस हेतु व्यक्ति को सेंसर पहनना होता है जो त्वचा के माध्यम से उन में हो रहे रक्त प्रवाह का पता लगाते हैं। अध्ययन यह प्रमाणित करते हैं कि अक्सर ही तनाव व्यक्ति के शरीर का तापमान कम होने लगता है। ऐसे में उपकरणों के माध्यम से व्यक्ति अपनी मौजूदा स्थिति को समझते हुए चिंता, अवसाद जैसी समस्याओं को स्वयं ही हल कर सकता है।

#### 13.5.7 स्वेद के आधार पर

यह देखा गया है कि उत्तेजना के क्षणों में व्यक्ति में पसीने का उत्सर्जन अधिक होता है। गैल्वेनिक त्वचा प्रतिक्रिया के आधार पर व्यक्ति द्वारा किए जा रहे पसीने के उत्सर्जन के आधार पर उसकी भावनात्मक उत्तेजना के स्तरों का पता लगाया जाता है।

#### बोध प्रश्न

##### टिप्पणी :

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 5. जैव पृष्ठपोषण किसे कहते हैं?

.....

प्रश्न 6. जैव पृष्ठपोषण के माध्यम से किन क्रियाओं पर नियंत्रण प्राप्त करना संभव हो जाता है ?

.....

प्रश्न 7. चिकित्सकीय क्षेत्र में जैव पृष्ठपोषण की प्राप्ति किस प्रकार से की जाती है ?

.....

प्रश्न 8. जैव पृष्ठपोषण के कौन कौन से प्रकार हैं?

.....

---

## 13.6 जैव पृष्ठपोषण मापन के सामान्य उपकरण

---

जैव पृष्ठपोषण के अंतर्गत कई उपकरणों को शामिल किया जाता है। इसमें कुछ उपकरण अत्यंत महंगे होते हैं जिसकी कीमत को सामान्य लोगों के द्वारा वहन नहीं किया जा सकता है। परंतु विज्ञान एवं तकनीकी प्रगति के साथ ही स्वास्थ्य के क्षेत्र में व्यापक सुधार आए हैं। इन तकनीकों एवं प्रगति के परिणाम स्वरूप कुछ ऐसे उपकरण बाजार में उपलब्ध हैं जिनके द्वारा वहनीय मूल्य पर इन उपकरणों को प्राप्त किया जा सकता है। यह उपकरण बैटरी से चलने वाले एवं कम स्थान घेरने वाले होते हैं। इनमें से कुछ उपकरण इस प्रकार हैं।

### 13.6.1 मस्तिष्क तरंगों के मापन के लिए ईईजी मशीन (Electroencephalography)

EEG मशीन मस्तिष्क की तरंगों का मापन करती है। इस मशीन को सिर की त्वचा पर लगाया जाता है। मशीन के इलेक्ट्रोड्स मस्तिष्क की तरंगों को उठाते हैं, और उनका मापन करते हैं। मस्तिष्क की इन तरंगों को अल्फा के रूप में जानते हैं। इन तरंगों के अंकन के दौरान एक 'बीप' जैसी ध्वनि आती है। सामान्य रूप से जब मनुष्य की आंखें बंद होती हैं, अल्फा मस्तिष्क तरंग सर्वाधिक मजबूत मस्तिष्क तरंग या सिग्नल होती है। थोड़े प्रयास के साथ व्यक्ति को समझ आता है कि वह अल्फा तरंगों का उत्पादन कर रहा है। इसके माध्यम से व्यक्ति को अपने मानसिक तरंगों के विषय में पता चलता है जो व्यक्ति को दौरों, सर की चोटों, सिरदर्द विशेषकर माइग्रेन, चक्कर आना, नींद से जुड़ी समस्याओं से जुड़ी होती है। इन समस्याओं को जानने के पश्चात् कुछ प्रयासों के साथ इनपर नियंत्रण प्राप्त करना संभव हो सकता है।

### 13.6.2 इलेक्ट्रोमायोग्राफी (Electromyography) (EMG) मशीन

EMG मशीन का उपयोग शारीरिक प्रक्रियाओं को देखने के लिए किया जाता है। इसके माध्यम से उन शारीरिक प्रक्रियाओं पर नियंत्रण प्राप्त की जाती है जो सामान्यतः अनैच्छिक होते हैं। यह मांसपेशी तंत्रिका की उत्तेजना के प्रतिउत्तर में मांसपेशियों के प्रतिक्रिया का मापन करता है। इसके माध्यम से व्यक्ति तंत्रिका मांसपेशी से सम्बंधित असमानता का पता लगा सकता है और उनको कैसे सुधारा जाए, इस पर कार्य कर सकता है। इस परीक्षण में एक या एक से अधिक छोटी सुईयाँ जिन्हें इलेक्ट्रोड कहा जाता है, को मांसपेशियों में डाला जाता है और मांसपेशियों की प्रतिक्रिया का अंकन किया जाता है।

### 13.6.3 गैल्वेनिक स्किन रिस्पांस उपकरण (Galvanic Skin Response device)

GSR स्वेदग्रंथियोंकी गतिविधि मापने का उपकरण है जो हमारी भावनात्मक उत्तेजना को मापता है। इसके लिए त्वचा के विद्युत गुणों का प्रयोग किया जाता है। स्वेदग्रंथियों की गतिविधि, हमारे भावनात्मक उत्तेजना के आधार पर बढ़ती है और GSR इसी के माध्यम से मापन करता है। इस उपकरण से निरन्तर एक स्वर आता है और यह व्यक्ति में उत्तेजना या तनाव के बढ़ने पर बढ़ जाता है, और जैसे-जैसे व्यक्ति शान्त होता जाता है अथवा विश्राम करता है तो यह स्वर कम होता जाता है। इसमें इलेक्ट्रोड को व्यक्ति की उँगलियों में रखा जाता है जो त्वचा के विद्युत प्रतिरोध को मापता है। गैल्वेनिक स्किन रिस्पांस उपकरण से प्राप्त जानकारी भावनात्मक विकारों जैसे – अनावश्यक एवं अकारण डर (फोबिया), चिंता और हकलाने के उपचार में उपयोगी हो सकती है।

---

## 13.7 जैव पृष्ठपोषण का उपयोग

---

हमने इससे पूर्व में अध्ययन किया कि जैव पृष्ठपोषण क्या है, इसके कौन-कौन से प्रकार हैं और जैव पृष्ठपोषण में किन-किन उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। अब यहाँ यह जानना महत्वपूर्ण हो उठता है कि अपने जैव पृष्ठपोषण की जानकारी क्यों रखे जाए या सरल शब्दों में कहा जाए तो जैव पृष्ठपोषण का उपयोग किस हेतु किया जाता है तो इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में जैव पृष्ठपोषण का उपयोग व्यक्ति के कई प्रकार की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के निवारण के लिए किया जा रहा है जो अधोलिखित हैं।

1. अवसाद एवं तनाव के उपचार हेतु।
2. माइग्रेन तथा ऐसे ही अन्य दर्द के निवारण हेतु।
3. पाचन संबंधी विकारों के समाधान के लिए।

4. रोगियों के विभिन्न शारीरिक प्रतिक्रियाओं के लिए जो तनाव के कारण उत्पन्न होती हैं, के निवारण हेतु।
5. स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिए
6. रक्तचाप पर नियंत्रण के लिए
7. भावनात्मक उत्तेजना पर नियंत्रण के लिए
8. मस्तिष्क को शांत रखने के लिए
9. नींद संबंधी समस्याओं के समाधान के लिए

जैव पृष्ठपोषण के द्वारा मनुष्य की अनेकानेक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है परन्तु इसको उपचारात्मक प्रणाली मानने के स्थान पर एक प्रशिक्षण माना जाता है जो शरीर के स्वास्थ्य को बनाए रखने या पुनःप्राप्ति/पुनर्लाभ में सहायता करती है। यह दवा देने के स्थान पर मनुष्य को अपने ऊपर नियंत्रण विकसित करने में सहायता करती है जिससे उपचार/आरोग्यता स्वयं ही प्राप्त हो। इसमें रोगी स्वयं ही सक्रिय रहता है और स्वयं पर निगरानी करते हुए नियमित अभ्यास से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करता है।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी—

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 9. EEG मशीन का उपयोग जैव पृष्ठपोषण में किस प्रकार किया जाता है ?

.....

प्रश्न 10. EEG के माध्यम से व्यक्ति अपनी किन समस्याओं पर नियंत्रण प्राप्त कर सकता है?

.....

प्रश्न 11. इलेक्ट्रोमायोग्राफी किस चीज का मापन करती है ?

.....

प्रश्न 12. गैल्वेनिक स्किन रिस्पांस उपकरण की सहायता से किन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है ?

.....

## 13.8 योग एवं जैव पृष्ठपोषण में संबंध

वर्तमान समय में जिन प्रतिक्रियाओं को मशीनों से प्राप्त करने की कोशिश की जा रही है वह हमारे देश में योग के माध्यम से काफी प्राचीन समय से ही प्राप्त की जा रही हैं। भारत में सन्यासियों एवं योगियों ने पिछले हजारों सालों से अनैच्छिक तंत्रिका तंत्र पर नियंत्रण कर रखा है और योग के माध्यम से विभिन्न शारीरिक समस्याओं पर विजय प्राप्त करते आ रहे हैं। इसके प्रमाण समय-समय पर मिलते रहते हैं। पतंजलि जो योग दर्शन के प्रवर्तक हैं, ने योग को मनःसंबंधी विषयों के संशोधन के साधन के रूप में परिभाषित किया है। इस परिभाषा के अनुसार जैव पृष्ठपोषण भी एक प्रकार का योग ही है। इसे यंत्रों के माध्यम से किए जाने वाले यंत्रीकृत योग के रूप में परिभाषित किया जाता है। इस तरह यह भी कहा जा सकता है कि योग के माध्यम से उन उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है जो जैव पृष्ठपोषण में उपकरणों के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। अंतर मात्र इतना है कि सामान्य जैव पृष्ठपोषण में यह मशीनी होता है और यौगिक में यह प्राकृतिक होता है।

राजयोग के अंतर्गत जिन दो अंगों का प्रयोग सामान्यतया जनसामान्य के द्वारा किया जाता है वे हैं— आसन एवं प्राणायाम। जहाँ आसन शरीर की विशेष मुद्रा से संबंधित है वहीं प्राणायाम श्वाँस लेने की प्रक्रिया एवं नियंत्रण से संबंधित है। एक व्यक्ति जो यौगिक क्रियाओं में महारत हासिल कर लेता है वह अपने शरीर एवं अवचेतन मन की गतिविधियों के बारे में पूर्ण जानकारी रखता है और ध्यान के माध्यम से अपने अनैच्छिक तंत्रिका तंत्र को नियंत्रित करने में पूर्णतया सक्षम होता है। ध्यान और आसन के माध्यम से मानव शरीर के शारीरिक एवं मानसिक पक्षों की गतिविधियों की जानकारी सरलता से मिल जाती है। जो कार्य जैवप्रतिक्रिया के उपकरणों के माध्यम से किया जाता है वह कार्य उतनी ही सरलता से योगियों द्वारा कर लिया जाता है। अंतर बस इतना है कि इसे साधने हेतु योगियों ने वर्षों का अभ्यास किया होता है। योग द्वारा जैवप्रतिक्रिया प्राप्त करने के लिए अपने ध्यान को बाहर के किसी अवयव से हटाकर अंतःस्थ की ओर मोड़ना होता है। शरीर एवं मन के बीच सामंजस्य — जो एकाग्रता के माध्यम से ही आ सकता है, अन्तःस्थलों के विषय में सूक्ष्म से सूक्ष्म जानकारी दे देता है।

अष्टांग योग जैव पृष्ठपोषण में मदद करते हैं। आसन हमारे शरीर की विशेष स्थितियाँ हैं, जो हम शरीर की स्थिति एवं श्वसन के आधार पर समन्वित करते हैं। यह हमारी एकाग्रता को बढ़ाने में सहायक होते हैं। प्राणायाम जो हमारी श्वाँस के विस्तार से संबंधित है मस्तिष्क में ऑक्सीजन की आपूर्ति की मात्रा को बढ़ाता है, श्वसन तंत्र को नियंत्रित करता है और चिंता तथा तनाव पर नियंत्रण करते हुए मन की एकाग्रता को बढ़ाता है (Patel, 1974; Desai & Vyas, 2001)।

प्रत्याहार में हम अपनी इंद्रियों को नियंत्रित करते हैं और प्रयास करते हैं कि उन्हें वहाँ साध कर रखा जा सके जहाँ से मन को संयमित रखा जा सके। प्रत्याहार के दौरान प्रयास किया जाता है कि मन को इंद्रियों की अधीनता से मुक्त कर मन को एकाग्र किया जा सके। इसके साथ ही ध्यान के माध्यम से किसी वस्तु या बिंदु पर लंबे समय तक मन को एकाग्र करने का प्रयास करते हैं। यह हमारी सामंजस्य करने की क्षमता को बढ़ाता है।

यदि देखा जाए तो योग के यह सभी अंग हमें अपने तंत्रिकाओं से जोड़ते हैं और मन को एकाग्र कर उस स्थिति में ले जाते हैं जहाँ हम अपने अन्तःस्थलों का अवलोकन कर सकें। हमारे योग के इतिहास में ऐसी अनेक घटनाएं भरी पड़ी हैं जहाँ योगगुरु, योगी, सन्यासी एवं ऋषियों ने इन सभी क्रियाओं पर विजय प्राप्त किए हैं।

स्वामी सत्यानंद जी (1976) अपने एक सत्संग में कहते हैं कि 'मन जब एकाग्र होता है, उसमें शक्ति उत्पन्न होती है। इससे संकल्पशक्ति दृढ़ होती है। इस शक्ति से हम भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों तरह की उन्नति पा सकते हैं।... चित्त को एकाग्र करने से असाध्य भी साध्य हो सकता है' (योग विद्या, 2013)। असाध्य को साधते हुए शरीर के तंत्रों से जानकारी प्राप्त कर उनको सुचारु रूप में कार्य करने की स्थिति में ले आना ही योग के द्वारा जैव पृष्ठपोषण की प्राप्ति है।

स्वयं को जानने के लिए, अपनी आंतरिक प्रतिक्रियाओं को जानने के लिए प्रत्याहार के अंतर्गत अनेक विधियों का वर्णन किया गया है— उनमें योगनिद्रा, अजयाजय, अन्तर्मौन इत्यादि आते हैं। प्रायः देखा गया है कि यह सभी अवस्थाएं शरीर से प्रतिक्रिया प्राप्त करती हैं और व्यक्ति को इस प्रकार से तैयार करती हैं कि वह स्वयं का उपचार कर पाए। इसके साथ ही योग निद्रा के भी चमत्कारिक प्रभाव जैव पृष्ठपोषण के लिए देखे गए हैं। Rani et.Al. (2016); Ferreira-Vorkapic (2018); Sethi (2018) कहते हैं कि योग निद्रा के द्वारा मानसिक तनाव, लकवा की स्थिति, दर्द में कमी, नींद इत्यादि में सुधार देखने को मिला। स्वामी सत्यानंद सरस्वती इसे चेतना का एक विशिष्ट आयाम मानते हैं। डॉ. लोज़ानोव ने इसके माध्यम से रक्तचाप घटाने, शल्य चिकित्सा के घावों को भरने में सहायता प्राप्त की। योग निद्रा के माध्यम से याददाश्त बढ़ाने, याद करने के साथ-साथ पशुओं को भी प्रशिक्षण देने में सफल रहे हैं। भारत में डॉ. दांते और श्रीनिवासन ने भी ऐसे शोध किए और सफलता हासिल की। इसके द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों से दर्द एवं तनाव समाप्त करने में सहायता मिलती है।

योगनिद्रा, अजयाजय या अन्तर्मौन कोई पूर्ण विश्राम की अवस्था नहीं है बल्कि ये सभी ही एक प्रकार की ध्यान की स्थिति हैं। मन को शांत करने तथा चेतना के स्तर पर जाने की तकनीकी है। ध्यान सामान्य जागृत अवस्था से अलग है साथ ही प्रत्याहार की उपरोक्त स्थितियां सामान्य विश्राम से अलग की स्थितियां हैं। इसमें आप जागृत होते हैं, आप सतर्क होते हैं, आप बाहरी दुनिया या अपने आस-पास की घटने वाली घटनाओं पर अपने ध्यान को केंद्रित नहीं करते हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति न तो सो रहा होता है, ना सपने देख रहा होता है और ना ही कल्पना कर रहा होता है। इन सबसे अलग अपने मन को अपने अंदर केंद्रित करके रखा रहता है। (प्रभु जी,

ध्यान के दौरान शरीर को पूरी तरह से आराम दिया जाता है और मन को पूर्णतया जागृत रखने के साथ आरामदायक स्थिति में रखा जाता है जिसके द्वारा उच्च स्तर की चेतना प्राप्त की जाती है। व्यक्ति आत्मजागरूकता के साथ-साथ विश्राम की स्थिति में होता है। यह मानसिक उतार-चढ़ाव, शारीरिक सक्रियता प्रदान करता है जिसके द्वारा व्यक्ति फाइट या फ्लाइट की स्थिति प्राप्त करता है। यह बिना किसी नकारात्मक प्रभाव डाले जैवप्रतिक्रिया प्राप्त करने का सुरक्षित उपाय है। यह व्यक्ति को आत्मजागरूकता के साथ विश्राम देते हुए उच्च स्तर की चेतना पर ले जाता है। यह शरीर में होने वाले सभी स्थूल हलचलों के प्रति चेतना देता है, जो मांसपेशियों को आराम देता है और चयापचय की क्रिया में कमी देखी जाती है। (Barnes et.al. 2004; Harinath et.al. 2004; Cheisa, 2009)

ध्यान के पश्चात व्यक्ति के चयापचय में उल्लेखनीय रूप से कमी देखी जाती है, त्वचा में विद्युत प्रतिरोध जाता है, रक्तचाप, हृदयगति, मस्तिष्क की अल्फा तरंगों में वृद्धि तथा रक्त में लैक्टिक एसिड की कमी पाई जाती है। यह व्यक्ति के शरीर के विभिन्न शारीरिक गतिविधियों को सामान्य स्तर पर ले जाते हैं। इसके लिए गहरी साँस, संगीत, उपचार, ध्यान, योगनिद्रा, अन्तर्मौन, निर्देशित कल्पना इत्यादि को प्रयोग में लाया जाता है।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 13. राजयोग के अंतर्गत सामान्यतः किन दो योगांगों को सम्मिलित किया जाता है ?

.....

प्रश्न 14. सामान्य पृष्ठपोषण एवं जैव पृष्ठपोषण में क्या अंतर है ?

.....

प्रश्न 15. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने योग निद्रा को किस रूप में परिभाषित किया है ?

.....

### 13.9 सारांश

शरीर को स्वस्थ रखना हमारी प्राथमिकता है। कहा भी गया है कि 'पहला सुख निरोगी काया' अर्थात् एक व्यक्ति को सुखी रहने के लिए सबसे आवश्यक है कि उसका शरीर रोगमुक्त है। स्वास्थ्य को ही सबसे बड़ा धन माना जाता है। स्वास्थ्य लाभ के लिए जैव पृष्ठपोषण एक प्रभावी माध्यम है। जैव पृष्ठपोषण में विभिन्न उपकरणों के माध्यम से अनैच्छिक शारीरिक क्रियाओं पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए श्रव्य या दृश्य माध्यमों का उपयोग किया जाता है। सामान्य तौर पर जैव पृष्ठपोषण में उपकरण यह पृष्ठपोषण देते हैं वहीं योग सम्बन्धी जैव पृष्ठपोषण में यह योग के माध्यम से प्राप्त की जाती है। योग तथा ध्यान, मन एवं शरीर के मध्य श्वास के माध्यम से सामंजस्य स्थापित करते हैं यह जैवप्रतिक्रिया को प्राप्त करने के लिए सर्वोपयुक्त तकनीक है, जिनका शरीर के ऊपर कोई भी नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है। व्यक्ति के द्वारा नियमित, अनुशासित, समर्पित, एवं उचित मार्गदर्शन में योगाभ्यास मन-मस्तिष्क के लचीलापन को बढ़ाता है। बिना किसी मशीन के सहायता के भी व्यक्ति जैवप्रतिक्रिया प्राप्त करने में सफल होता है।

---

### 13.10 अभ्यास प्रश्न

---

1. योग एक ऐसा विषय है जो आध्यात्मिक, वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक है, स्पष्ट करें द्य
2. जैव पृष्ठपोषण शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य प्राप्ति में किस प्रकार सहायक है?
3. योग एवं जैव पृष्ठपोषण में सम्बन्ध स्थापित करें?

---

### 13.11 चर्चा के बिंदु

---

1. योग के माध्यम से जैव पृष्ठपोषण को किस प्रकार से बढ़ाया जा सकता है ?
2. जैव पृष्ठपोषण किस प्रकार से मानव शरीर में स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए सूक्ष्म परिवर्तन करता है ?

---

### 13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

1. लगभग 5000 वर्ष प्राचीन
2. रक्त परिसंचरण तंत्र, पाचन तंत्र, प्रजनन तंत्र, कंकाल तंत्र, श्वसन तंत्र इत्यादि
3. तंत्रिका तंत्र
4. योग का मन एवं शरीर के मध्य सामंजस्य स्थापित करना ही जैव पृष्ठपोषण का आधार है।
5. जैव पृष्ठपोषण एक तकनीक है जिसमें अनैच्छिक शारीरिक क्रियाओं जो अधिकांशतः तंत्रिका-तंत्र से संबंधित होती हैं, पर नियंत्रण प्राप्त करने हेतु श्रव्य या दृश्य प्रतिक्रियाओं का उपयोग किया जाता है।
6. जैव पृष्ठपोषण के माध्यम से हृदय गति, मांसपेशियों के तनाव रक्त-प्रवाह, रक्तचाप, दर्द की अनुभूति जैसी क्रियाओं पर स्वैच्छिक नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।
7. चिकित्सकीय क्षेत्र में मशीनों की सहायता से जैव पृष्ठपोषण की प्राप्ति की जाती है
8. श्वाँस, मस्तिष्क तरंग, हृदयगति, रक्तचाप, मांसपेशियों का तनाव, त्वचा का तापमान तथा स्वेद के आधार पर।
9. EEG मशीन मस्तिष्क की तरंगों का मापन करती है। इस मशीन को सिर की त्वचा पर लगाया जाता है। मशीन के इलेक्ट्रोड्स मस्तिष्क की तरंगों को उठाते हैं, और उनका मापन करते हैं।
10. EEG के माध्यम से व्यक्ति को अपने मानसिक तरंगों के विषय में पता चलता है जो व्यक्ति को दौरे, सिर की चोटों, सिरदर्द विशेषकर माइग्रेन, चक्कर आना तथा नींद से जुड़ी समस्याओं पर नियंत्रण प्राप्त कर सकता है।
11. इलेक्ट्रोमायोग्राफी मांसपेशियों की प्रतिक्रिया का मापन करता है।
12. गैल्वेनिक स्किन रिस्पांस उपकरण से प्राप्त जानकारी भावनात्मक विकारों जैसे अनावश्यक एवं अकारण डर (फोबिया), चिंता और हकलाने जैसी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।
13. आसन एवं प्राणायाम
14. सामान्य जैव पृष्ठपोषण मशीनी होता है और यौगिक में यह प्राकृतिक होता है।
15. स्वामी सत्यानंद सरस्वती ने योग निद्रा को चेतना के एक विशिष्ट आयाम के रूप में परिभाषित किया है।

---

### 13.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

1. Asrani, U.A, (1977). Yoga unveiled. Delhi: Motilal Banarasisdass.
2. Iyengar, B.K.S & Menuhin Y. (1968). Light on yoga. London: Unwin.
3. Joshi, K.S. (1991). Speaking of yogaAnd nature-cure therapy. New Delhi: Sterling.

4. शर्मा, आर. के. एवं दुबे एस. के. (2017). योग शिक्षा. आगरा: राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड।
5. शर्मा, आर.के. एवं दुबे, एस. (2016). योग शिक्षा. आगरा: राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड।

---

### 13.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

- 1- Asrani, U.A. (1977). Yoga unveiled. Delhi: Motilal Banarasidass
- 2- Barnes, V.A., Davis, H.C., Murzynowski, J.B. & Treiber, F.A. (2004). Impact of meditation on restingAmbulatory blood pressureAnd heart rate in youth. Psychosomatic Medicine. 66(6), 909-914.
- 3- Chiesa,A. (2009). In integration of current evidence. Journal ofAlternativeAnd Complementary Medicines. 15 (5), 485-592.
- 4- Desai, F. & Vyas, O. (2001).A study to derermine the effectiveness of yoga, biofeedbackAnd music therapy in management of hypertension. The Indian Journal of Occupational Therapy. 33 (2), 3-7
- 5- Ferreira-Vorkapic C, Borba-Pinheiro CJ, Marchioro M, Santana D. (2018). The impact of yoga NidraAnd seated meditation on the mental health of college professors. International Journal of Yoga. 11(3), 215-223.
- 6- Harinath K., Malhotra,A. S. & Pal, K. (2004). Effect of hath yogaAnd omkar meditations on cardio respiratory performance. Journal ofAlternativeAnd Complementary Medicine. 10, 261-268.
- 7- Hewitt J. (1983).The complete yoga book. London: Rider & Co.
- 8- Iyengar, B.K.S & Menuhin Y. (1968). Light on yoga. London: Unwin.
- 9- Joshi, K.S. (1991). Speaking of yogaAnd nature-cure therapy. New Delhi: Sterling
- 10- Lozanov, G. (nd.) Cited in Pekhale, B. (2017). Yoga nidra for stress management. Scholarly Research Journal for Humanity Science & Language. 4 (20), 4614-4616.
- 11- Patel C. (1974). YogaAnd biofeedback in the management of stress in hypertensive patient. Clinical scienceAnd molecular medicine. Supplement. 48 (2), 171-174.
- 12- Prabhu, G. (2014). BiofeedbackAnd its role in yogaAnd meditation science. Retrieved from <https://www.ahymsin.org/docs2/News/1404Apr/04.html>
- 13- Rani, K., Tiwari S.C., Kumar, S., Singh.U. Prakash, J. etAl., (2016). Psycho-biological changes withAdd on yoga nidra in patients with menstrual disorders:A randomized clinical trial. Journal of Caring Sciences. 5(1), 1-9.
- 14- TheAssociation forApplied PsychophysiologyAnd BiofeedbackAbout Biofeedback. (2011). Cited in Lolli, J. & CossidenteA. (2015). Biofeedback. In KatsambasA.D., Lotti T.M. Dessinioti, C. D'Erme,A.M. (eds). European Handbook of Dermatological Treatments. Berlin, Heidelberg: Springer.
- 15- Yoga Nidra. Bihar School of Yoga, Munger. 6th edition 1998. Saraswati, Swami Satyananda
16. आयंगर, बी.के.एस. (2019). पतंजलि योग सूत्र. नई दिल्ली : प्रभात पेपरबैक्स।
17. गोयन्दका, एच. के. डी. (2019). योग दर्शन. गोरखपुर : गीताप्रेस।
18. योग विद्या (जनवरी, 2018). मुंगेर : बिहार योग विद्यालय. 7(1) : 9—15
19. योग विद्या (फरवरी, 2013). मुंगेर : बिहार योग विद्यालय. 2(2) : 17—25



---

## इकाई – 14 : योग के चिकित्सकीय मूल्य

---

### इकाई की संरचना

- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 इकाई के उद्देश्य
- 14.3 स्वास्थ्य की संकल्पना : पाश्चात्य दृष्टिकोण
- 14.4 स्वास्थ्य की संकल्पना : भारतीय दृष्टिकोण
- 14.5 स्वास्थ्य की परिभाषा
- 14.6 योग एवं चिकित्सा
- 14.7 योग के मूलभूत सिद्धांत
- 14.8 चिकित्सीय लाभ हेतु योग के घटक
  - 14.8.1 आसन
  - 14.8.2 प्राणायाम
  - 14.8.3 ध्यान
  - 14.8.4 निर्देशित कल्पना
- 14.9 योग के चिकित्सकीय मूल्य
- 14.10 योग चिकित्सा के कतिपय सिद्धांत
- 14.11 योग चिकित्सा के तौर तरीके
- 14.12 बीमारियों में योग की भूमिका पर हुए शोध
  - 14.12.1 तनाव में कमी
  - 14.12.2 चिंतामुक्ति
  - 14.12.3 अल्जाइमर
  - 14.12.4 सिजोफ्रेनिया
  - 14.12.5 अवसाद में कमी
  - 14.12.6 मादक द्रव्यों के सेवन में कमी
  - 14.12.7 रक्तचाप में कमी
  - 14.12.8 मोटापे की समस्या का समाधान
  - 14.12.9 अस्थमा या दमा
  - 14.12.10 मिर्गी की समस्या
  - 14.12.11 हृदयाघात
  - 14.12.12 आमवाती समस्या/शिकायत
  - 14.12.13 कैंसर
  - 14.12.14 अनिद्रा
- 14.13 सारांश

- 14.14 अभ्यास के प्रश्न
- 14.15 चर्चा के बिंदु
- 14.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 14.17 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 14.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

## 14.1 प्रस्तावना

---

वर्तमान युग विज्ञान एवं तकनीकी का युग है। वैज्ञानिक अनुसंधानों एवं तकनीकों ने मानव जीवन को अत्यंत सरल और सहज बना दिया है। मनुष्य का जीवन सुगम एवं सुखी बनने के साथ ही जीवन प्रत्याशा में वृद्धि आयी है और मृत्युदर कम हुई है। चिकित्सकीय सुविधाओं के परिणामस्वरूप मनुष्यों का औसत जीवन वर्ष बढ़ गया है। वैसे तो चिकित्सा के कई प्रकार हैं जिनमें जीव चिकित्सा, रोगनिवारक चिकित्सा, यांत्रिक चिकित्सा, मनोचिकित्सा, औषधि चिकित्सा, आहार चिकित्सा, रस चिकित्सा, अन्तःस्रावी चिकित्सा, सूर्यरश्मि चिकित्सा इत्यादि आते हैं। इन्हीं में से एक चिकित्सा पद्धति योग चिकित्सा भी है।

चिकित्सा विज्ञान में योग का अति महत्वपूर्ण स्थान है। जहाँ चिकित्सा विज्ञान मुख्य रूप से बीमारी हो जाने के पश्चात उसके लिए औषधि देने से संबंधित है वहीं योग के द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि शरीर को व्याधियों से मुक्त रखा जाए। इस प्रकार जहां चिकित्सा विज्ञान के अन्य विभागों में बीमारी होने के पश्चात उनके उपचार का प्रयास किया जाता है वहीं योग के माध्यम से यह सुनिश्चित किया जाता है कि मनुष्य को बीमारी होने की संभावना कम से कम रहे। और इतना ही नहीं किसी भी रोग के हो जाने की दशा में यह प्रयास किया जाता है कि व्यक्ति को किस प्रकार रोग से मुक्त किया जा सके।

---

## 14.2 इकाई के उद्देश्य

---

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि—

1. स्वास्थ्य के पाश्चात्य संकल्पना की व्याख्या कर सकेंगे।
2. विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर स्वास्थ्य के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
3. स्वास्थ्य के भारतीय संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. स्वास्थ्य के भारतीय एवं पाश्चात्य संकल्पना में अंतर स्थापित कर सकेंगे।
5. स्वास्थ्य को परिभाषित कर सकेंगे।
6. योग में निहित चिकित्सकीय मूल्यों को उल्लिखित कर सकेंगे।
7. चिकित्सकीय सन्दर्भ में योग के विभिन्न मूलभूत सिद्धांतों का वर्णन कर सकेंगे।
8. योग के विभिन्न घटकों के माध्यम से होने वाले स्वास्थ्य लाभों को बता सकेंगे।
9. योग चिकित्सा के सिद्धांतों को उल्लिखित कर सकेंगे।
10. विभिन्न शोधों के आधार पर प्रामाणित योग में निहित चिकित्सकीय लाभों का वर्णन कर सकेंगे।

---

## 14.3 स्वास्थ्य की संकल्पना : पाश्चात्य दृष्टिकोण

---

स्वास्थ्य को कई दृष्टिकोणों के आधार पर परिभाषित किया जाता है। यह सभी दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न रूपों में स्वास्थ्य को परिभाषित करते हैं। इस क्रम में हम सर्वप्रथम जैव चिकित्सकीय अवधारणा को लेते हैं। जैव चिकित्सकीय अवधारणा स्वास्थ्य की एक संकुचित परिभाषा देती है। 'रोगों के रोगाणु सिद्धांत' का विकास का श्रेय जैव चिकित्सकीय अवधारणा को ही जाता है। इस अवधारणा के अनुसार स्वास्थ्य का अर्थ शरीर में रोग का न होना है। जैव चिकित्सकीय अवधारणा शरीर को एक जटिल मशीन के रूप में देखती है और किसी कारणवश जब

इस मशीन में कोई समस्या उत्पन्न होती है तब वह समस्या एक रोग या बीमारी के रूप में उभर कर आती है और इसका निदान चिकित्सक के द्वारा उस रोग का निदान कर किया जाता है। यह अवधारणा समस्या के निदान हेतु औषधियों पर निर्भर करती है।

दूसरी अवधारणा पारिस्थितिकीय अवधारणा है। पारिस्थितिकीय अवधारणा मानव एवं पर्यावरण के मध्य एक सम्बन्ध, एक संतुलन की बात करती है। जब सम्बन्ध या संतुलन में कमी आती है तब व्यक्ति में बीमारी के लक्षण दिखते हैं और व्यक्ति बीमार हो जाता है। यह असंतुलन किसी भी एक घटक की अपूर्णता के परिणामस्वरूप हो सकता है यह चाहे मानव हो या फिर पर्यावरण। जब मानव का व्यवहार असंतुलित हो तो उसे अपूर्ण मानव की संज्ञा दी जाती है और जब पर्यावरण के लिए आवश्यक तत्वों का अभाव हो तो उसे अपूर्ण पर्यावरण की संज्ञा दी जाती है। इनमें से किसी एक में भी आया असंतुलन मनुष्य के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। यदि दोनों तरफ से यह संतुलन बना रहे तो व्यक्ति की सभी शारीरिक एवं मानसिक क्रियाएँ सुचारु रूप से चलती रहती हैं।

अगली अवधारणा मनोसामाजिक है। मनोसामाजिक अवधारणा समर्थक मात्र के रोगाणुओं को ही अस्वस्थता का कारण नहीं मानते बल्कि मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक कारक सभी मिलकर स्वास्थ्य का निर्धारण करते हैं। स्वास्थ्य मानसिक एवं सामाजिक दोनों ही घटकों के द्वारा प्रभावित होता है।

अंतिम अवधारणा समग्र अवधारणा है। समग्र का अर्थ होता है सम्पूर्ण य अर्थात् वह अवधारणा जो प्रत्येक अवधारणा को स्वयं में सम्मिलित करती है। इसी प्रकार से समग्र अवधारणा अपने पूर्व के तीनों अवधारणाओं जैव चिकित्सकीय अवधारणा, पारिस्थितिकीय अवधारणा एवं मनोसामाजिक अवधारणा के सिद्धांतों को सम्मिलित करती है। समग्र अवधारणा रोगाणु, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक कारकों को अस्वस्थता का कारण मानती है।

#### 14.4 स्वास्थ्य की संकल्पना : भारतीय दृष्टिकोण

स्वास्थ्य की भारतीय संकल्पना अत्यंत ही विशद है।

“स्वस्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थाः” अर्थात् जो स्व में रहता है, वह स्वस्थ है।

यदि स्वस्थ शब्द का शाब्दिक अर्थ देखें तो इसका यही अर्थ निकलता है अर्थात् जो स्व में अवस्थित हो एक अस्वस्थ व्यक्ति शारीरिक, मानसिक या सांवेगिक रूप से अस्थिर हो उठता है और उसकी यह स्थिति उसके स्व में उसकी अवस्थिति को प्रभावित करती है। जहाँ पाश्चात्य संकल्पना शारीरिक और मानसिक व्याधियों की मुक्ति तक से ही सम्बंधित है वहीं भारतीय संकल्पना किसी भी व्यग्रता की स्थिति को अस्वस्थता से जोड़ती है। आयुर्वेद में स्वास्थ्य की इसी संकल्पना के आधार पर कहा गया है कि “समदोषरु समानिश्य समधातुमल क्रिया। प्रसन्नत्येन्द्रियमनाः स्वस्था इत्ययिधीयते”।। अर्थात्—वात, पित्त एवं कफ ये तीनों ही दोष सम हों, जठराग्नि, भूताग्नि आदि अग्नि सम हो, धातु एवं मल, मूत्र आदि की क्रिया विकार रहित हो तथा जिसकी आत्मा, इन्द्रिय और मन प्रसन्न हों, वही स्वस्थ है।

आचार्य चरक ने स्वास्थ्य की परिभाषा देते हुए कहा है —

सममांसप्रमाणस्तु समसंहननो नरः।

दृढेन्द्रियो विकाराणां न बलेनाभिभूयते।। 18।।

क्षुत्पिपासातपसहः शीतव्यायामसंसहः।

समपक्ता समजरः सममांसचयो मतः।। 19।।

अर्थात् जिस व्यक्ति का मांस धातु समप्रमाण में हो, जिसका शारीरिक गठन समप्रमाण में हो, जिसकी इन्द्रियाँ थकान से रहित सुदृढ़ हों, रोगों का बल जिसको पराजित न कर सके, जिसका व्याधिक्ष समत्व बल बढ़ा हुआ हो, जिसका शरीर भूख, प्यास, धूप, शक्ति को सहन कर सके, जिसका शरीर व्यायाम को सहन कर सके, जिसकी पाचनशक्ति (जठराग्नि) समावस्था में कार्य करती हो, निश्चित कालानुसार ही जिसका बुढ़ापा आये, जिसमें मांसादि की चय-उपचय क्रियाएँ समान होती हों — ऐसे लक्षणों वाले व्यक्ति को स्वस्थ व्यक्ति की संज्ञा दी जा सकती है।

इसी प्रकार की स्वास्थ्य की समान विवेचना काश्यपसंहिता में की गयी है।

अन्नाभिलाषो भुक्तस्य परिपाकः सुखेन च।

सृष्टविष्णुमूत्रवातत्वं शरीरस्य च लाघवम्॥

सुप्रसन्नेन्द्रियत्वं च सुखस्वप्न प्रबोधनम्।

बलवर्णायुषां लाभः सौमनस्यं समाग्निता॥

विद्यात् आरोग्यलिङ्गानि विपरीते विपर्ययम्। – (काश्यपसंहिता, खिलस्थान, पञ्चमोध्यायः)

भोजन करने की इच्छा, अर्थात् भूख समय पर लगती हो, भोजन ठीक से पचता हो, मलमूत्र और वायु के निष्कासन उचित रूप से होते हों, शरीर में हलकापन एवं स्फूर्ति रहती हो, इन्द्रियाँ प्रसन्न रहती हों, मन की सदा प्रसन्न स्थिति हो, सुखपूर्वक रात्रि में शयन करता हो, सुखपूर्वक ब्रह्ममुहूर्त में जागता होय बल, वर्ण एवं आयु का लाभ मिलता हो, जिसकी पाचक-अग्नि न अधिक हो न कम, उक्त लक्षण हो तो व्यक्ति निरोगी है अन्यथा रोगी है।

उपरोक्त विवरणों के आधार पर हम समझ सकते हैं कि स्वास्थ्य की भारतीय संकल्पना पाश्चात्य संकल्पना से भिन्न एवं विस्तृत है। स्वास्थ्य को मात्र शरीर में रोगों की अनुपस्थिति से ही नहीं देखा गया है बल्कि व्यक्ति के मन, आत्मा एवं समस्त इन्द्रियों की प्रसन्नता की स्थिति से देखा गया है। यदि ये सारी स्थितियाँ व्यक्ति में हैं तभी वह स्वस्थ है। व्यक्ति में भूख, प्यास, नींद, निष्कासन, शारीरिक एवं मानसिक स्फूर्ति सभी की सम उपस्थिति ही सही स्वास्थ्य का द्योतक है।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 1. 'रोगों के रोगाणु सिद्धांत' का विकास स्वास्थ्य की किस अवधारणा के अनुसार हुआ है ?

.....

प्रश्न 2. स्वास्थ्य की मनोसामाजिक अवधारणा अस्वस्थता का कारण किन कारकों को मानती है?

.....

प्रश्न 3. आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति के कौन से लक्षण होते हैं?

.....

प्रश्न 4. चरक के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति के क्या लक्षण होते हैं?

.....

## 14.5 स्वास्थ्य की परिभाषा

स्वास्थ्य विज्ञान को अंग्रेजी भाषा में हेल्थ एवं हाइजीन कहा जाता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा में 'हाईजिया' शब्द से हुई है। 'ग्रीक' की पौराणिक गाथाओं के अनुसार 'हाईजिया' स्वास्थ्य की देवी का नाम है। यूनान के निवासी हाईजिया को स्वास्थ्य का रक्षक मानते थे। इस प्रकार स्वास्थ्य की देवी के नाम पर जो स्वास्थ्य की रक्षक मानी जाती हैं, के आधार पर स्वास्थ्य रक्षा को हाइजीन का नाम दिया गया छ 'स्वास्थ्य' शब्द का अंग्रेजी

रूपान्तरण हेतु है, जिसका अर्थ है—सुरक्षित व सुन्दर रहना। शब्दकोष के अनुसार शरीर, मन और आत्मा का प्रसन्नचित्त और निरोग रहना ही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य की कुछ मान्य परिभाषाएँ इस प्रकार से हैं —

**विश्व स्वास्थ्य संगठन, 1948** — स्वास्थ्य पूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक संतुलन की अवस्था है, केवल रोग या अपंगता का अभाव नहीं।

**विश्व स्वास्थ्य संगठन (नं. 137) 1957** — किसी आनुवांशिक और पर्यावरणीय स्थिति में मनुष्य के जीवन चर्या का ऐसा गुणवत्तापूर्ण स्तर, जिसमें उसके द्वारा सारे कार्य यथोचित समय और सुचारु रूप से सम्पादित किये जा रहे हों, स्वास्थ्य कहलाता है।

**पर्किन्स** — शरीर की रचना और क्रिया की ऐसी सापेक्ष साम्यावस्था जो किसी भी प्रतिकूल स्थिति में शरीर को सफलतापूर्वक, संतुलित एवं जीवन्त रखती है, स्वास्थ्य कहलाती है। स्वास्थ्य शरीर के आन्तरिक अवयवों और इन्हें आहत करने वाले कारकों के बीच निष्क्रिय प्रक्रिया न होकर इन दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित करने की सक्रिय प्रक्रिया है।

**ऑक्सफोर्ड इंग्लिश कोष** — शरीर और मन की तेजपूर्ण स्थिति, ऐसी अवस्था जिसमें समस्त शारीरिक और मानसिक कार्य समय से और पूरी क्षमता से सम्पादित हो रहे हों, ऐसी अवस्था को स्वास्थ्य कहते हैं।

**ड्यूबोस, आर., 1968** — जीवन का ऐसा उपक्रम, जो व्यक्ति को प्रतिकूल परिस्थितियों और अपूर्व विश्व में सुखपूर्वक जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करता है, स्वास्थ्य कहलाता है।

उपरोक्त सभी परिभाषाओं से स्पष्ट है कि स्वास्थ्य वह शारीरिक या मानसिक अवस्था है जो हमारे गुणवत्तापूर्ण जीवन को सुनिश्चित करती है। एक स्वस्थ व्यक्ति अपने शारीरिक एवं मानसिक क्षमता तथा योग्यता के अनुरूप अपने सभी कार्यों को सम्पादित कर पाता है।

---

## 14.6 योग एवं चिकित्सा

---

वैदिक दर्शनशास्त्र में चिकित्सा की छः पद्धतियों का वर्णन किया गया है और योग उनमें से एक है। योग को वस्तुतः एक ऐसी पद्धति के रूप में देखा जाता है जो बिमारियों के निवारण के साथ-साथ व्यक्ति के स्वास्थ्य की अभिरक्षा करती है जिससे कोई व्याधि हो ही नहीं छ योग दर्शन में शरीर को जड़ एवं आत्मा को चेतन माना गया है। कषाय हमें आत्मा के वास्तविक स्वरूप से परिचित नहीं होने देते और अज्ञानता के परिणामस्वरूप हम शरीर एवं आत्मा को एक ही मानते हैं। योग का फल मात्र शारीरिक एवं मानसिक न होकर आध्यात्मिक भी होता है जो आत्मा के ऊपर पड़े बंधनों से उसे मुक्त करके उसे उसकी वास्तविक अवस्था में लाती है। योग के प्रणेता पतंजलि हैं जिन्होंने अष्टांग योग का वर्णन किया है।

**“योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेकख्यातेः ॥ 2.28 ॥”**

अर्थात् योग के अंगों का अनुष्ठानों को आचरण में लाने से चित्त के मल का अभाव होकर वह सर्वथा निर्मल हो जाता है, उस समय योगी के ज्ञान का प्रकाश विवेक ख्याति तक हो जाता है अर्थात् उसे आत्मा का स्वरूप, बुद्धि, अहंकार और इन्द्रियों से सर्वथा भिन्न प्रत्यक्ष दिखलायी देता है। (आयंगर, 2019)

अष्टांग शब्द का संधि विच्छेद अष्टांग होता है अर्थात् आठ अंग यद्यपि आठ अंग मनुष्य का सर्वांगीण विकास करने के लिए हैं। इन आठ अंगों का वर्णन पातंजल्य योग दर्शन में मिलता है।

**यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोष्ठावङ्गानि ॥**

यदि इन आठ अंगों की व्याख्या की जाए तो इस प्रकार से है।

**यम—** यम आत्म नियंत्रण से है।

**नियम—** नियम का आशय अनुशासन और उसके पालन से है।

**आसन—** आसन का आशय शरीर की अवस्थाओं से है कि किस प्रकार शरीर को शुद्ध रखा जा सकता है।

**प्राणायाम—** प्राणायाम श्वाँस के नियंत्रण से संबंधित है।

**प्रत्याहार**— प्रत्याहार मनुष्य को उसकी इंद्रियों पर नियंत्रण रखना सिखाता है।

**धारणा**— धारणा ध्यान लगाने की क्रिया है जो मन को एकाग्र रखने में सहायता करती है।

**ध्यान**— ध्यान को साधना या चिंतन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह अष्टांग योग में धारणा से ऊपर की स्थिति है।

**समाधि**— समाधि को गहन साधना या पूर्ण चिंतन की संज्ञा दी जा सकती है। जहां मनुष्य अपने सर्वोच्च रूप को प्राप्त कर लेता है।

पहले पाँच (यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार) बहिरंग शोधन के साधन हैं। प्रत्याहार बहिरंग एवं अंतरंग के बीच परिवर्तनशील अवस्था है (आयंगर, 2019)। धारणा ध्यान और समाधि आंतरिक शोधन के साधन हैं। इसमें धारणा और ध्यान अंतरंग विश्लेषण साधना के अंतर्गत आते हैं। कहीं समाधि जो सर्वोच्च अवस्था है जिसमें आने पर मनुष्य सच्चिदानंद की अवस्था में आ जाता है, जहाँ वह अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

यदि योग को हम एक दर्शन के रूप में देखें तो यह मानव की जटिलताओं के विषय में विस्तार से व्याख्या मात्र ही नहीं करता बल्कि इन जटिलताओं और समस्याओं से किस प्रकार बाहर निकला जाए इसका मार्ग भी सुझाता है। योग का स्वरूप मात्र आध्यात्मिक ही नहीं है जो ईश्वर से आत्मा को युग्मित करने का सिर्फ मार्ग ही बताता है वरन् यह भौतिक जीवन से भी उतना ही संबंधित है। योग को जो भी मात्र आध्यात्मिकता से जोड़ते हैं वह योग का मात्र संकुचित और एक ही पक्ष देखते हैं। यदि स्पष्ट रूप से कहा जाए तो योग के दो पक्ष हैं— आध्यात्मिक एवं भौतिक। आध्यात्मिक पक्ष जहां योग के माध्यम से मुक्ति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करने का मार्ग देता है वहीं योग का भौतिक पक्ष हमारे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित है कि किस प्रकार मनुष्य योग को अपनाकर रोग एवं बीमारियों से दूर रह सकता है। इसके साथ ही कुछ लोग यह तर्क दे सकते हैं कि यही कार्य चिकित्सा विज्ञान के द्वारा भी किया जाता है तो व्यक्ति क्यों ना चिकित्सा का सहारा ले क्यों योग के मार्ग को अपनाये द्य तो इसका उत्तर यह है कि चिकित्सा विज्ञान किसी रोग के होने के पश्चात उसका निदान करता है और यह सर्वविदित है कि इसके कई बुरे परिणाम भी हो सकते हैं, तथा यह पाए भी गए हैं (Aronson et-al-2002; Papani kolaou and Ioannidis, 2004) द्य उसी स्थान पर योग व्यक्ति को हर रूप में सकारात्मक तरीके से ही प्रभावित करता है। यह मात्र रोग होने के उपरांत चिकित्सा करने से संबंधित नहीं है बल्कि व्यक्ति को आंतरिक रूप से स्वस्थ बनाने से संबंधित है, जिससे रोगों के हो सकने की संभावना कम रहे। वह रोग मुक्त रह सके द्य इसके अतिरिक्त रोग हो जाने की स्थिति में यह रोग का उपचार कर रोग होने के कारणों को नष्ट करता है जिससे भविष्य में भी हम रोगमुक्त रह सकें। जहां दवाओं से हमारे शरीर पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और शरीर कमजोर हो जाता है और भविष्य में जिससे अस्वस्थ होने का खतरा बढ़ जाता है। वहीं योग के द्वारा हमारे बाहरी अंगों के साथ-साथ हमारे आंतरिक अंग भी स्वस्थ एवं सुगठित बनते हैं जिससे रोगों के होने की संभावना कम हो जाती है। रोग व्यक्ति को बीमार बनाते हैं एवं व्यक्ति को बुढ़ापे और मृत्यु की ओर ले जाते हैं जिसके विपरीत योग बीमारी से रक्षा करते हुए व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक और साम्बेगिक रूप से मजबूत बनाते हैं।

वर्ष 1978 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने आधिकारिक तौर पर विकासशील देशों में योग को बढ़ावा देना शुरू किया था और इसकी वजह योग की चिकित्सीय क्षमता ही है। पश्चिमी देशों में योग की इस क्षमता को व्यापक रूप में मान्यता दी गई। राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान द्वारा योग को पूरक तथा वैकल्पिक चिकित्सा (CPM) की संज्ञा दी गई है। यह देखा गया है कि योग आसनों के द्वारा किए जाने वाला एक व्यायाम मात्र ही नहीं है बल्कि योग के अभ्यास के द्वारा व्यक्ति में मानसिक शक्ति, लचीलापन, धीरज, आत्मनियंत्रण, मित्रता, करुणा, शांति, कल्याण की भावना, आत्मजागरूकता एवं वास्तविक आनंद की समझ बढ़ती है जो स्वास्थ्य की वृहद परिभाषा है (Mehta et.Al. 1995; Desikachar et.Al. 2005; Atkinson & Permuth-Levine, 2009)। यह मन, शरीर और आत्मा/प्राण को एक बिंदु पर लाते हुए संतुलन स्थापित करता है (संपूर्णानंद, 2017)।

योग को मन एवं शरीर को आरोग्यता प्रदान करने वाली चिकित्सा के रूप में देखा जाता है जो मांसपेशियों को लचीली एवं पुष्ट बनाते हुए श्वास, उर्जा एवं मन को एकाग्र करते हुए ध्यान केंद्रित करने में मदद करती है। योग के चार मूलभूत सिद्धांत इसकी चिकित्सा प्रणाली की शिक्षाओं एवं विधियों को स्पष्ट करते हैं।

## बोध प्रश्न

### टिप्पणी :

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 5. हाइजीन शब्द की व्युत्पत्ति किस ग्रीक शब्द से हुई है ?

.....

प्रश्न 6. ऑक्सफोर्ड इंग्लिश कोष ने स्वास्थ्य को किस प्रकार परिभाषित किया है?

.....

प्रश्न 7. योग सामान्य चिकित्सा से बेहतर क्यों है?

.....

प्रश्न 8. राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान ने योग को किस प्रकार की चिकित्सा की संज्ञा दी है?

.....

## 14.7 योग के मूलभूत सिद्धांत

**पहला सिद्धांत**— पहले सिद्धांत में मानव शरीर को एक समग्र इकाई के रूप में देखा जाता है जिसके सभी आयाम एक-दूसरे से संबंधित हैं अतः किसी एक आयाम का सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित होना अन्य आयामों को भी प्रभावित करता है।

**दूसरा सिद्धांत**— दूसरा सिद्धांत व्यक्तिगत भिन्नता के सिद्धांत पर आधारित है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कुछ अर्थों में भिन्न होता है और इन्हीं गुणध्विशेषताओं के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में अद्वितीय होता है, उनकी आवश्यकताएं अलग होती हैं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अद्वितीय रूप से स्वीकार करते हुए उनके द्वारा उनके व्यक्तित्व के अनुसार ही योगाभ्यास को किया जाना चाहिए।

**तीसरा सिद्धांत**— तीसरा सिद्धांत है योग के माध्यम से आत्मा सशक्तिकरण। व्यक्ति अपना उपचार स्वयं ही कर सकता है। योग चिकित्सा क्रिया में योग के माध्यम से व्यक्ति को यह स्पष्ट करती है कि उसकी चिकित्सा किसी बाह्य माध्यम से नहीं बल्कि उसके आंतरिक रूप में है, जिसे वह स्वयं भी कर सकता है।

**चौथा सिद्धांत**— चौथा सिद्धांत व्यक्ति के मस्तिष्क से संबंधित है। यह मानता है कि व्यक्ति के मस्तिष्क की स्थिति एवं मस्तिष्क की गुणवत्ताय योग द्वारा चिकित्सा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक सकारात्मक विचारों से पूर्ण, स्वस्थ मस्तिष्क चिकित्सा को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

## 14.8 चिकित्सीय लाभ हेतु योग के घटक

योग का चिकित्सीय लाभ लेने हेतु योग के निम्नलिखित घटकों को इसमें शामिल किया जाता है।

### 14.8.1 आसन

स्थिर तथा सुखपूर्वक बैठने की क्रिया आसन कहलाती है। आसनों का विशद वर्णन और शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर इसके प्रभाव का वर्णन अध्याय 'शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य उन्नति में विभिन्न आसनों का प्रभाव' में किया गया है।

### 14.8.2 प्राणायाम

प्राणायाम योग का एक महत्वपूर्ण अंग है। प्राण के आयाम को ही प्राणायाम कहते हैं। प्राण हमारे शरीर के सभी सूक्ष्म ऊर्जा ग्रंथियों (नाडि) और ऊर्जा के केंद्रों (चक्र) से गुजरती है और शरीर के चारों ओर आभामंडल बनाती है। हमारे शरीर में होने वाली चेष्टाएँ, शरीर के द्वारा की जाने वाली क्रियाएँ, प्राण से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्बंधित होती हैं। संस्कृत में एक श्लोक है 'जीव-प्राणधारणे' और 'मृड् प्राणत्यागे' जो बताता है कि जीवन वहीं है जिसमें प्राण है और उस प्राण के निकलने के साथ ही जीव मृत की श्रेणी में चला जाता है। इस प्रकार प्राण वह शक्ति है जो हमारे शरीर में जीवन भरती है और हमारे मन को शक्ति देती है। 'प्राण' हमारा जीवन है और आयाम उस प्राण को नियमित और नियंत्रित करने से है। जिस क्रिया से हम अपने जीवन शक्ति को नियमित और नियंत्रित करते हैं, उसे प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम के द्वारा कई चिकित्सीय लाभ के प्रमाण मिलते हैं। प्राणायाम के कई प्रकार होते हैं, और व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार अलग-अलग प्राणायाम उनके लिए लाभकारी होते हैं। जैसे भस्त्रिका, अभ्यांतर, कुम्भक वात एवं कफ व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों के लिए बहुत ही लाभदायक होते हैं वहीं पित्त व्यक्तित्व वाले लोगों के लिए शीतली, सीतकारी एवं रेचक लाभकारी होते हैं। प्राणायाम के अभ्यास के माध्यम से मानसिक शांति मिलती है और मानसिक विकार मुक्त होते हैं। इसके अलावा अनेक अन्य श्वास रोग जैसे दमा इत्यादि का निवारण प्राणायाम के माध्यम से किया जा सकता है। प्राणायाम के द्वारा रक्तचाप, हृदय रोग, मधुमेह, सोरायसिस, एक्जिमा में आराम मिलता है। प्राणायाम के अभ्यास से हृदय तथा रक्त वाहिनियां सुचारु रूप से कार्य करती हैं।

### 14.8.3 ध्यान

एक लम्बे समय तक बिना रुके चिंतन करने की स्थिति ध्यान है। ध्यान वह साधना की स्थिति है जिसमें व्यक्ति किसी व्यवधान के अपने मन को ध्येय पर केन्द्रित कर लेता है। मन के इस केन्द्रण की अवस्था में चित्त तद्रूप हो जाता है। ध्यान के तीन प्रकार होते हैं— विराट ध्यान, ईश ध्यान, एवं ब्रह्म ध्यान।

### 14.8.4 निर्देशित कल्पना

निर्देशित कल्पना व्यक्ति को चित्त की शांति देने की एक प्रक्रिया है। निर्देशित कल्पना के अंतर्गत योग चिकित्सक के द्वारा व्यक्ति को आंतरिक शक्ति देने के लिए निर्देशित दृश्य प्रदान किया जा सके द्य निर्देशित कल्पना के द्वारा शरीर में स्फूर्ति आती है और मन शान्त रहता है।

योग को विज्ञान के साथ-साथ एक स्वस्थ जीवन जीने की कला के रूप में जाना जाता है। जब योग का प्रारंभ हुआ था तब उसका अभ्यास व्यक्ति के व्यक्तिगत ज्ञान तक ही सीमित था परंतु वर्तमान में यह मात्र व्यक्तिगत ज्ञान से संबंधित ना होकर हमारे शारीरिक व मानसिक व्याधियों के समग्र उपचार पद्धति की ओर स्थानान्तरित हो गया है।

#### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

प्रश्न 9. योग का वैयक्तिक भिन्नता का सिद्धांत किस ओर इंगित करता है ?

.....

.....

.....

प्रश्न 10. योग का चौथा मूलभूत सिद्धान्त किससे सम्बंधित है ?

.....

.....

प्रश्न 11. आसन किसे कहते हैं ?

.....

प्रश्न 12. प्राणायाम के द्वारा क्या चिकित्सकीय लाभ हो सकते हैं?

## 14.9 योग के चिकित्सकीय मूल्य

1. शोधों के द्वारा यह परिणाम प्राप्त हुआ है कि योग मस्तिष्क की क्रियात्मक क्षमता एवं दक्षता दोनों को बेहतर बनाता है (Chan & Woollacott, 2007, Kozasa, 2012; Deepeshwar etAl. 2014)। योग के द्वारा नींद एवं अन्य कई समस्याएं दूर होती हैं।।कम्ब एवं ऑटिज्म का भी उपचार किया जाता है।
2. योग का अभ्यास करने वाले व्यक्ति योग ना करने वालों की तुलना में अधिक स्वस्थ होते हैं।
3. योग के माध्यम से बुजुर्गों की स्मृति संबंधित समस्याओं का समाधान होता है। वृद्धावस्था के दौरान मस्तिष्क के कुछ क्षेत्र सिकुड़ने लगते हैं जिसकी वजह से अल्जाइमर (भूलने की समस्या) जैसी समस्या इस अवस्था में देखने को मिलती है। यह देखा गया है कि वह बुजुर्ग जो योगाभ्यास करते हैं उनके मस्तिष्क की याददाश्त वाले हिस्से में वृद्धि देखी गई है जिससे स्मृति संबंधी समस्याएं उन्हें नहीं हुई। मस्तिष्क में जब कोर्टिसोल का स्तर ज्यादा होता है तो मस्तिष्क सामान्य रूप से काम नहीं कर पाता है। योग करने से रक्त में प्रोटीन का स्तर बढ़ता है जो मस्तिष्क की मरम्मत करता है, स्मृति से संबंधित समस्याओं को नहीं होने देता है एवं अन्य प्रकार के दुष्प्रभावों से भी बचाता है।
4. ओम् (ॐ) शब्द के योग में प्रयोग के बीच मतभेद हो सकते हैं क्योंकि कुछ लोग इसे किसी एक धर्म से संबंधित मानते हैं। परंतु ओम् के उच्चारण से मस्तिष्क के क्षेत्र शांत होते हैं, उनकी गतिविधि संतुलित एवं संयमित हो जाती है। भावनात्मक उत्तेजना के कुछ क्षेत्र अधिक सक्रिय होकर मस्तिष्क को अशांत करते हैं। योग में ओम् का उच्चारण भावनात्मक उत्तेजना को कम करके मस्तिष्क को शांत करता है।
5. योग तंत्रिका तंत्र को सक्रिय कर शारीरिक व मानसिक तनाव को कम करता है।
6. योग मस्तिष्क को एकाग्र एवं सजग बनाता है जो विद्यार्थियों के लिए अत्यावश्यक है।
7. योग आत्मबोध (self-reliance) एवं आत्म-सम्मान (Self-esteem) में वृद्धि करता है।
8. योग व्यक्ति के अंदर के दूषण को दूर करता है वह चाहे शारीरिक हो या फिर विचार संबंधी।
9. योग व्यक्ति को स्व-चिकित्सा की ओर प्रोत्साहित करता है।
10. योग शरीर को लचीला एवं मांसपेशियों को स्वस्थ बनाता है।
11. योग श्वसन एवं जीवन शक्ति में सुधार लाने में बहुत उपयोगी है।
12. श्वाँस संबंधी व्यायाम चेहरे को कांतिमय बनाते हैं।
13. योग शरीर को रोगों से लड़ने के लिए तैयार करता है।
14. मोटापे संबंधी समस्या के समाधान हेतु यह एक उत्तम उपाय है।
15. योग जीवन में पूर्ण संतुलन स्थापित करने में सहायक है।

## 14.10 योग चिकित्सा के कुछ सिद्धांत

भारत सरकार के आयुष मंत्रालय ने योग चिकित्सा के कुछ मूलभूत सिद्धांतों का वर्णन किया है जिसके पालन के द्वारा ही योग चिकित्सा का लाभ लिया जा सकता है। ये सिद्धांत निम्नवत हैं

1. एक साधक को अपने शरीर, अपने मन, अपनी भावनाओं एवं विचार प्रक्रियाओं से अवगत रहना चाहिए।

2. स्वयं को आपादमस्तक अर्थात् पैर की उंगलियों से सिर तक आराम दें।
3. आहार संबंधी आदतों में सुधार करें।
4. मन को शांत करें और उसे बाहरी चीजों से मोड़ते हुए अपने अंदर की ओर केंद्रित करें।
5. श्वास को शांत एवं गहरा बनाते हुए, इसे धीमा करें।
6. अपने शरीर के सभी हिस्सों, विशेषकर उन हिस्सों को जो रोग ग्रस्त हैं उनमें आरोग्यकर उपचारात्मक प्राणिक जीवन ऊर्जा के प्रवाह में सुधार करें, और इसके माध्यम से स्वयं को आराम देते हुए पुनर्जीवित और पुनः सशक्त बनायें।
7. जीवन में व्याप्त तनाव के विरुद्ध स्वयं को मजबूत कर अपने तनाव के स्तर को कम करें।
8. अपनी आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास के स्तर को बढ़ाएं।
9. धौति, वस्ती एवं नेति जैसी योग की शुद्धि क्रियाओं के अभ्यास से अपने शरीर से अपशिष्ट पदार्थ एवं मल के प्राकृतिक उत्सर्जन के लिए प्रयास करें।
10. व्यक्ति अपने स्वास्थ्य हेतु सबसे पहले स्वयं ही जिम्मेदार है अतः व्यक्ति की पहल होनी चाहिए कि वह स्वयं को स्वस्थ रखें।
11. एक स्वस्थ शरीर और उसके अन्दर एक स्वस्थ मन, एक प्राणी के रूप में हमारा अधिकार है। अतः हमें इसे पाने की चेष्टा करना चाहिए और इन्हें विकसित करने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए।

#### बोध प्रश्न

##### टिप्पणी :

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 13. योग के किन्हीं दो चिकित्सकीय मूल्यों का उल्लेख करें?

.....

.....

.....

प्रश्न 14. शरीर से अपशिष्ट पदार्थ एवं मल का प्राकृतिक उत्सर्जन किन क्रियाओं के माध्यम से किया जा सकता है?

.....

.....

.....

## 14.11 योग चिकित्सा के तौर तरीके

योग मात्र शारीरिक उपचार से ही संबंधित नहीं, बल्कि मानसिक उपचार भी इसमें सम्मिलित है।

1. **शारीरिक उपचार** : विभिन्न प्रकार के आसनों, क्रियाओं, मुद्राओं एवं बंधों के माध्यम से योग के द्वारा शारीरिक उपचार किया जाता है। उपरोक्त सभी योग सम्बन्धी क्रियाएं मांसपेशियों में खिंचाव लाते हुए उन्हें लचीला व मजबूत बनाता हैं जिससे मांसपेशियों की गतिशीलता एवं उनका लचीलापन, श्वसन क्रिया, रक्तप्रवाह, पाचन तंत्र, उत्सर्जन तंत्र भली भांति कार्य करते हैं और व्यक्ति शारीरिक तौर पर स्वस्थ होता है।
2. **भावनात्मक उपचार** : योग व्यक्ति का भावनात्मक उपचार भी करता है। योग में आसन, प्राणायाम,

प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, ईश्वर प्राणीध्यान, स्वाध्याय इत्यादि पर बल दिया गया है जो हमारे मन मस्तिष्क को शांत एवं एकाग्र करते हैं। ये प्रत्येक प्रकार के मानसिक तनाव एवं थकान को दूर करते हैं और व्यक्ति को भावनात्मक रूप से संतुलित बनाते हैं।

3. **उचित दृष्टिकोण का विकास** : योग हमें हमारे व्यवहार एवं विचारों का अध्ययन कर, स्वयं को समझने तथा स्वयं को निष्पक्ष रूप से देखने में समर्थ बनाता है, जिससे हम उन सभी स्थितियों का सामना करने में समर्थ बनते हैं जो हमारे शरीर एवं मन पर तनाव डालती हैं। योग में सत्य, अहिंसा, वैराग्य, अस्तेय, मैत्री, चित्त प्रसादना इत्यादि गुणों के विकास पर बल दिया जाता है तथा यह भी कि यम, नियम का पालन किए बगैर उच्च अंगों का अभ्यास नहीं किया जा सकता है।

वर्तमान समय में 'योग' और 'योग चिकित्सा' को दो अलग-अलग पदों के रूप में नहीं देखा जाता है वरन् यह दोनों शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची बन गए हैं। यह माना जाता है कि योग के चिकित्सक के मूल्य उतने ही प्राचीन हैं जितना प्राचीन योग स्वयं है।

योगमहर्षि डॉ. स्वामी गीतानंद गिरी गुरु महाराज के अनुसार 'योग चिकित्सा वस्तुतः योग के जितना ही पुराना है। वास्तव में मन की वापसी जो उस ब्रह्माण्ड से अलग महसूस करती है, जिसमें यह मौजूद है पहली योग चिकित्सा का प्रतिनिधित्व करता है। योग चिकित्सा को मनुष्य की भावनाओं, शारीरिक कष्टों की एकात्मक समझ पर पहला प्रयास कहा जा सकता है और यह दुनिया की सबसे पुरानी पूर्ण अवधारणा और चिकित्सा है।

---

## 14.12 बीमारियों में योग की भूमिका पर हुए शोध

---

योग का स्वास्थ्य विज्ञान में योगदान को जानने के लिए समय-समय पर कई शोध हुए हैं और इन शोधों में शरीर एवं बीमारियों के निवारण पर योग के सकारात्मक प्रभाव पाए गए हैं। इन अध्ययनों में से कुछ अध्ययन निम्नवत हैं –

### 14.12.1 तनाव में कमी

योग मस्तिष्क को विराम देते हुए व्यक्ति में तनाव को कम करता है। अध्ययन बताते हैं (Arias, 2008; Singh, Malik & Singh, 2009; Rosenthal, Grosswald, Ross & Rosenthal, 2011; Stankovic, 2011) कि योग तनाव को कम करता है और कम तनाव शरीर में कोर्टिसोल हार्मोन के स्तर को कम करता है। कोर्टिसोल हार्मोन का सकारात्मक सम्बन्ध विभिन्न रोगों जैसे तनाव, अल्जाइमर इत्यादि से होता है। यह भी पाया गया है कि योग तनाव, चिंता, थकान और अवसाद के स्तर को कम करता है।

### 14.12.2 चिंतामुक्ति

विभिन्न शोधों में यह भी पाया गया है कि योग के माध्यम से व्यक्ति में चिंता का स्तर कम होता है। Clark etAl. (2011) ने अपने अध्ययन में पाया कि योग चिकित्सा के द्वारा चिंता में प्रभावी रूप से कमी आती है साथ ही इसके अतिरिक्त शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के कई आयामों में भी सुधार होता है।

### 14.12.3 अल्जाइमर

ध्यान तनाव को कम करने तथा स्मृति सम्बन्धी समस्याओं में अत्यंत ही लाभदायक है (Kabat&Zinn etAl. 1992; Carlson etAl. 2001; Raghavendra etAl. 2009)। तनाव का सम्बन्ध व्यक्ति के शरीर में पाए जाने वाले कोर्टिसोल स्तर से है जिसका नकारात्मक प्रभाव हिप्पोकैम्पस कोशिकाओं पर पड़ता है (Lupien etAl. 1998; Starkman etAl. 1999)। ये कोशिकाएं व्यक्ति के यादाश्त के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण हैं (Newcomer etAl. 1999; Diamond etAl. 1994; Treves & Rolls 1994)। तनाव से प्रेरित हाइपरकोर्टिसोलमिया के कारण अल्जाइमर की समस्या बढ़ सकती है जबकि ध्यान का नियमित अभ्यास व्यक्ति में तनाव एवं सीरम कोर्टिसोल के स्तर को घटाता है (Raghavendra etAl. 2009) जिससे अल्जाइमर की समस्या में लाभ मिलता है (Mishra etAl. 2012)।

### 14.12.4 सिजोफ्रेनिया

सिजोफ्रेनिया एक गंभीर मानसिक समस्या है। सिजोफ्रेनिया के होने के कई कारण हो सकते हैं जैसे—

आनुवांशिकी, पर्यावरणीय, बुरे एवं तनावपूर्ण अनुभव, दुर्घटना, खराब पारिवारिक रिश्ते, मस्तिष्क में न्यूरो कैमिकल का असंतुलन इत्यादि जिन व्यक्तियों में सिजोफ्रेनिया की समस्या होती है उन मरीजों को काल्पनिक आवाजें सुनाई देना, काल्पनिक स्वाद एवं सुगंध का अनुभव होना, विभिन्न प्रकार के भ्रम जैसे अपने आपको ताकतवर मानना, स्वयं में दैवीय अनुभवों की अनुभूति, वार्तालाप के दौरान बातों में तारतम्यता की कमी, उदासीन और तटस्थ व्यवहार, अभिप्रेरणा का अभाव, समाज के प्रति उदासीनता, ध्यान केन्द्रण करने में समस्या, यादाश्त सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सिजोफ्रेनिया का इलाज बहुत ही मुश्किल है परन्तु योग के माध्यम से पुराने रोगियों में प्रारंभिक रूप से सकारात्मक परिणाम प्राप्त किये गए हैं (Nagendra etAl. 2000)। कुछ अन्य अध्ययनों (Duraismamy etAl. 2007; Vancampfort, 2012; ) में भी सिजोफ्रेनिया की समस्या में योग को एक बेहतर और प्रभावी माध्यम के रूप में पाया गया है।

#### 14.12.5 अवसाद में कमी

अवसाद का सम्बन्ध व्यक्ति के भावनात्मक क्षेत्र से होता है। व्यक्ति में आत्मविश्वास की कमी, अपूर्ण इच्छाएं व्यक्ति को अवसाद की ओर ले जाती हैं। योग का अभ्यास व्यक्ति में आत्मविश्वास को बढ़ाता है और व्यक्ति को भावनात्मक रूप से मजबूत बनाता है जो अवसाद जैसी समस्या को जन्म नहीं लेने देता है।

#### 14.12.6 मादक द्रव्यों के सेवन में कमी

अध्ययन स्पष्ट करते हैं कि योग के द्वारा शरीर में न्यूरोट्रांसमीटर GABA (गाबा एमिनोब्यूट्रिक एसिड) बढ़ता है। यह देखा गया है कि मादक द्रव्यों का सेवन, चिंता, अवसाद इत्यादि इस एसिड की मात्रा शरीर में कम कर देते हैं। GABA एसिड मस्तिष्क में न्यूरोट्रांसमीटर के रूप में कार्य करता है। अतः GABA व्यक्ति के अन्दर चिंता, भय एवं तनाव की भावनाओं को कम करने में मदद करता है।

#### 14.12.7 रक्तचाप में कमी

योग के अभ्यास से रक्तचाप में कमी आती है। Barnes (2016) ने कुछ किशोरों के साथ अध्ययन किया यह किशोर उच्च रक्तचाप की समस्या से ग्रसित थे। Barnes (2016) के द्वारा इन किशोरों के लिए योग के कुछ सत्र आयोजित किये गए और इसके नियमित अभ्यास से यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि इन उच्च रक्तचाप से पीड़ित किशोरों में योग के अभ्यास से रक्तचाप में कमी आई। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि रक्तचाप की समस्या में योग एक प्रभावी उपचार सिद्ध हो सकता है।

#### 14.12.8 मोटापे की समस्या का समाधान

वर्तमान समय में अधिक वजन होना विश्व की एक बड़ी आबादी के लिए समस्या बना हुआ है जिसकी मुख्य वजह अनियमित खान-पान संबंधी आदतें हैं। वर्तमान में विश्व की एक बड़ी जनसंख्या मोटापे की समस्या से जूझ रही है। भारत जो पूर्ण में अपने खान-पान तथा अन्य स्वस्थ आदतों की वजह से इस समस्या से दूर ही रहा है, परन्तु वर्तमान में नयी पीढ़ी की दिनचर्या और अस्वास्थ्यकर खान-पान की वजह से इस समस्या से घिर गया है। ऐसे में योग मार्ग एक सहज निदान है। Kumari etAl (2011) ने अपने अध्ययन में पाया कि योगाभ्यास के द्वारा लोगों के बॉडी मास इंडेक्स (टडए) में कमी देखी गई है। जो लोग योग का अभ्यास करते हैं उनका बॉडी मास इंडेक्स सही होता है अर्थात् उनकी उम्र, उनकी लंबाई और उनके वजन का अनुपात सही होता है।

#### 14.12.9 अस्थमा

प्राणायाम अष्टांग योग का एक अंग है। धूम्रपान कर रहे कुछ लोगों को एक अध्ययन में प्रदर्श के रूप में लिया गया और यह पाया गया है कि प्राणायाम का एक सकारात्मक प्रभाव लगातार धूम्रपान कर रहे लोगों पर पड़ता है। इसके साथ ही प्राणायाम के द्वारा लोगों के श्वसन में भी बदलाव देखने को मिलता है। Irambula et.al. (2001) के द्वारा इस पर एक अध्ययन किया गया और निष्कर्ष के रूप में यह देखा गया कि योग के माध्यम से लोगों की श्वसन प्रक्रिया परिवर्तित हुई थी। योग में सांस लेने और छोड़ने की प्रक्रिया पर ध्यान दिया जाता है। यह प्रयास किया जाता है कि लम्बी और गहरी साँस ली जाए। इससे प्रति मिनट में साँस लेने की दर कम और साँसे लम्बी होती है। लंबी साँस लेने के फलस्वरूप फेफड़ों की धारिता बढ़ती है, सीने की हड्डियां लचीली और पुष्ट बनती हैं जिसके कारण मनुष्य में गहरी साँस लेने की क्षमता बढ़ती है जो अस्थमा जैसी समस्या का निदान

करती है।

#### 14.12.10 मिर्गी की समस्या

वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व में लगभग 50 मिलियन लोग मिर्गी की समस्या से पीड़ित हैं। यह एक बहुत बड़ी आबादी है। यह माना जाता है कि मिर्गी की समस्या का समाधान मात्र दवाओं से नहीं हो सकता है। ऐसे में योग को इसका कारगर उपचार माना जाता है। योग में ऐसे कई आसन हैं जो केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पर सकारात्मक प्रभाव डालते हुए उसमें सुधार करते हैं। ऐसे में यह मिर्गी की समस्या से निजात पाने में सहायक हो सकता है। कपालभाति, अनुलोम-विलोम, तथा कुछ आसन जैसे कपोतासन, बालासन, ताड़ासन, मत्स्यासन, उत्तानासन, हलासन, अर्द्धहलासन, शीर्षासन, शवासन मिर्गी की समस्या को हल कर सकते हैं। Panjawani et.Al. (1996), Yardi (2001) ने योग का मिर्गी की समस्या पर क्या प्रभाव पड़ता है, का अध्ययन किया एवं इन्होंने सकारात्मक परिणाम प्राप्त किए।

#### 14.12.11 हृदयाघात

संपूर्ण विश्व में प्रतिवर्ष लगभग 5.8 मिलियन लोगों की मृत्यु हृदयाघात के कारण हो जाती है। कई ऐसे भी केसेज होते हैं जहाँ हृदयाघात से मृत्यु तो नहीं होती परन्तु इसके कारण संज्ञानात्मक एवं दूसरी शारीरिक क्षमताएं प्रभावित होती हैं। हालांकि हृदयाघात की समस्या अचानक ही उत्पन्न होती है परंतु यह समस्या हमारे जीवन भर में चल रही स्थितियों, जीवनशैली का परिणाम होती है और संचयी रूप में हृदयाघात का रूप ले लेती है। ऐसी स्थिति में योग के माध्यम से इनकी रोकथाम की जा सकती है। यह पहले हृदयाघात के होने की संभावना को कम कर सकता है तथा हृदयाघात हो जाने की स्थिति में रोगियों के पुनर्वास में सहायक सिद्ध हो सकता है। हृदयाघात के होने वाले कारणों में मधुमेह, उच्च रक्तचाप, कोलेस्ट्रॉल इत्यादि की समस्या प्रमुख आते हैं। योग इन कारणों को समाप्त करते हुए हृदयाघात पर नियंत्रण करता है। (ज्ञतपीदं मज।स. 2014य च्नससमद मज।स. 2018), बैसिटल इत्यादि ने योग का हृदयाघात पर सकारात्मक परिणाम प्राप्त किए हैं।

#### 14.12.12 आमवाती समस्याधिकायत

आज के समय में कई व्यक्तियों को अपने वर्तमान जीवन शैली (अधिक भोजन, भोजन में वसा की मात्रा अधिक होना, शारीरिक श्रम एवं व्यायाम की कमी, खराब मुद्रा) के कारण कई प्रकार की समस्याओं जैसे हड्डियों एवं जोड़ों का दर्द तथा मांस पेशियों में आमवाती परिवर्तन की शिकायत हो जाती है। उपरोक्त सभी कारणों से व्यक्ति अपने शरीर में कठोरता एवं भयंकर पीड़ा का अनुभव करता है। योग के माध्यम से व्यक्ति न केवल वर्तमान दर्द में राहत महसूस करता है बल्कि यह रीढ़ को पुष्ट तथा लचीला और जोड़ों के आमवाती परिवर्तनों को भविष्य में न होने देने का आधार भी तैयार करता है। योगासन शरीर की मांसपेशियों को खिंचाव एवं तनाव के द्वारा लचीला और पुष्ट बनाता है। यह जोड़ों को स्थिरता एवं संतुलन प्रदान करता है। योग के अभ्यास से शरीर में रक्त का परिसंचरण बढ़ता है और धीरे-धीरे शरीर प्राकृतिक रूप से लचीलेपन को प्राप्त करता है जिससे दर्द जैसी समस्याओं को प्राकृतिक रूप से हल किया जाता है।

#### 14.12.13 कैंसर

योग के द्वारा कैंसर को खत्म तो नहीं किया जा सकता परंतु यह शारीरिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक शांति देता है जिसे कई रोगी ऐसी दशा में पाना चाहते हैं। योग में किए जाने वाले आसन, प्राणायाम, ध्यान व्यक्ति के तनाव को कम करते हैं जिससे रोगी की जीवन की गुणवत्ता बढ़ती है, साथ ही जो चिकित्सा की जा रही होती है उसका और भी बेहतरीन परिणाम रोगी को प्राप्त होता है। यह व्यक्ति को मन एवं शरीर पर संतुलन रखने में सहायता देती है और व्यक्ति स्वयं में शक्ति एवं स्फूर्ति का अनुभव करता है। अध्ययन यह बताते हैं कि कैंसर के दौरान रोगी को दी जाने वाली कीमोथेरेपी के प्रभाव को भी योग के द्वारा संतुलित किया जा सकता है।

#### 14.12.14 अनिद्रा

योग में एक क्रिया है योग निद्रा यद्यपि यह स्मरण शक्ति तथा कम घंटों की नींद में भी अधिक स्फूर्ति एवं ताजगी देती है। इसके अतिरिक्त योग के द्वारा अनिद्रा की समस्या भी दूर होती है। योग के द्वारा नींद की गुणवत्ता बढ़ती है अर्थात् व्यक्ति बिना व्यवधान के पर्याप्त नींद ले पाता है। योगाभ्यास के द्वारा नींद आने में लगने वाले समय में कमी आती है। साथ ही योग के द्वारा लिंफोमा वाले व्यक्तियों के नींद लेने की प्रक्रिया में सुधार देखा जा

सकता है।

योग के द्वारा पाचन तंत्र संबंधी समस्याएं पीठ दर्द, मांसपेशियों के दर्द, हृदय स्थिति, अस्थमा, थकान की समस्या, उच्च रक्तचाप कीमोथेरेपी के दुष्प्रभाव को रोकने में मदद मिलती है।

### बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 15. आसन, क्रिया, मुद्रायें एवं बंध किस प्रकार से शारीरिक उपचार में सहायता करती हैं?

.....

.....

.....

प्रश्न 16. योग किस प्रकार अल्जाइमर की समस्या दूर करता है ?

.....

.....

.....

प्रश्न 17. आमवाती समस्या के क्या कारण हो सकते हैं ?

.....

.....

.....

प्रश्न 18. व्यक्ति में गाबा एमिनोब्यूट्रिक एसिड के कम होने के कौन से कारण हो सकते हैं?

.....

.....

.....

प्रश्न 19. योग के द्वारा अनिद्रा की समस्या का समाधान किस प्रकार किया जा सकता है ?

.....

.....

.....

### 14.13 सारांश

योग का उद्देश्य हमारी कुंडलिनी को जागृत करना है एवं जीवन शक्ति का उत्थान करना है। योग के अंतर्गत शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के अभ्यास आते हैं। शारीरिक अभ्यास के अंतर्गत विभिन्न आसन एवं योग मुद्राएं आती हैं जो मनुष्य को शारीरिक रूप से स्वस्थ बनाती हैं। प्राणायाम, ध्यान, धारणा इत्यादि मानसिक अभ्यास से जुड़े हैं जो मन को स्वस्थ बनाते हैं। यदि व्यक्तित्व की बात करें तो शरीर और मन एक दूसरे से जुड़े हैं और दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। शारीरिक योग क्रिया कहीं ना कहीं से मानसिक स्वास्थ्य और शारीरिक स्वास्थ्य बनाए रखने में मदद करता है। यह शारीरिक, मानसिक, सामाजिक,

साम्वेगिक एवं आध्यात्मिक व्यक्तित्व के इन सभी पक्षों का विकास करने एवं उनको बनाए रखने में सहायक हैं। इसप्रकार यौगिक क्रियाएं तनाव को खत्म करती हैं, मानसिक रूप से मजबूत बनाती हैं। योग हमें शारीरिक रूप से भी स्वस्थ बनाता है। योग के अंतर्गत किये जाने वाले व्यायाम उम्र एवं अन्य कारणों की वजह से शरीर को हुए नुकसान की भरपाई करके स्वास्थ्य के पुनर्स्थापन भी करते हैं।

---

#### 14.14 अभ्यास के प्रश्न

---

1. योग के चिकित्सकीय लाभ में सहायक घटकों का वर्णन करें।
2. योग के चिकित्सकीय मूल्य कौन से हैं ? उनका उल्लेख करें।
3. योग के मूलभूत सिद्धांत चिकित्सा हेतु क्या निर्देश देते हैं ? वर्णन करें।
4. विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं में योग किस प्रकार लाभप्रद हो सकता है?

---

#### 14.15 चर्चा के बिंदु

---

1. योग शारीरिक और मानसिक रूप से संतुलित जीवन जीने में किस प्रकार सहायक होता है?
2. योग किस प्रकार से चिकित्सा विज्ञान का पूरक हो सकता है?

---

#### 14.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

1. 'रोगों के रोगाणु सिद्धांत' का विकास जैव चिकित्सकीय अवधारणा के अनुसार हुआ है।
2. स्वास्थ्य की मनोसामाजिक अवधारणा अस्वस्थता का कारण मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक कारकों को मानते हैं।
3. आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति वही है जिसमें वात, पित्त एवं कफ ये तीनों ही दोष सम हों, जठराग्नि, भूताग्नि आदि अग्नि सम हो, धातु एवं मल, मूत्र आदि की क्रिया विकार रहित हो तथा जिसकी आत्मा, इन्द्रिय और मन प्रसन्न हों।
4. चरक के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति में मांस धातु समप्रमाण अवस्था में होती हैं, शारीरिक गठन समप्रमाण होता है, इन्द्रियाँ थकान से रहित सुदृढ़ होती हैं, रोगों का बल जिसको पराजित नहीं कर सकते हों, जिसका व्याधिक्ष समत्व बल बढ़ा होता है, शरीर भूख, प्यास, धूप, शक्ति को सहन कर सकता है, शरीर व्यायाम को सहन कर सकता हो, पाचनशक्ति (जठराग्नि) समावस्था में कार्य करती है, निश्चित कालानुसार ही बुढ़ापा आता है, मांसादि की चयापचय क्रियाएँ समान होती हैं।
5. हाइजीन शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा में 'हाईजिया' (Hygea) शब्द से हुई है।
6. ऑक्सफोर्ड इंग्लिश शब्दकोष के अनुसार शरीर और मन की तेजपूर्ण स्थिति, ऐसी अवस्था जिसमें समस्त शारीरिक और मानसिक कार्य समय से और पूरी क्षमता से सम्पादित हो रहे हों, ऐसी अवस्था स्वास्थ्य कहलाती है।
7. योग मात्र रोग होने के उपरांत चिकित्सा करने से संबंधित नहीं है बल्कि व्यक्ति को आंतरिक रूप से स्वस्थ बनाने से संबंधित है, जिससे रोगों के हो सकने की संभावना कम रहै। वह रोग मुक्त रह सके छ इसके अतिरिक्त रोग हो जाने की स्थिति में यह रोग का उपचार कर रोग होने के कारणों को नष्ट करता है जिससे भविष्य में भी हम रोगमुक्त रह सकें। जहां दवाओं से हमारे शरीर पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और शरीर कमजोर हो जाता है और भविष्य में जिससे अस्वस्थ होने का खतरा बढ़ जाता है। वहीं योग के द्वारा हमारे बाहरी अंगों के साथ-साथ हमारे आंतरिक अंग भी स्वस्थ एवं सुगठित बनते हैं जिससे और रोगों के होने की संभावना कम हो जाती है। रोग व्यक्ति को बीमार बनाते हैं तथा रोगी व्यक्ति को बुढ़ापा और मृत्यु की ओर ले जाते हैं जिसके विपरीत योग बीमारी से रक्षा करते हुए व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक और साम्वेगिक रूप से मजबूत बनाते हैं।
8. राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान द्वारा योग को पूरक तथा वैकल्पिक चिकित्सा (CPM) की संज्ञा दी गई है।

9. योग का वैयक्तिक भिन्नता सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति को अद्वितीय रूप से स्वीकार करता है तथा कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति को उनके व्यक्तित्व के अनुसार ही योगाभ्यास करना चाहिए।
10. योग का चौथा मूलभूत सिद्धान्त व्यक्ति के मस्तिष्क से संबंधित है।
11. स्थिर तथा सुखपूर्वक बैठने की क्रिया आसन कहलाती है।
12. भस्त्रिका, अभ्यांतर एवं कुम्भक वात एवं कफ व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों के लिए बहुत ही लाभदायक होते हैं वहीं पित्त व्यक्तित्व वाले लोगों के लिए शीतली, सीतकारी एवं रेचक लाभकारी होते हैं। प्राणायाम के अभ्यास के माध्यम से मानसिक शांति मिलती है और मानसिक विकार से मुक्त होते हैं। इसके अलावा अनेक अन्य श्वास रोग जैसे दमा इत्यादि का निवारण प्राणायाम के माध्यम से किया जा सकता है। प्राणायाम के द्वारा रक्तचाप, हृदय रोग, मधुमेह, सोरायसिस, एक्जिमा में आराम मिलता है। प्राणायाम के अभ्यास से हृदय तथा रक्त वाहिनियां सुचारु रूप से कार्य करती हैं।
13. योग के दो चिकित्सकीय मूल्य निम्नवत हैं –
  - (i) योग तंत्रिका तंत्र को सक्रिय कर शारीरिक व मानसिक तनाव को कम करता है।
  - (ii) योग मस्तिष्क को एकाग्र एवं सजग बनाता है जो विद्यार्थियों के लिए अत्यावश्यक है।
14. धौति, वस्ती एवं नेति जैसी योग की शुद्धि क्रियाओं के अभ्यास से अपने शरीर से अपशिष्ट पदार्थ एवं मल के प्राकृतिक उत्सर्जन किया जा सकता है।
15. आसन, क्रिया, मुद्राएँ एवं बंध मांसपेशियों में खिंचाव लाते हुए उन्हें लचीला व मजबूत बनाते हैं जिससे मांसपेशियों की गतिशीलता एवं उनका लचीलापन, श्वसन क्रिया, रक्तप्रवाह, पाचन तंत्र, उत्सर्जन तंत्र भली भाँति कार्य करते हैं और व्यक्ति शारीरिक तौर पर स्वस्थ होता है।
16. हाइपरकोर्टिसोलमिया के कारण अल्जाइमर की समस्या बढ़ सकती है। योग का नियमित अभ्यास व्यक्ति में तनाव एवं सीरम कोर्टिसोल के स्तर को घटाता है जिससे अल्जाइमर की समस्या में लाभ मिलता है।
17. अधिक भोजन, भोजन में वसा की मात्रा अधिक होना, शारीरिक श्रम एवं व्यायाम की कमी, खराब मुद्रा आमवाती समस्या के कारण हो सकते हैं।
18. मादक द्रव्यों के सेवन से व्यक्ति के शरीर में गाबा एमिनोब्यूट्रिक एसिड की मात्रा कम हो जाती है।
19. योग के द्वारा नींद की गुणवत्ता बढ़ती है अर्थात् व्यक्ति बिना व्यवधान के पर्याप्त नींद ले पाता है। योगाभ्यास के द्वारा नींद आने में लगने वाले समय में कमी आती है साथ ही योग के द्वारा लिंफोमा वाले व्यक्तियों के नींद लेने की प्रक्रिया में सुधार देखा जा सकता है।

---

#### 14.17 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

- 1- Iyengar, B.K.S & Menuhin Y. (1968). Light on yoga , London: Unwin.
- 2- Joshi, K.S. (1991). Speaking of yogaAnd nature-cure therapy. New Delhi: Sterling.
- 3- Mira Sd, S. & Mehta S. (1990).Yoga the iyengar way. New York:AlfordA. Knoff Company.
4. शर्मा, आर. के. एवं दुबे एस. के. (2017). योग शिक्षा. आगरा : राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड.
5. शर्मा, आर.के. एवं दुबे, एस. (2016). योग शिक्षा. आगरा : राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड

---

#### 14.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

- 1- Arambula, P.C., Peper, E., Kawakami, M., & Gibney, K.H. (2001). The Physiological Correlates of Kundalini Yoga Meditation:A Study ofA Yoga Master. *Applied PsychophysiologyAnd Biofeedback*. 26(2):147-53. Retrieved from [https://www.researchgate.net/publication/11863118\\_The\\_Physiological\\_Correlates\\_of\\_Kundalini\\_Yoga\\_Meditation\\_A\\_Study\\_of\\_a\\_Yog](https://www.researchgate.net/publication/11863118_The_Physiological_Correlates_of_Kundalini_Yoga_Meditation_A_Study_of_a_Yog)

[a Master](#)

- 2- Arias, J.C. (2008). *The effect of meditation on executives performance in business organizations*. Business Intelligence Research Centre 2008.
- 3- Aronson, J.K., Derry, S., & Loke, Y.K. (2002) Adverse drug reactions: keeping up to date. *Fundamental Clinical Pharmacology*. 16(1), 49–56
- 4- Atkinson, N.L., & Permuth-Levine, R. (2009). Benefits, barriers, And cues to Action of yoga practice: A focus group Approach. *American Journal of Health Behaviour*. 33(1), 3–14.
- 5- Barnes, V.A. (2016). Impact of Yoga on Exercise And Blood Pressure in Adolescents. *International Journal of Complementary & Alternative Medicine*. 3 (4), 1-5. Retrieved from <https://medcraveonline.com/IJCAM/IJCAM-03-00082.pdf>
- 6- Chan, D., & Woollacott, M. (2007). Effects of level of meditation experience on Attentional focus: Is the efficiency of executive or orientation networks improved? *J Altern Complement Med*. 13(6), 651–657.
- 7- Clark, L. Edwards, S. Thwala, J. & Louw, P. (2011). The influence of yoga therapy on Anxiety. *Journal of Humanities And Social Sciences*. 3 (1): 24-31. Retrived from <https://www.ajol.info/index.php/ijhss/article/view/69502>
- 8- Deepeshwar, S., Vinchurkar, S.A., Visweswaraiah, N.K., & Nagendra, H.R.. (2015). Hemodynamic responses on prefrontal cortex related to meditation And Attentional task. *Front Syst Neurosci*. Retrived from <https://www.frontiersin.org/articles/10.3389/fnsys.2014.00252/full>
- 9- Desikachar, K., Bragdon, L., & Bossart, C. (2005). The yoga of healing: Exploring yoga's holistic model for health And well-being. *International Journal of Yoga Therapy*. 15(1), 17–39.
- 10- Duraiswamy, G., Thirthalli, J., Nagendra, H.R., Gangadhar, B.N., (2007). Yoga therapy As An Add-on treatment in the management of patients with schizophrenia—a randomized controlled trial. *Acta Psychiatrica Scandinavica*, 116(3), 226–232.
- 11- Kozasa, E.H., Sato, J.R., Lacerda, S.S., Barreiros, M.A., Radvany, J., Russell, T.A., et Al. (2012). Meditation training increases brain efficiency in An Attention task. *Neuroimage*. 59(1-2), 745–749.
- 12- Krishna, B.H., Pal, P., & Pal, G.K. (2014). Effect of yoga therapy on heart rate, blood pressure And cardiac Autonomic function in heart failure. *Journal of Clinical And Diagnostic Research*. 8(1), 14–16. Retrieved from <https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/24596712/>
- 13- Kumari, S.N. Gowda D. K. M.. Sukesh N , Madhu L.N , & Kathyayani (2011). Effect of yoga therapy on body mass index And oxidative status. *Journal of Health Science*. 1(1-3), 10-14. Retrieved from [https://www.researchgate.net/publication/281550188\\_EFFECT\\_OF\\_YOGA\\_THERAPY\\_ON\\_BODY\\_MASS\\_INDEX\\_AND\\_OXIDATIVE\\_STATUS/link/55ed55de08ae65b6389f488b/download](https://www.researchgate.net/publication/281550188_EFFECT_OF_YOGA_THERAPY_ON_BODY_MASS_INDEX_AND_OXIDATIVE_STATUS/link/55ed55de08ae65b6389f488b/download)
- 14- Mira Sd, S. & Mehta S. (1990). *Yoga the iyengar way*. New York: Alford A. Knoff Company;
- 15- Mishra, S.K., Singh, P., Bunch, S. J. & Zhang, R. (2012). The therapeutic neurological disorders. *Annals of Indian Academy of Neurology*. 15(4), 247-254.
- 16- Nagendra, H.R., Telles, S., & Naveen, K V., (2000). *An integrated Approach of Yoga therapy for*

*the management of schizophrenia*. Final Report submitted to Dept. of ISM & H, Ministry of Health And Family Welfare, Government of India.

- 17- Panjwani, U. Selvamurthy, W., Singh, H L., Gupta, H. L., Thakur, etAl. (1996). Effect of Sahaja yoga practice on seizure control & EEG changes in patients of epilepsy. *Indian Journal of Medicinal Researches*. 103:165-72. Retrived from <https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/9062044/>
- 18- Papanikolaou P.N., & Ioannidis J.P. (2004)Availability of large-scale evidence on specific harms from systematic reviews of randomized trials. *TheAmerican Journal of Medicine*. 117 (8), 582–589
- 19- Pullen, P.R., Seffens, W.S. & Thompson, W. R. (2018). Yoga for heart failure:A reviewAnd future research. *International Journal of Yoga*. 11(2), 91-98.
- 20- Rosenthal, J.Z., Grosswald, S., Ross, R. & Rosenthal, N. (2011). Effects of transcendental meditation in veterans of operation enduring freedomAnd operation Iraqi freedom with posttraumatic stress disorder:A pilot study. *Military Medicines*. 176(6), 626-630.
- 21- Singh, K., Malik, K. & Singh, M. (2009). Spatial variation inAir ion concentrations under different indoor environments. *International Journal of BioSciences, PsychiatryAnd Technology (IJBSP)*. 1(1), 36-41.
- 22- Stankovic, L. (2011). Transforming trauma:A qualitative feasibility study of integrative restoration (iRest) yoga nidra on combat-related post-traumatic stress disorder. *International Journal of Yoga Therapy*. 21, 23-37
- 23- Vancampfort, D., Vansteelandt, K., Scheewe, T., Probst, M., Knapen, J., De Herdt,A., De Hert, M., 2012. Yoga in schizophrenia:A systematic review of randomised controlled trials.*Acta Psychiatrica Scandinavica*. 126(1), 12–20.
- 24- Yardi, N. (2001). Yoga for control of epilepsy. *Seizure*. 10(1),7-12
- 25- संपूर्णानंद (2017). योग दर्शन. लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान

---

## इकाई— 15 : शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य उन्नति में विभिन्न आसनों का प्रभाव

---

### इकाई की संरचना

- 15.1 प्रस्तावना
- 15.2 इकाई के उद्देश्य
- 15.3 स्वास्थ्य का आशय
- 15.4 स्वास्थ्य की परिभाषा
- 15.5 समग्र स्वास्थ्य की संकल्पना
- 15.6 स्वास्थ्य का दर्शन
- 15.7 शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य
  - 15.7.1 शारीरिक स्वास्थ्य
  - 15.7.2 मानसिक स्वास्थ्य
- 15.8 आसन का अर्थ
  - 15.8.1 उद्देश्यों के आधार पर आसनों के प्रकार
    - (अ) ध्यानात्मक आसन
    - (ब) क्रियात्मक आसन
- 15.9 आसनों के प्रकार और उनसे होने वाले लाभ
  - 15.9.1 बैठकर किये जाने वाले आसन
  - 15.9.2 पीठ के बल लेटकर किये जाने वाले आसन
  - 15.9.3 पेट के बल लेटकर किये जाने वाले आसन
  - 15.9.4 पैरों के बल खड़े होकर किये जाने वाले आसन
  - 15.9.5 सिर के बल खड़े होकर किये जाने वाले आसन
- 15.10 उत्तम शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य हेतु आसनों का योगदान
- 15.11 योगासन के दौरान बरती जाने वाली सावधानियां
- 15.12 सारांश
- 15.13 अभ्यास प्रश्न
- 15.14 चर्चा के बिंदु
- 15.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 15.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 15.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

### 15.1 प्रस्तावना

---

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानव व्यक्तित्व के तीन आधार हैं; शरीर, मन और आत्मा जिसमें मात्र शरीर ही स्थूल है और मन तथा आत्मा सूक्ष्म रूप से ही मानव शरीर के अन्दर कहीं निवास करती हैं जिन्हें ना स्पर्श किया

जा सकता है और ना ही देखा जा सकता है, मात्र अनुभूत किया जा सकता है। किसी व्यक्ति को तभी स्वस्थ कहा जा सकता है जब शरीर, मन एवं आत्मा तीनों स्वस्थ हों। जब यह तीनों स्वस्थ होती हैं तो अपने आप ही एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो जाता है जो शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सामवेगिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण से संतुलित होता है। जैसा कि हम जानते हैं व्यक्ति के तीन आधारों में से दो आधार सूक्ष्म हैं अतः शरीर ही एक माध्यम बन जाता है जिसके द्वारा अन्य दो आधारों को संतुलित बनाया जाए और इस हेतु योगासन एक सहज मार्ग है। प्रस्तुत पाठ में इसी का अध्ययन किया जायेगा कि किस प्रकार विभिन्न आसनों के माध्यम से शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति करते हुए मानव के शरीर, मन एवं आत्मा तीनों को ही स्वस्थ बनाया जा सकता है।

---

## 15.2 इकाई के उद्देश्य

---

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि—

1. स्वास्थ्य का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे।
2. स्वास्थ्य को परिभाषित कर सकेंगे।
3. समग्र स्वास्थ्य के आशय को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. स्वास्थ्य के दर्शन की विवेचना कर सकेंगे।
5. शारीरिक स्वास्थ्य को परिभाषित कर सकेंगे।
6. मानसिक स्वास्थ्य को परिभाषित कर सकेंगे।
7. आसनों का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे।
8. उद्देश्यों के आधार पर आसनों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे।
9. अभ्यास किये जाने के आधार पर योगासनों के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कर सकेंगे।
10. शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य में विभिन्न योगासनों के प्रकार और उनसे होने वाले लाभों की विस्तृत व्याख्या कर सकेंगे।
11. अच्छे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए आसनों के योगदान की विवेचना कर सकेंगे।
12. योगासन के दौरान अपनायी जाने वाली सावधानियों का वर्णन कर सकेंगे।

---

## 15.3 स्वास्थ्य का आशय

---

हमारे शरीर का हमारे मन के साथ अटूट सम्बन्ध है। हमारे शरीर की स्थिति का हमारे मन पर प्रभाव पड़ता है और इसी प्रकार हमारे मानसिक स्थिति का सीधा प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता है। स्वास्थ्य का आशय शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही प्रकार के स्वास्थ्य से लिया जाता है। यदि स्वास्थ्य के अर्थ को सम्पूर्णता में देखा जाए तो स्वास्थ्य मात्र शरीर के सभी अंगों तथा तंत्रों का सही तरीके से काम करने की स्थिति ही नहीं बल्कि स्वस्थ परिवार एवं स्वस्थ स्वस्थ वातावरण भी इसमें सम्मिलित हो जाता है। इसे ही सम्पूर्ण स्वास्थ्य की संज्ञा दी गयी है। सम्पूर्ण स्वास्थ्य को उस अवस्था के रूप में देखा जाता है जिसके माध्यम से कोई व्यक्ति अपने जीवन को प्रसन्नतापूर्वक जीता है। मानव एक सामाजिक प्राणी है अतः समाज के साथ उसके परस्पर संबंधों का होना अनिवार्य शर्त है। एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि उसमें शारीरिक, मानसिक, संवेदनात्मक एवं आध्यात्मिकता जैसे गुणों का उचित समावेश हो जो हमें शारीरिक रूप से मजबूत, सुदृढ़ बनाते हुए विपरीत एवं बदलते परिस्थितियों में निर्वहन के योग्य बनाती है साथ ही समाज में हमारे समायोजन को भी सुनिश्चित करती है। विभिन्न विद्वानों एवं संगठनों के द्वारा दी गयी स्वास्थ्य की कुछ परिभाषायें निम्नलिखित हैं।

---

## 15.4 स्वास्थ्य की परिभाषा

---

वाल्टमर एवं इसलिंगर के अनुसार, “स्वास्थ्य वह मानसिक एवं शारीरिक स्थिति है जिसमें अपने शरीर के विभिन्न अवयवों का आंतरिक रूप से तथा अपने वातावरण से बाह्य रूप से पूर्ण सामंजस्य स्थापित कर सकें।”

विश्व स्वास्थ्य संगठन, 1948 (WHO) ने स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए कहा है कि "स्वास्थ्य केवल रोग अथवा असमर्थता या अपंगता की अनुपस्थिति ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक सम्पन्नता की स्थिति है।"

ओबर ट्युफर ने स्वास्थ्य को इस प्रकार से परिभाषित किया है कि "स्वास्थ्य वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुरूप कार्य करने में सक्षम होता है।"

आचार्य महाप्रज्ञ (2002), जीवन विज्ञान की रुपरेखा के अनुसार आयुर्वेद में रोग चार प्रकार के माने गए हैं। (i) आगंतुक (ii) शारीरिक (iii) मानसिक (iv) स्वाभाविक। इन सभी रोगों से मुक्त मनुष्य ही स्वस्थ है।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि स्वास्थ्य वह अवस्था है जो व्यक्तियों की उस अवस्था को बनाये रखता है जिसमें वह उन सभी कार्यों का संपादन कर सकें जिसे करने के वह योग्य हैं। इस योग्यता में व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांवेगिक हर प्रकार की स्थिति आ जाती है।

---

## 15.5 समग्र स्वास्थ्य की संकल्पना

---

समग्र स्वास्थ्य की संकल्पना भारतीय दर्शन में हमेशा से दी गयी है। समग्र स्वास्थ्य के विषय में ग्रंथों में या विद्वानों ने अपनी परिभाषाएं दी हैं।

सममांसप्रमाणस्तु समसंहननो नरः।

दृढेन्द्रियो विकाराणां न बलेनाभिभूयते ॥ 18 ॥

क्षुत्पिपासातपसहः शीतव्यायामसंसहः।

समपक्ता समजरः सममांसचयो मतः ॥ 19 ॥

अर्थात् जिस व्यक्ति का मांस धातु समप्रमाण में हो, जिसका शारीरिक गठन सम अवस्था में हो, जिसकी इन्द्रियाँ थकान से रहित सुदृढ़ हों, रोगों का बल जिसको पराजित न कर सके, जिसका व्याधिक्ष समत्व बल बढ़ा हुआ हो, जिसका शरीर भूख, प्यास, धूप, शक्ति को सहन कर सके, जिसका शरीर व्यायाम को सहन कर सके, जिसकी पाचनशक्ति (जठराग्नि) समावस्था में कार्य करती हो, निश्चित कालानुसार ही जिसका बुढ़ापा आये, जिसमें मांसादि की चय-उपचय क्रियाएँ समान होती हों – ऐसे 10 लक्षणों वाले व्यक्ति को आचार्य चरक ने स्वस्थ माना है।

वहीं समग्र स्वास्थ्य के लक्षण बताते हुए कश्यप ऋषि लिखते हैं कि –

अन्नाभिलाषो भुक्तस्य परिपाकः सुखेन च।

सृष्टविष्णुमूत्रवातत्वं शरीरस्य च लाघवम् ॥

सुप्रसन्नेन्द्रियत्वं च सुखस्वप्न प्रबोधनम्।

बलवर्णायुषां लाभः सौमनस्यं समाग्निता ॥

विद्यात् आरोग्यलिङ्गानि विपरीते विपर्ययम्।

—(काश्यपसंहिता, खिलस्थान, पञ्चमोध्यायः)

भोजन करने की इच्छा हो, अर्थात् भूख समय पर लगती हो, भोजन ठीक से पचता हो, मलमूत्र और वायु के निष्कासन उचित रूप से होते हों, शरीर में हलकापन एवं स्फूर्ति रहती हो, इन्द्रियाँ प्रसन्न रहती हों, मन की सदा प्रसन्न स्थिति हो, सुखपूर्वक रात्रि में शयन करता हो, सुखपूर्वक ब्रह्ममुहूर्त में जागता होय बल, वर्ण एवं आयु का लाभ मिलता हो, जिसकी पाचक-अग्नि न अधिक हो न कम, उक्त लक्षण हो तो व्यक्ति निरोगी है अन्यथा रोगी है।

उपरोक्त परिभाषा समग्र स्वास्थ्य को दर्शाती है जिसमें व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक रूप से सुखकारी स्थिति में होता है। समग्र स्वास्थ्य वह अवस्था है जिसके माध्यम से कोई व्यक्ति अपने जीवन को प्रसन्नतापूर्वक जीता है। मानव एक सामाजिक प्राणी है अतः समाज के साथ व्यक्ति के परस्पर संबंधों का होना

अनिवार्य शर्त है। एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि उसमें शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, सम्वर्गात्मक एवं आध्यात्मिक जैसे गुणों का उचित समावेश हो जो हमें शारीरिक रूप से मजबूत, सुदृढ़ बनाते हुए विपरीत एवं बदलते परिस्थितियों में निर्वहन करने के योग्य बनाती हैं, साथ ही समाज में हमारे समायोजन को भी सुनिश्चित करते हैं।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी—

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

प्रश्न 1. संकुचित रूप में स्वास्थ्य से क्या तात्पर्य है ?

.....

प्रश्न 2. विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य को किस प्रकार परिभाषित किया है ?

.....

प्रश्न 3. आयुर्वेद के अनुसार रोग के कौन से चार प्रकार हैं ?

.....

प्रश्न 4. कश्यप ऋषि के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति के क्या लक्षण हैं ?

.....

## 15.6 स्वास्थ्य का दर्शन

1. स्वास्थ्य हर एक व्यक्ति का मूलभूत अधिकार है।
2. स्वास्थ्य सम्पूर्ण विश्व का लक्ष्य है।
3. स्वास्थ्य उपयोगी जीवन का परिचायक है।
4. स्वास्थ्य की अवधारणा किसी भी सम्प्रदाय, जाति एवं धर्म विहीन है।
5. स्वास्थ्य विकास की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है।
6. स्वास्थ्य सार्थक एवं गुणवत्तापूर्ण जीवन का केंद्र है।
7. स्वास्थ्य व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की सामूहिक जिम्मेदारी है।
8. स्वास्थ्य की अभिरक्षा महत्वपूर्ण सामाजिक निवेश है।

## 15.7 शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य

### 15.7.1 शारीरिक स्वास्थ्य

जब कभी भी हम सामान्य बोलचाल की भाषा में स्वास्थ्य की बात करते हैं तो सामान्यतया उसका आशय हमारे शारीरिक स्वास्थ्य से होता है। कहा जाता है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है। यदि हम शारीरिक रूप से स्वस्थ रहते हैं तो मानसिक रूप से भी स्वयं को स्फूर्तिवान एवं सामर्थ्यवान महसूस करते हैं अतः अन्य प्रकार के स्वास्थ्य के लिए भी व्यक्ति का शारीरिक रूप से स्वस्थ रहना आवश्यक है।

हमारे ग्रंथों में भी शारीरिक स्वास्थ्य की महत्ता को स्वीकार किया गया है। कुमारसंभवम् में लिखा गया है कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' अर्थात् यह शरीर ही धर्म का श्रेष्ठ साधन है। किसी भी धर्म की साधना शरीर के माध्यम से ही की जा सकती है।

पश्येम् शरदः शतम्, जीवेम् शरदः शतम्,

शृणुयाम् शरदः शतम्, प्रब्रवाम् शरदः

शतम्, अदीनः स्याम् शरदः

शतम्, भूयश्च शरदः शतात् ॥

अर्थात् हम सौ वर्षों तक देखें, जिएं, सुनें, बोलें और आत्मनिर्भर रहें। हम सौ वर्षों से भी अधिक इसी प्रकार से रहें।

त्रय उपस्तम्भाः आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति

चरक संहिता सूत्र में लिखा हैय अर्थात् शरीर और स्वास्थ्य को स्थिर, सुदृढ़ और उत्तम बनाये रखने के लिए आहार, स्वप्न (निद्रा) और ब्रह्मचर्य — ये तीन उपस्तम्भ हैं। 'उप' यानी सहायक और 'स्तम्भ' यानी खम्भा। इन तीनों उपस्तम्भों का यथा विधि सेवन करने से ही शरीर और स्वास्थ्य की रक्षा होती है।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ सुश्रुत संहिता में सुश्रुत ऋषि लिखते हैं—

समदोषाः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।

समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ॥

समदोषाः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥

अर्थात् जिसके तीनों दोष (वात, पित्त एवं कफ) समान हों, जठराग्नि सम (न अधिक तीव्र, न अति मन्द) हो, शरीर को धारण करने वाली सात धातुएं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य) उचित अनुपात में हों, मल—मूत्र की क्रियाएं भली प्रकार होती हों और दसों इन्द्रियां (आंख, कान, नाक, त्वचा, रसना, हाथ, पैर, जिह्वा, गुदा और उपस्थ), मन और सबकी स्वामी आत्मा भी प्रसन्न हो, तो ऐसे व्यक्ति को स्वस्थ कहा जाता है।

शारीरिक स्वास्थ्य का तात्पर्य शरीर की स्थिति है। शारीरिक स्वास्थ्य के अंतर्गत इसकी संरचना, विकास, कार्यप्रणाली और रखरखाव शामिल होता है। यह एक जीव के कार्यात्मक तथा चयापचय क्षमता का एक स्तर भी है। अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के कुछ तरीके निम्नलिखित हैं—

1. व्यक्ति संतुलित आहार लेता हो।
2. व्यक्ति पर्याप्त एवं गहरी नींद लेता हो।
3. शरीर के सभी अंगों का आकार सामान्य हो तथा वे उचित रूप से कार्य कर रहे हों।
4. रक्तदाब की स्थिति सामान्य होनी चाहिए।
5. शरीर का भार, लम्बाई, आयु एवं लिंग के अनुरूप हो।
6. व्यायाम का नियमित पालन किया जाए।
7. नाड़ी स्पंदन, हृदय की धड़कन मानकों के अनुरूप हों।
8. मल—मूत्र निष्कासन सम्बन्धी प्रक्रिया सामान्य हो।
9. भूख—प्यास, नींद इत्यादि क्रियायें सामान्य हों।

## 15.7.2 मानसिक स्वास्थ्य

मानसिक स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए यह कहा जा सकता है कि किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसके भावनात्मक व्यवहार के संतुलित विकास का वह स्तर जो उसके अन्य सहजीवियों एवं सहकर्मियों के साथ

सहअस्तित्व एवं सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार को दर्शाता है, मानसिक स्वास्थ्य कहलाता है।

वर्तमान समय में मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखना एक कठिन कार्य है। मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए कुछ सूत्र बताये गए हैं। इन सूत्रों में सबसे पहला सूत्र जो मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए आवश्यक है वह है स्वयं को जानना यहाँ स्वयं को जानने से आशय है कि व्यक्ति को अपनी क्षमता, अपनी योग्यता, अपनी कमजोरियों एवं अपनी खूबियों का ज्ञान होना चाहिए। यदि व्यक्ति अपनी इन विशेषताओं से अज्ञान रहता है, ऐसे में यह मानसिक स्वास्थ्य के लिए संकट उत्पन्न करता है। द्वितीय सूत्र है 'जो भी परिणाम हों उनके लिए मन में स्वीकृति का भाव' अर्थात् हमारे कर्म करने के पश्चात् जो भी परिणाम आयें हम उन्हें सहर्ष स्वीकार करें। गीता में भी कहा गया है कि 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

**मा कर्मफलहेतुर्भुमा ते संगोऽस्त्वकर्मणि'** अर्थात् तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू फल की दृष्टि से कर्म मत कर और न ही ऐसा सोच की फल की आशा के बिना कर्म क्यों करूँ। परन्तु समस्या यह होती है कि हम कर्म चाहे जैसे भी करते हैं पर सर्वोत्तम फल की आशा रखते हैं। व्यक्ति की फल के प्रति ऐसी आसक्ति मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। मानसिक स्वास्थ्य का तृतीय सूत्र है, 'सत्य के प्रति व्यक्ति में समर्पण का भाव' यानि व्यक्ति में सत्य को स्वीकार करने की शक्ति हो। यह स्वीकार्यता स्वयं की सीमितताओं के लिए हो या सृष्टि के सार्वभौमिक नियमों के लिए। व्यक्ति सत्य से जितना दूर भागेगा मानसिक स्वास्थ्य के रास्ते में उतनी ही बाधाएँ आयेंगी और व्यक्ति सत्य को जितना स्वीकार करेगा उसका मानसिक स्वास्थ्य उतना ही उत्तम होगा।

किसी भी व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य के मापन हेतु छह मापदण्ड निर्धारित किये गए हैं। यह छः मापदण्ड अग्रलिखित हैं – व्यक्ति की वेशभूषा कैसी है, उसका व्यवहार कैसा है, उसके विचार कैसे हैं, वह किस प्रकार से प्रतिक्रिया देता है, उसका स्वभाव कैसा है, और उसकी निर्णय-क्षमता कैसी है ? ये वह सारे आधार हैं जिससे किसी व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य का आकलन किया जा सकता है।

#### (अ) उत्तम शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लक्षण

उत्तम शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की इच्छा प्रत्येक व्यक्ति को होती है परन्तु वर्तमान समय में इस स्वास्थ्य को बनाये रखना एक अत्यंत ही कठिन कार्य है। खान-पान से लेकर बैठने और निद्रा सम्बन्धी आदतों ने व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित किया है। आज के युग में जिस प्रकार की होड़ है उसने व्यक्ति को हर प्रकार से अस्वस्थ किया है। कुछ विरले ही ऐसे होते हैं जो शारीरिक और मानसिक रूप से पूर्णतया स्वस्थ होते हैं। समग्र रूप से स्वस्थ व्यक्ति के लक्षणों की बात की जाए तो उनके निम्नांकित लक्षण होते हैं –

1. सदैव प्रसन्नचित्त रहते हैं और उनका हृदय स्वर्गिक आनंद से परिपूर्ण रहता है।
2. सदैव उत्साहित रहते हैं।
3. गहरी नींद लेते हैं।
4. पेट अन्दर और छाती बाहर की ओर उभरी होती है।
5. प्रातः काल उठने के उपरान्त तन-मन में स्फूर्ति का अनुभव करते हैं।
6. प्राकृतिक रूप से भूख लगती है।
7. शौच सम्बन्धी किसी भी प्रकार की कोई समस्या नहीं होती है।
8. दिन भर कार्य करने में उत्साहित महसूस करते हैं।
9. चेहरे पर कान्ति और वाणी में मिठास रहती है।
10. बिना थके कई घंटों तक काम करने की क्षमता रहती है।
11. रचनात्मक कार्यों में संलग्नता रहती है।
12. मादक एवं उत्तेजक पदार्थों के सेवन की कोई तीव्र इच्छा नहीं होती है।
13. आँखों में चमक और निर्भीकता रहती है।

14. शांत चित्त के होते हैं।
15. विचारों से सकारात्मक होते हैं।
16. चेहरे पर मुस्कान बनी रहती है।
17. सुख और दुःख की स्थिति में जल्दी विचलित नहीं होते हैं।
18. निर्णय, विवेचन, एवं धारण शक्तियों से युक्त होते हैं।
19. शोक, उद्वेग, भय, क्रोध, ईर्ष्या, मानसिक तनाव जैसी समस्याएँ नहीं रहती हैं।
20. रीढ़ की हड्डी सीधी होती है।
21. सर्दी-गर्मी एवं अन्य तरह की मौसम सम्बन्धी विषमतायें झेलने की क्षमता होती है
22. व्यक्ति की त्वचा मुलायम एवं चिकनी होती है।
23. पसीना, मल-मूत्र एवं अपान वायु दुर्गन्ध रहित होती है।
24. सभी शारीरिक क्रियाएं सामान्य होती हैं।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी—

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 5. चरक संहिता के अनुसार अच्छे स्वास्थ्य के क्या उपस्तंभ हैं ?

.....

.....

.....

प्रश्न 6. शारीरिक स्वास्थ्य के अंतर्गत किन चीजों को सम्मिलित किया जाता है ?

.....

.....

.....

प्रश्न 7. मानसिक स्वास्थ्य किसे कहते हैं ?

.....

.....

.....

प्रश्न 8. सत्य के प्रति व्यक्ति में समर्पण का भाव किस प्रकार व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने में सहायक होता है ?

.....

.....

.....

प्रश्न 9. समग्र रूप से स्वस्थ व्यक्ति के किन्हीं पाँच लक्षणों का उल्लेख करें।

.....

.....

.....

## 15.8 आसन का अर्थ

शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर आसनों का किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है, को जानने से पहले यह जानना आवश्यक है कि आसन क्या है ? आसन शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'आस्' धातु से हुई है जिसका अर्थ 'बैठना' होता है। इस प्रकार आसन शब्द का अर्थ बैठने से सम्बंधित है। अष्टांग योग में इसे शरीर अवस्था माना गया है और अष्टांग योग के अनुसार यह तीसरे क्रम पर यम एवं नियम के पश्चात् आता है। योगदर्शन में स्थिर तथा सुख प्रदान करने वाले बैठने के प्रकार को आसन कहते हैं। आसनसिद्धि हमारे चित्त को एकाग्र बनाने में सहायक होती है। आसन की व्याख्या करते हुए यह कहा जा सकता है कि यह एक ऐसी स्थिति है जो व्यक्ति के लम्बे समय तक एक किसी मुद्रा में बैठने को सुनिश्चित करती है। पतंजलि आसन के विषय में लिखते हुए कहते हैं कि **"स्थिरसुखमासनम्"** अर्थात् जिससे स्थिर सुख हो वह आसन कहा जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिससे व्यक्ति के शरीर और आत्मा को स्थिर सुख पहुँचता है अर्थात् जिस मुद्रा में शरीर को रखने से शरीर को स्थायी सुख की प्राप्ति हो तथा मन को स्थिरता प्राप्त हो जिससे आत्मा को सुख एवं आनंद की प्राप्ति हो ऐसी अवस्था को आसन की संज्ञा दी जाती है (आयंगर, 2019)।

### 15.8.1 उद्देश्यों के आधार पर आसनों के प्रकार

उद्देश्यों के आधार पर आसन को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है; ध्यानात्मक आसन तथा क्रियात्मक आसन।

#### (अ) ध्यानात्मक आसन

ध्यानात्मक आसनों में उन आसनों को सम्मिलित किया जाता है जो लम्बे समय तक मनुष्य को बिना थके बैठे रहकर ध्यान करने में सहायक होते हैं। ये चित्त तथा आध्यात्मिक शांति एवं उन्नति में योगदान करते हैं। लम्बे समय तक सही आसन में बैठे रहने से मात्र आध्यात्मिक और मानसिक उन्नति ही नहीं बल्कि शारीरिक सामर्थ्य में भी उन्नति होती है और व्यक्ति ऊर्जावान बनता है। इसके अंतर्गत वज्रासन, भद्रासन, सिद्धासन, पद्मासन, स्वास्तिकासन, एवं मुक्तासन जैसे आसनों को सम्मिलित किया जाता है।

#### (ब) क्रियात्मक आसन

दूसरे प्रकार के आसनों को क्रियात्मक आसन के नाम से जाना जाता है। ये आसन स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से किये जाते हैं अतः इन्हें स्वास्थ्यलक्षी आसन के नाम से भी जानते हैं। ये आसन शरीर के बाह्य एवं आंतरिक अंगों के व्यायाम में सहायक होते हैं। इनके द्वारा हमारे आंतरिक ग्रंथियों से होने वाला स्राव भी नियमित तथा नियंत्रित होता है जो हमारे शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक विकास को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। व्यक्तित्व के सभी पक्ष एक दूसरे से जुड़े और एक दूसरे को प्रभावित करते और होते हैं। अतः ये आसन हमारे सामाजिक एवं आध्यात्मिक उन्नति में भी योगदान करते हैं। इन आसनों के कुछ प्रकारों में शीर्षासन, हलासन, चक्रासन, गोमुख आसन इत्यादि हैं।

कुछ विद्वानों ने आसन को तीन भागों में बाँटा है (शर्मा एवं दुबे, 2017)।

1. **ध्यानात्मक आसन** : ध्यानात्मक आसन ध्यान करने में योगदान करते हैं अतः इन आसनों को मुख्य रूप से ध्यान करने से पहले किया जाता है। जैसा इसके पहले भी बताया गया है इस प्रकार के आसनों में वज्रासन, भद्रासन, सिद्धासन, पद्मासन, स्वास्तिकासन, एवं मुक्तासन शामिल होते हैं।
2. **विश्रान्तिकर आसन** : योग में कुछ ऐसे आसन बताये गए हैं जिनसे मनुष्य को पूर्ण विश्रान्ति प्राप्त होती है। इन आसनों को विश्रान्तिकर आसन कहा जाता है। उदाहरणस्वरूप— शवासनद्य
3. **संवर्धनात्मक आसन** : जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, ये आसन शारीरिक संवर्धन में सहायक होते हैं। और इन आसनों के द्वारा मात्र शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक संवर्धन भी होता है। ये व्यक्ति के शारीरिक अंगों का विकास करते हैं जिससे व्यक्ति समुचित अवस्था में बैठ कर ध्यान और समाधि की अवस्था की ओर अग्रसर हो सके द्य संवर्धनात्मक आसन क्रियात्मक आसन ही हैं जिनसे हमें स्वास्थ्य लाभ होता है और हम क्रियाशील बनते हैं। इन आसनों में शीर्षासन, कुक्कुटासन, गरुड़ासन, हलासन, मयूरासन इत्यादि आते हैं।

हम देखते हैं कि योग में अभ्यास किये जाने वाले ये आसन या तो वस्तुओं के नाम पर हैं या फिर पशु-पक्षियों के नाम पर या फिर पेड़-पौधों के नाम पर। इनके पीछे कारण यह है कि मनुष्य इनका अभ्यास करते समय अपने शरीर को इन आकृतियों के समान ही बनाता है इसीलिए इन योगासनों का नाम बनने वाली आकृतियों के सदृश ही है। इनके अलावा कुछ योगासन हैं जिन्हें शरीर की विभिन्न अवस्थाओं में किया जाता है और इनसे विविध स्वास्थ्य लाभ होते हैं। इन आसनों का विवरण इस प्रकार है।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 10. आसन किसे कहते हैं ?

.....

.....

.....

प्रश्न 11. उद्देश्यों के आधार पर आसन के मुख्य प्रकार कौन से हैं? .....

.....

.....

.....

प्रश्न 12. क्रियात्मक आसनों को और किस नाम से जाना जाता है?

.....

.....

.....

प्रश्न 13. विश्रान्तिकर आसन किसे कहते हैं?

.....

.....

.....

## 15.9 आसनों के प्रकार और उनसे होने वाले लाभ

योग के अंतर्गत अनेकों आसन सम्मिलित होते हैं जिनका अभ्यास योग साधकों के द्वारा किया जाता है। यह आसन बैठकर, खड़े होकर, लेटकर, इत्यादि जैसी शारीरिक स्थितियों में किया जाता है (शर्मा एवं दुबे, 2016)। यहाँ पर योग के सभी आसनों का वर्णन करना कठिन है अतः मुख्य आसनों का वर्णन निर्दिष्ट शारीरिक स्थितियों के अंतर्गत उनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर होने वाले लाभों के साथ किया जाएगा।

### 15.9.1 बैठकर किये जाने वाले आसन

**पद्मासन :** पद्म का अर्थ होता है कमल छ पद्मासन को मुख्य रूप से ध्यानात्मक आसन में रखा जाता है और यह आसन बैठकर किया जाता है जिसमें पैरों को आधार बनाया जाता है। यह प्राणायाम एवं ध्यान करने में सहायक होता है। इस आसन में ध्यान के द्वारा व्यक्ति स्वयं को चिंतामुक्त महसूस करते हुए मानसिक शांति अनुभव करता है।

**बद्ध पद्मासन :** बद्ध पद्मासन पद्मासन का ही परिष्कृत रूप है जिसका अभ्यास पद्मासन के पश्चात् करना चाहिए। इस आसन के द्वारा स्नायु तंत्र सुदृढ़, सीना चौड़ा, फेफड़े मजबूत, रीढ़ की हड्डी सीधी एवं पुष्ट, हाथ-पैर की मांसपेशियां मजबूत, आलस्य, कब्ज, स्वप्नदोष जैसी समस्याओं का निवारण होता है।

**सिंहासन** : सिंहासन में व्यक्ति की मुद्रा दहाड़ते शेर के समान होती है इसी कारण से इस आसन को सिंहासन कहते हैं। सिंहासन की मुद्रा में पूरा शरीर तना रहता है। इससे नेत्र-ज्योति में वृद्धि, छाती, फेफड़े एवं गले की समस्याओं का समाधान, टॉन्सिल की समस्या में लाभ, आवाज सुदृढ़, चेहरे एवं गले की मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं।

**गर्भासन** : गर्भासन भी पद्मासन परिवार से सम्बंधित है। यह आसन एक कठिन आसन है परन्तु इसको करने से पूरे शरीर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस आसन को करने से सुषुम्ना नाड़ी जागृत होती है, पाचन-तंत्र सुदृढ़ होता है, शरीर के सभी अंगों की मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं, शरीर से आलस्य और जड़ता दूर होती है और वह लचीला बनता है।

**पश्चिमोत्तासन** : पश्चिमोत्तासन एक कठिन आसन है। यह कुछ सर्वोत्कृष्ट आसनों में से एक है जिसके कई लाभ हैं। इससे मोटापा कम होता है, पाचन सम्बन्धी समस्याएं दूर होती हैं, भूख बढ़ती है, स्नायु तंत्र मजबूत होता है, शरीर लचीला बनता है।

**कूर्मासन** : कूर्मासन पश्चिमोत्तासन परिवार से सम्बंधित आसन है। इस आसन के अभ्यास से कब्ज की समस्या दूर होती है, मल निष्कासन सुचारु रूप से होता है, आमाशय के विकार दूर होते हैं, रीढ़ की हड्डी लचीली होती है और सम्पूर्ण शरीर पुष्ट और लचकदार बनता है।

**सुखासन** : सुखासन बैठ कर किया जाने वाला आसन है। यह आसन ध्यान केन्द्रित करने में बहुत सहायक होता है। इस आसन के द्वारा सुषुम्ना नाड़ी द्वारा साँस लेना संभव होता है। इस आसन से पाचन क्रिया संतुलित होती है जिसकी वजह से वजन में कमी आती है, पेट अन्दर की ओर धँसता है। इससे रीढ़ की हड्डी सीधी और सुदृढ़ होती है। बवासीर तथा कमर दर्द जैसी समस्याओं से निजात मिलती है।

**वज्रासन** : वज्रासन करने में एक सरल आसन है परन्तु इससे होने वाले लाभ बहुत अधिक हैं। यह आसन ध्यान लगाने में भी बहुत सहायक होता है। यह एक ऐसा आसन है जो भोजन के तुरंत बाद किया जा सकता है। इस आसन से पाचन सुचारु रूप से होता है, अतिशार, पीठ दर्द, छाती के रोग दूर होते हैं, रीढ़ की हड्डी पुष्ट एवं सीधी होती है, पैरों की मांसपेशियाँ मजबूत एवं लचीली होती हैं तथा स्त्रियों के मासिक धर्म से सम्बंधित समस्याएं दूर होती हैं।

**सुप्त वज्रासन** : सुप्त वज्रासन, वज्रासन का ही परिष्कृत रूप है। इस आसन को वज्रासन के पश्चात् किया जाता है और वज्रासन के पश्चात् इसे करना स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यधिक लाभप्रद होता है। इस आसन के द्वारा शारीरिक और मानसिक थकान दूर होती है, मोटापा कम होता है, पाचन-तंत्र मजबूत होता है तथा आमाशय सम्बन्धी विकार दूर होते हैं, रीढ़ की हड्डी लचीली एवं मजबूत होती है। यह आसन बवासीर एवं बॉझपन जैसी समस्याओं में भी लाभप्रद है।

**कुक्कुटासन** : कुक्कुटासन में शरीर की मुद्रा किसी कुक्कुट अथवा मुर्गे के समान होती है और इसीलिए इस आसन को कुक्कुटासन कहते हैं। इस आसन के द्वारा शरीर की मांसपेशियाँ मजबूत, हाथ एवं पैर के दर्द से निजात तथा कंधे एवं गरदन के दर्द में आराम मिलता है।

**मयूरासन** : इस आसन को करते हुए शरीर की आकृति मोर यानि मयूर के समान हो जाती है जिसके कारण इसे मयूरासन नाम दिया गया है। इस आसन में सम्पूर्ण शरीर का वजन हाथों पर रहता है अतः इस आसन में संतुलन बनाए रखना बहुत आवश्यक होता है। इससे शरीर में रक्त का संचार सुचारु रूप से होता है, कब्ज और बदहजमी दूर दूर होती है, मधुमेह सम्बन्धी समस्या नहीं होती है और यदि मधुमेह की समस्या हो तो वह दूर हो जाती है।

**अंजनेयासन** : इस आसन में शरीर की मुद्रा अर्द्ध चन्द्र के आकार की होती है। इस आसन के द्वारा सम्पूर्ण शरीर को एक साथ लाभ मिलता है। इस आसन को करते समय शरीर में संतुलन एवं संयम रखना आवश्यक होता है। इस आसन के अभ्यास से शरीर पतला, पेट अन्दर, हाथ-पैर की मांसपेशियाँ मजबूत, तथा रीढ़ की हड्डी लचीली एवं सुदृढ़ होती है। इस आसन को करने से छाती की हड्डियाँ फैलती हैं, जिससे फेफड़ों की धारण क्षमता बढ़ती है और वे अधिक ऑक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता रखते हैं।

**मत्स्येन्द्रासन** : मत्स्येन्द्रासन भी पद्मासन से सम्बन्ध रखे वाला आसन है। इसे भी पद्मासन की मुद्रा में

बैठकर ही किया जाता है। इस आसन का नाम महान योगी मत्स्येन्द्र के नाम पर पड़ा है। यह मुद्रा मधुमेह के रोगियों के लिए अत्यंत ही लाभप्रद है साथ ही इससे शरीर की सभी मांसपेशियों को लाभ पहुंचता है। इस आसन के अभ्यास से कृण्डलिनी की उर्जा जागृत होती है।

**आकर्ण धनुरासन :** आकर्ण धनुरासन को बैठकर किया जाता है। यह आसन करने में अत्यधिक आसान है और इसको करने से कई लाभ मिलते हैं। इस आसन में शरीर की मुद्रा इस प्रकार की होती है जैसे किसी धनुष पर कमान खींचकर कान तक ले जाया गया हो इसीलिए इस आसन को आकर्ण धनुरासन का नाम दिया गया है। इस आसन को करने से शारीरिक दुर्बलता दूर होती है, वजन कम करने में मदद मिलती है, पाचन-तंत्र बेहतर तरीके से काम करता है, इस आसन से हाथ-पैर की मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं। तथा आलस्य एवं थकान से निजात मिलती है।

**जानु शिरासन :** जानु का अर्थ घुटना होता है। इस आसन में पैर को सीधे फैलाकर बैठे हुए कमर से ऊपर वाले शरीर के भाग को झुकाते हुए घुटने पर सिर को रखते हैं। जानु शिरासन पश्चिमोत्तानासन का परिष्कृत रूप है अतः पश्चिमोत्तानासन से होने वाले सभी लाभ इसमें सम्मिलित हैं। इस आसन से मधुमेह की बीमारी में आराम मिलता है। यह श्वाँस सम्बन्धी बीमारियों को हल करता है, आमाशय की बीमारियों को दूर करता है और पाचन-तंत्र को मजबूत बनाता है। इससे कमर पतली और लचीली होती है, पेट अन्दर की ओर धँसता है और मोटापे की समस्या हल होती है। इससे घुटने, टखने और जाँघ पुष्ट होते हैं और वीर्य सम्बन्धी समस्याएँ हल होती हैं।

**काकासन :** काकासन बैठकर किये जाने वाला आसन है। यह आसन देखने में तो कठिन लगता है परन्तु एक बार व्यक्ति अपने शरीर का संतुलन बनाना सीख जाए तो इस स्थिति में यह अत्यंत ही सरल आसन है। इसमें व्यक्ति बैठने की स्थिति में होता है और हथेलियाँ जमीन पर होती हैं और व्यक्ति अपने शरीर का पूरा वजन अपने हाथों पर देकर शरीर को जमीन से ऊपर उठाता है और गर्दन तनी हुई तथा सिर ऊपर की ओर होता है। यह आकृति काँव-काँव करते हुए कौवे जैसी होती है इसीलिए इसे काकासन का नाम दिया गया है। काकासन के अभ्यास से पेट अन्दर की ओर धँसता है, मोटापा कम होता है, पेट के सारे विकार दूर होते हैं और गर्दन का भी मोटापा कम होता है। शरीर की नाड़ियाँ सक्रिय होती हैं और यह शरीर को मजबूत बनाती हैं, फेफड़ों की धारिता बढ़ती है जिससे वे अधिक ऑक्सीजन ग्रहण कर पाते हैं, व्यक्ति के कंधे, बाँह और कलाईयाँ मजबूत होती हैं, मानसिक एकाग्रता बढ़ती है।

**एकपाद शिरासन :** इस आसन को बैठकर किया जाता है। इसमें एक समय पर एक ही पैर भूमि पर होता है जबकि दूसरा पैर हवा में या कंधे पर होता है। इस आसन के द्वारा हाथ-पैर की मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं, गर्दन का दर्द दूर करता है, पाचन में सहायक होता है और कब्ज की समस्या का निदान करता है।

### 15.9.2 पीठ के बल लेटकर किये जाने वाले आसन

**चक्रासन :** इस आसन को भी पीठ के बल लेट कर किया जाता है। यह एक कठिन आसन है जिसमें शरीर का पूरा भार हाथों एवं पैरों पर होता है और बाकी शरीर ऊपर हवा में उठा हुआ होता है। अतः इस आसन को करने हेतु शरीर का लचीला होना बहुत ही आवश्यक होता है। चक्रासन के द्वारा हमारी पाचन शक्ति सुदृढ़ होती है, कब्ज की समस्या दूर होती है, पैरों, हाथों, और कंधों की मांसपेशियाँ भी मजबूत होती हैं, हमारी छाती फैलती है और मोटापे की समस्या से राहत मिलती है। चक्रासन के द्वारा रीढ़ की हड्डी मजबूत एवं लचीली बनती है तथा स्त्रियों में मासिक धर्म के दौरान होने वाली पीड़ा से भी राहत मिलती है।

**पवन मुक्तासन :** पवनमुक्तासन पीठ के बल लेटकर किए जाने वाला आसन है। इस आसन में पीठ के बल लेट जाते हैं और पैरों को घुटने से मोड़ते हुए ऊपर की ओर ले जाते हैं। पवन मुक्तासन से हमारी गैस और कब्ज जैसी समस्याएँ दूर होती हैं। प्रसव के पश्चात स्त्रियों की निकले पेट को यह आसन कम करता है। इस आसन के द्वारा पेट भीतर की ओर बढ़ता है और मोटापे की समस्या दूर होती है। हमारा पाचन तंत्र सुचारु रूप से काम करता है।

**द्विपाद पवन मुक्तासन :** द्विपाद पवनमुक्तासन पवनमुक्तासन का ही एक परिष्कृत रूप है। पवनमुक्तासन करते समय एक पैर को ऊपर उठाया जाता है जबकि द्विपाद पवनमुक्तासन में नाम के ही अनुरूप दोनों ही पैरों को एक साथ ऊपर उठाया जाता है। इस आसन में वह सभी लाभ सम्मिलित है जो पवनमुक्तासन में मिलते हैं।

इस आसन को करने से गैस बदहजमी और कब्ज की समस्या दूर होती है, फेफड़ों एवं हृदय से संबंधित रोगों से मुक्ति मिलती है, भूख बढ़ती है, भोजन का पाचन शीघ्र होता है अर्थात् हमारा पाचन तंत्र सुदृढ़ होता है, पेट अंदर की ओर जाता है और मोटापे की समस्या से छुटकारा मिलता है। पाचन सही प्रकार से होने के कारण भूख बढ़ती है और प्रसव के उपरांत पेट के बाहर निकलने जैसी समस्याओं से स्त्रियों को छुटकारा मिलता है।

**उत्तानपादासन :** उत्तानपादासन एक सरल आसन है जिसे पीठ के बल लेट कर किया जाता है। यह आसन हमारे संपूर्ण शरीर पर प्रभाव डालता है और लाभ पहुंचाता है। इस आसन को करने से पीठ की समस्या जैसे दर्द, अकड़न इत्यादि दूर होते हैं, रीढ़ की हड्डी सीधी एवं मजबूत होती है, पैरों की मांसपेशियां मजबूत होती हैं तथा पैरों में झनझनाहट एवं पैरों की रक्तसंचार सम्बन्धी समस्या समाप्त होती है। इससे आमाशय के रोग दूर होते हैं, पाचन-तंत्र मजबूत होता है और गैस का बनना, उकार जैसी समस्या हल होती है। इस आसन के द्वारा भी मोटापे की समस्या से निजात मिलती है।

**अर्द्धउत्तानपादासन :** यह आसन एक सरल आसन है और अर्द्धउत्तानपादासन का एक परिष्कृत रूप है। जिन व्यक्तियों को उत्तानपादासन करने में समस्या आती हो वह अर्द्धउत्तानपादासन का अभ्यास कर सकते हैं और अर्द्धउत्तानपादासन में पारंगत हो सकते हैं। इससे होने वाले लाभ वही सभी हैं जो उत्तानपादासन को करने से होते हैं।

**सर्वांगासन :** सर्वांगासन भी पीठ के बल लेटकर किए जाने वाले आसनों में से एक है। इस आसन से शरीर के सभी अंगों का व्यायाम हो जाता है इसीलिए इस आसन को सर्वांगासन कहते हैं। यह आसन शीर्षासन की ही तरह शरीर के सभी अंगों पर एक साथ प्रभाव डालकर उन्हें स्वस्थ बनाता है। इस आसन को करने से पाचन-तंत्र सक्रिय होता है, रीढ़ की हड्डी पुष्ट और लचीली होती है, रीढ़ के दर्द में आराम मिलता है, गर्दन की मांसपेशियां मजबूत होती हैं, अकड़न से राहत मिलती है, टॉसिल और गले की अन्य समस्याओं में राहत मिलती है, नेत्र ज्योति बढ़ती है, थाइरॉयड और पैराथाइरॉयड ग्रंथियां स्वस्थ होती हैं, गहरी सांस से फेफड़े सुदृढ़ होते हैं, रक्त में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती है, रक्त शुद्ध होता है, कब्ज, आँखों के दर्द, माथे के दर्द, सिरदर्द और यौन सम्बन्धी समस्याओं में आराम मिलता है।

**मत्स्यासन :** इस आसन को सर्वांगासन के पश्चात् किया जाता है इस आसन में व्यक्ति की शारीरिक मुद्रा एक मछली के समान होती है जिसके कारण इस आसन को मत्स्यासन कहा जाता है। इस आसन के अभ्यास से सर्वांगासन, हलासन एवं सेतुबंधासन के दौरान गर्दन और रीढ़ की हड्डी पर पड़ने वाला दबाव और खिंचाव दूर हो जाता है। कंधों की मांसपेशियां मजबूत होती हैं, कमर और छाती की मांसपेशियां खिंचाव से सशक्त बनती हैं, पसली की हड्डियां फैलती हैं और फेफड़ों का आकार बढ़ता है जिससे वे ज्यादा ऑक्सीजन ग्रहण करने के योग्य बनते हैं। रक्त संचार सुचारु रूप से होता है और सांस सम्बन्धी परेशानियां दूर होती हैं।

**सेतुबंधासन :** सेतुबंधासन सर्वांगासन का ही परिष्कृत रूप है। इस आसन को दो प्रकार से किया जा सकता है – पहला सर्वांगासन की मुद्रा से सेतुबंधासन की मुद्रा में आना दूसरा पीठ के बल लेटकर सेतुबंधासन मुद्रा में आना। इस आसन को करने से पेट और पीठ की मांसपेशियां तनावमुक्त होकर मजबूत बनती हैं, रीढ़ की हड्डी दूसरी दिशा में खिंचती है जिससे वह अधिक लचीली होती है, शरीर का सारा भार हाथों के ऊपर दिया जाता है जिसकी वजह से हाथों की मांसपेशियां मजबूत होती हैं, वायु रोग का निवारण होता है, खाँसी, जुकाम, दमा दूर होता है और खिंचाव के कारण सिर से पैर तक तक सारा शरीर लचीला बनता है।

**हलासन :** इस आसन में शरीर की आकृति एक हल के समान हो जाती है इसलिए इस आसन को हलासन कहते हैं। प्रारंभ में इस आसन को करना कठिन हो सकता है परन्तु निरंतर अभ्यास से इसे करना आसान हो जाता है। इस आसन के अभ्यास से रक्त संचार सुचारु रूप से होता है। पाचन तंत्र तथा अन्य आंतरिक अंग सही तरीके से काम करते हैं, रीढ़ की हड्डी मजबूत और लचीली होती है, पीठ, कंधे, हाथों की मांसपेशियां मजबूत होती हैं, पेट और कमर का मोटापा कम होता है। इस आसन को करने से भूख बढ़ती है और यौन ग्रंथियां सशक्त बनती हैं।

**बोध प्रश्न**

**टिप्पणी :**

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 14. पद्मासन के द्वारा व्यक्ति को कौन से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होते हैं ?

.....

.....

.....

प्रश्न 15. पश्चिमोत्तासन के अभ्यास से होने वाले स्वास्थ्य लाभ कौन से हैं ?

.....

.....

.....

प्रश्न 16. उत्तानपादासन कौन सी शारीरिक समस्याओं में लाभप्रद है ?

.....

.....

.....

प्रश्न 17. मत्स्यासन का अभ्यास किस आसन के अभ्यास के पश्चात् किया जाता है?

.....

.....

.....

### 15.9.3 पेट के बल लेटकर किये जाने वाले आसन

**भुजंगासन :** पेट के बल लेटकर किए जाने वाले आसनों में भुजंगासन एक प्रमुख आसन है। इस आसन को करते समय शरीर की मुद्रा किसी भुजंग यानि सांप के समान होती है इसीलिए इस आसन को भुजंगासन कहते हैं। यह आसन हृदय रोग में लाभ पहुंचाता है, गुर्दों की समस्या दूर होती है, रीढ़ की हड्डी लचीली और मजबूत होती है, पेट के अंग मजबूत बनते हैं, मासिक धर्म एवं कब्ज की समस्या दूर होती है एवं सर्वाइकल स्पांडिलाइटिस की समस्या खत्म होती है।

**शलभासन :** शलभासन को पेट के बल लेटकर किया जाता है घ शलभासन को हमेशा भुजंगासन को करने के पश्चात् ही करना चाहिए। शलभासन शरीर के निचले भागों जैसे आमाशय, कमर एवं पैरों पर प्रभाव पड़ता है और साथ ही पैरों की मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं। हृदय से सम्बन्धी रोग दूर होते हैं, जिगर, गुर्दे और फुफ्फुस मजबूत होते हैं, पाचन शक्ति बढ़ती है, कब्ज दूर होता है और मोटापे की समस्या का हल होता है।

**धनुरासन :** धनुरासन, भुजंगासन एवं शलभासन दोनों का मिला-जुला आसन है। इसमें व्यक्ति पेट के बल लेटकर धड़ को जमीन पर रखते हुए पैर और सीने और उसके ऊपर का भाग हवा में उठाते हैं। धनुरासन से पाचन-तंत्र एवं जनन-तंत्र मजबूत होता है। कमर पतली होती है, और उसकी मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं, रीढ़ की हड्डी लचीली होती है, हृदय स्वस्थ होता है, पेट से सम्बंधित समस्याएँ दूर होती हैं, गुर्दे साफ होते हैं, गले, फेफड़े और पसलियों का व्यायाम होता है, तथा मोटापा की समस्या खत्म होती है।

### 15.9.4 पैरों के बल खड़े होकर किये जाने वाले आसन

**त्रिकोणासन :** त्रिकोणासन में हाथ और पैर त्रिकोण की आकृति बनाते हैं और इसी वजह से इस आसन को त्रिकोणासन कहते हैं। त्रिकोण को हिंदू विश्वास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। त्रिकोण का नीचे का भाग शक्ति एवं ऊपर का भाग शिव का रूप माना जाता है। इस आसन के द्वारा शरीर हल्का होता है, छाती चौड़ी और कमर पतली होती है, पाचन-तंत्र सही तरीके से काम करता है, रीढ़ के स्नायु स्वस्थ होते हैं, कमर-दर्द से आराम मिलता है और जुकाम तथा खाँसी से भी सम्बंधित समस्याओं को भी यह दूर करता है।

**गरुडासन :** इस आसन को एक पैर पर खड़े होकर और दूसरे पैर को पहले पैर से सहारा देते हुए हवा में उठाये हुए करते हैं। गरुडासन को करने से कमर पतली, रीढ़ की हड्डी लचीली और हाथ-पैरों की मांसपेशियाँ सुदृढ़ होती हैं। इसके साथ ही इस आसन के अभ्यास से व्यक्ति में रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती है।

**वातायनासन :** वातायनासन का अभ्यास करते समय साधक एक पैर पर खड़ा होता है और दूसरे पैर को पहले पैर से सहारा देने का प्रयास करता है। इस आसन के माध्यम से पैरों की मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं, पैरों में रक्त संचार सही तरीके से होता है, कमर दर्द, गठिया एवं हार्निया की समस्या का समाधान होता है।

**पादांगुष्ठासन :** पादांगुष्ठासन एक कठिन विधि है जिसे अभ्यास के पश्चात् ही किया जा सकता है। यह आसन वातायनासन का ही परिष्कृत रूप है। इस आसन से मोटापे की समस्या हल होती है, हाथ-पैर की मांसपेशियाँ सुदृढ़ होती हैं, तथा स्वप्नदोष इत्यादि से जुड़ी समस्याएँ दूर होती हैं।

**पाद-हस्तासन :** पाद-हस्तासन का भी अभ्यास खड़े होकर किया जाता है। इस आसन में अपने पैरों के बल खड़े हो रीढ़ एवं पैरों को सीधे रखते हुए यथासंभव आगे झुकने का प्रयास किया जाता है। इस आसन के अभ्यास से शरीर में चुस्ती-फुर्ती आती है, मस्तिष्क में सुचारु रूप से रक्त का संचार होता है, मोटापा कम होता है, कमर पतली और नितम्ब पुष्ट होते हैं, कमर सुडौल तथा रीढ़ की हड्डी लचीली बनती है। पैरों के स्नायुओं का खिंचाव बढ़ता है, और मांसपेशियाँ पुष्ट होती हैं। इसके अभ्यास से पैर, रीढ़ एवं गर्दन से सम्बंधित समस्याएँ दूर होती हैं।

### 15.9.5 सिर के बल खड़े होकर किये जाने वाले आसन

**शीर्षासन :** शीर्षासन को सिर के बल खड़े होकर किया जाता है जिसमें सिर नीचे तथा दोनों पैर ऊपर होते हैं। यह आसन थोड़ा जटिल है परन्तु नियमित अभ्यास से इसमें दक्षता प्राप्त की जा सकती है। इससे हमारा शरीर और मस्तिष्क दोनों ही स्वस्थ एवं सक्रिय बनते हैं। इस आसन के द्वारा स्मरण शक्ति एवं नेत्र ज्योति में विकास होता है। कमर के ऊपर पड़ने वाला स्थायी दबाव हट जाता है जिससे रीढ़ एवं कमर का दर्द समाप्त हो जाता है, साँस सम्बन्धी समस्याएँ दूर होती हैं और फेफड़े सुदृढ़ होते हैं, स्मरण शक्ति एवं नेत्र ज्योति में वृद्धि होती है। इस आसन के दौरान लम्बी, गहरी साँस ली जाती है जिसकी वजह से रक्त में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती है और रक्त प्रभाव संतुलित होता है, युवावस्था लम्बे समय तक बनी रहती है। इस आसन के द्वारा मस्तिष्क एवं मानसिक शक्तियों का विकास होता है, कब्ज, बवासीर और हार्निया की समस्या से निजात मिलती है।

**वृश्चिकासन :** वृश्चिकासन शीर्षासन से ही सम्बंधित आसन है जिसमें व्यक्ति के शरीर की आकृति वृश्चिक या बिच्छू के समान बनती है और इसी कारण इसे वृश्चिकासन नाम दिया गया है। इस आसन का अभ्यास करना कठिन है अतः इसका अभ्यास अत्यंत सतर्कतापूर्वक करना चाहिए। इसमें हाथों को आधार बनाकर सिर के बल खड़े होकर किया जाने वाला आसन है अतः इसको समय शरीर में संतुलन एवं मस्तिष्क को एकाग्र रखना अनिवार्य है। यह आसन हमारे सम्पूर्ण शरीर के लिए लाभप्रद है। इस आसन के अभ्यास से मोटापे की समस्या का समाधान होता है, छाती उभरती है, पसली की हड्डियाँ फैलती हैं जिससे फेफड़े अधिक मात्रा में ऑक्सीजन ग्रहण कर पाते हैं, और पेट की चर्बी गल जाती है जिससे पेट अन्दर की ओर धँसता है। पाचन-तंत्र सम्बन्धी भी सभी समस्याओं का समाधान होता है। रीढ़ की हड्डी एवं गले की मांसपेशियाँ मजबूत और लचीली होती हैं।

**उर्ध्व पद्मासन :** उर्ध्व पद्मासन में सिर के बल खड़े होकर पद्मासन की मुद्रा बनाते हैं। यह आसन पद्मासन तथा शीर्षासन का मिला रूप है। पद्मासन तथा शीर्षासन दोनों आसनों के ही लाभ इस एक आसन को करने से मिल जाते हैं।

### बोध प्रश्न

#### टिप्पणी :

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 18. शलभासन का अभ्यास किस प्रकार की शारीरिक मुद्रा में किया जाता है?

.....  
.....  
प्रश्न 19. त्रिकोणासन के अभ्यास से साधक को कौन से स्वास्थ्य लाभ होते हैं ?

.....  
.....  
प्रश्न 20. वातायनासन का अभ्यास करते समय व्यक्ति की शारीरिक मुद्रा कैसी होती है?

.....  
.....  
प्रश्न 21. वृश्चिकासन के द्वारा कौन-कौन से स्वास्थ्य लाभ मिलते हैं?

### 15.10 उत्तम शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य हेतु आसनों का योगदान

योग एक ऐसी क्रिया है जो मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, साम्बेगिक, आध्यात्मिक उन्नति में योगदान देती है। योगासनों के माध्यम से व्यक्ति को निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं।

1. शरीर में रक्त प्रवाह सुचारु रूप से होता है।
2. आसनों के द्वारा व्यक्ति का जीवन अनुशासित बनता है।
3. शरीर बिना किसी पीड़ा के लम्बे समय तक एक ही अवस्था में बैठने के योग्य बन जाता है।
4. आसनों के द्वारा रक्त की शुद्धि होती है।
5. आसनों के अभ्यास से फेफड़े फैलते और सिकुड़ते हैं जिससे उनकी धारिता बढ़ती है और साथ ही अधिक मात्रा में ऑक्सीजन फेफड़ों में पहुँचती है।
6. श्वाँस स्थिर, शान्त एवं दीर्घ होती है।
7. आसनों के अभ्यास से शरीर के अपशिष्ट पदार्थों का उत्सर्जन भली-भाँति होता है।
8. आसनों के द्वारा शरीर का तापमान सामान्य रहता है।
9. आसनों के द्वारा पाचन-तंत्र सुचारु रूप से कार्य करता है।
10. आसन के अभ्यास से रीढ़ की हड्डी सीधी एवं मांसपेशियाँ लचीली एवं सुदृढ़ होती हैं।
11. व्यक्ति निरोगी बनता है।
12. आसन आध्यात्मिक विकास के लिए आधारशिला का कार्य करते हैं।
13. आसनों का अभ्यास स्वच्छता, सादगी एवं सात्विकता जैसे गुणों का विकास करता है, तथा तामसिक वृत्तियों का नाश होता है।
14. मन की वृत्तियों पर नियंत्रण रखना सरल एवं सहज हो जाता है।

15. आसनों के द्वारा शरीर स्वस्थ बनता है और जिससे मस्तिष्क शान्त एवं स्फूर्तिवान एवं सजग होता है।
16. आसनों के अभ्यास से व्यक्ति दीर्घायु होता है।
17. आसनों का अभ्यास मस्तिष्क की चंचलता पर नियंत्रण स्थापित करता है।
18. आसनों के द्वारा मानसिक संतोष प्राप्त होता है।
19. आसन शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रखकर रोगों से बचाव एवं रोगों का निवारण करता है।
20. यह मानसिक विकारों को दूर करता है। और शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ एवं संतुलित रखता है।

---

### 15.11 योगासन के दौरान बरती जाने वाली सावधानियां

---

1. योगासनों का अभ्यास मात्र चित्र या चलचित्र देख कर नहीं करना चाहिए। योग की शुरुआत में व्यक्ति को ऐसे प्रशिक्षक की निगरानी में इन आसनों को करना चाहिए जिसे इन आसनों को करने में प्रवीणता प्राप्त हो छ एक बार सीखने के पश्चात् व्यक्ति फिर बिना किसी सहायता के अकेले में योग कर सकता है।
2. योगासन करते समय पेट खाली होना चाहिए अतः आवश्यक है कि योगासनों को प्रातःकाल में किया जाये तथा आसनों को करने से पूर्व शौचादि से निवृत्त हो लिया जाएछ
3. ऐसा नहीं है कि आसनों का अभ्यास शाम को नहीं किया जा सकता छ परन्तु ऐसे में आवश्यक है कि कम से कम 6 घंटे पूर्व भोजन को लिया गया हो और दूध और चाय जैसी चीज को भी कम से कम 2 घंटे पहले लिया गया हो छयदि ऐसा ना किया जाए तो आसनों से लाभ के स्थान पर हानि होगाछ जल को आधे घंटे पूर्व लिया जा सकता है। आसन अभ्यास के पहले लिया गया ताजा जल शरीर और मन को निरोग रखने में सहायक होता है।
4. आसनों का अभ्यास करते समय शरीर को उतना ही मोड़ना या झुकाना चाहिए जितना बिना किसी पीड़ा के हो सके छ इसके लिए कोई जल्दबाजी और जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। किसी भी आसन का अभ्यास हड़बड़ी में नहीं करना चाहिए और न ही अपने शरीर के किसी भी अंग को अचानक से मोड़ देना चाहिए।
5. योगाभ्यास के दौरान मुँह से श्वाँस लेने से बचना चाहिए और नाक से ही श्वाँस लेना चाहिए।
6. योग के लिए चित्त का शांत होना आवश्यक है।
7. योगाभ्यास के दौरान बोलने या बात करने से बचना चाहिएछ
8. योगासन के दौरान ढीले-ढाले वस्त्र पहनने चाहिए जिससे बिना किसी असुविधा के विभिन्न आसन किये जा सकेंछ आसनों के दौरान मौसम के अनुकूल वस्त्रों को पहनना चाहिएछ
9. योग जहाँ किया जाए वह भूमि समतल होनी चाहिए। इसके साथ ही योगासन कभी भी नग्न भूमि पर नहीं करना चाहिए बल्कि भूमि या लकड़ी के तख्त पर दरी बिछा के करना चाहिए। आजकल 'योगा मैट' दुकानों में बहुत ही आसानी से मिल जाते हैं। इनका प्रयोग किया जा सकता है।
10. योगासन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि जिस स्थान पर यह किया जा रहा हो वह स्थान साफ, स्वच्छ एवं हवादार हो छ बंद स्थानों पर योग करने से घुटन की समस्या हो सकती है।
11. योगाभ्यास के दौरान आँखें खुलीं और और सहज भाव में होनी चाहिए।
12. योग का अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिए। यदि अनवरत अभ्यास ना किये जाए तो योग का लाभ नहीं मिलता है।
13. जब तक योगासनों में प्रवीण ना हो जाए तब तक किसी प्रशिक्षक के निर्देशन में ही अभ्यास करना चाहिए।
14. योगाभ्यास के दौरान साधक के मन में आत्म विश्वास तथा सकारात्मक भावनायें होनी चाहिए।

## बोध प्रश्न

### टिप्पणी :

(क) निम्न बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) अपने उत्तर के मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से करें।

प्रश्न 22. उत्तम शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य हेतु आसनों के अभ्यास द्वारा होने वाले किन्हीं पाँच लाभों का उल्लेख करें ?

प्रश्न 23. योगाभ्यास के दौरान श्वास लेने में क्या सावधानी बरतनी चाहिए ?

प्रश्न 24. भोजन लेने के कितनी देर के बाद योगासनों का अभ्यास किया जाना चाहिए ?

प्रश्न 25. योगाभ्यास के दौरान बरती जाने वाली किन्हीं दो सावधानियों को उल्लिखित करें।

## 15.12 सारांश

शारीरिक स्वास्थ्य संवर्धनात्मक आसनरूप पद्मासन, बद्ध पद्मासन, सिंहासन, गर्भासन, पश्चिमोत्तासन, कूर्मासन, वज्रासन, सुप्त वज्रासन, कुक्कुटासन, मयूरासन, अंजनेयासन, मत्स्येन्द्रासन, आकर्ण धनुरासन, जानु शिरासन, काकासन, एकपाद शिरासन, चक्रासन, पवन मुक्तासन, द्विपाद पवन मुक्तासन, उत्तानपादासन, अर्द्धउत्तानपादासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, सेतुबंधासन, हलासन, भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन, त्रिकोणासन, गरुड़ासन, वातायनासन, पादांगुष्ठासन, पाद-हस्तासन, शीर्षासन, वृश्चिकासन, उर्ध्व पद्मासन

मानसिक स्वास्थ्य संवर्धनात्मक आसनरूप पद्मासन, बद्ध पद्मासन, पश्चिमोत्तासन, सुप्त वज्रासन, मत्स्येन्द्रासन, आकर्ण धनुरासन, काकासन, पादांगुष्ठासन, पाद-हस्तासन, शीर्षासन

उच्च रक्तचाप : सुप्त ताड़ासन

निम्न रक्तचाप : पद्मासन, शशकासन, सिद्धासन, उत्तानपादासन

दृष्टि-दोष : मत्स्यासन, सर्वांगासन, सिंहासन

चर्म-रोग : सर्वांगासन, भुजंगासन, मत्स्यासन, पश्चिमोत्तासन

जुकाम : सिंहासन, मत्स्यासन, भुजंगासन, उत्तानपादासन

कमर दर्द : मकरासन, मत्स्यासन, भुजंगासन, उत्तानपादासन

श्वसन रोग : मत्स्यासन, भुजंगासन, नौकासन, सुप्त वज्रासन, उत्तानपादासन

सिर रोग : सर्वांगासन, शशांकासन, पवनमुक्तासन

पाचन तंत्र रोग : मत्स्यासन, भुजंगासन, उत्तानपादासन, इष्टवंदन, पवनमुक्तासन, अग्निसार

बुखार : कायोत्सर्ग

पैर एवं घुटने में दर्द : पश्चिमोत्तासन, पवनमुक्तासन

कब्ज : अग्निसार, इष्टवंदन

---

### 15.13 अभ्यास के प्रश्न

---

1. समग्र स्वास्थ्य से आप क्या समझते हैं ? स्वास्थ्य के दर्शन की व्याख्या करें।
2. स्वास्थ्य का क्या आशय है ? अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति किस प्रकार से की जा सकती है ?
3. शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को स्पष्ट करें। उत्तम शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की क्या विशेषताएं हैं ?
4. बैठ कर किये जाने विभिन्न आसनों का वर्णन करते हुए उमसे होने वाले स्वास्थ्य लाभों की व्याख्या करें।
5. पीठ एवं पेट के बल लेट कर कौन-कौन से आसनों का अभ्यास किया जाता है ? इन आसनों का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य में होने वाले लाभों का वर्णन करें।
6. योगासन में समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए, स्पष्ट करें।

---

### 15.14 चर्चा के बिंदु

---

1. भारतीय परंपरा हमेशा से समग्र स्वास्थ्य की पोषक रही है। इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करें।
2. आसन किस प्रकार से मानसिक स्वास्थ्य का रक्षण करने में सहायक सिद्ध होते हैं ?

---

### 15.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

1. संकुचित रूप में स्वास्थ्य का तात्पर्य व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य से है।
2. स्वास्थ्य केवल रोग अथवा असमर्थता या अपंगता की अनुपस्थिति ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक सम्पन्नता की स्थिति है।
3. आयुर्वेद के अनुसार रोग के चार प्रकार हैं। (i) आगंतुक (ii) शारीरिक (iii) मानसिक (iv) स्वाभाविक।
4. कश्यप ऋषि के अनुसार जिस व्यक्ति में भोजन करने की इच्छा, अर्थात् भूख समय पर लगती हो, भोजन ठीक से पचता हो, मलमूत्र और वायु का निष्कासन उचित रूप से होते हों, शरीर में हलकापन एवं स्फूर्ति रहती हो, इन्द्रियाँ प्रसन्न रहती हों, मन की सदा प्रसन्न स्थिति हो, सुखपूर्वक रात्रि में शयन करता हो, सुखपूर्वक ब्रह्ममुहूर्त में जागता होय बल, वर्ण एवं आयु का लाभ मिलता हो, जिसकी पाचक-अग्नि न अधिक हो न कम, वह व्यक्ति स्वस्थ है।
5. चरक संहिता के अनुसार आहार, निद्रा, और ब्रह्मचर्य अच्छे स्वास्थ्य के उपस्तंभ हैं।
6. शारीरिक स्वास्थ्य के अंतर्गत इसकी संरचना, विकास, कार्यप्रणाली और रखरखाव सम्मिलित होता है।
7. किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसके भावनात्मक व्यवहार के संतुलित विकास का वह स्तर जो उसके अन्य सहजीवियों एवं सहकर्मियों के साथ सहअस्तित्व एवं सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार को दर्शाता है, मानसिक स्वास्थ्य कहलाता है।
8. सत्य के प्रति व्यक्ति में समर्पण का भाव उसे स्वयं की सीमितताओं और सृष्टि के सार्वभौमिक नियमों के लिए स्वीकार्यता सिखाता है जो उसे मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने में मदद करती है।
9. समग्र रूप से स्वस्थ व्यक्ति के निम्नलिखित लक्षण हैं –
  1. सदैव प्रसन्नचित्त रहते हैं और उनका हृदय स्वर्गिक आनंद से परिपूर्ण रहता है।

2. सदैव उत्साहित रहते हैं।
3. गहरी नींद लेते हैं।
4. पेट अन्दर और छाती बाहर की ओर उभरी होती है।
5. प्रातः काल उठने के उपरान्त तन-मन में स्फूर्ति का अनुभव करते हैं।
10. आसन एक ऐसी स्थिति है जो व्यक्ति के लम्बे समय तक एक किसी मुद्रा में बैठने को सुनिश्चित करती है।
11. उद्देश्यों के आधार पर आसन के मुख्य प्रकार ध्यानात्मक तथा क्रियात्मक आसन हैं।
12. क्रियात्मक आसनों को स्वास्थ्यलक्षी आसन के नाम से भी जानते हैं।
13. जिन आसनों से मनुष्य को पूर्ण विश्रान्ति प्राप्त होती है उन आसनों को विश्रान्तिकर आसन कहते हैं।
14. पद्मासन के द्वारा व्यक्ति स्वयं को चिन्तामुक्त महसूस करते हुए मानसिक शांति अनुभव करता है।
15. पश्चिमोत्तासन के अभ्यास से मोटापा कम होता है पाचन सम्बन्धी समस्याएं दूर होती हैं, भूख बढ़ती है, स्नायु तंत्र मजबूत होता है, शरीर लचीला बनता है।
16. उत्तानपादासन को करने से पीठ की समस्या जैसे दर्द, अकड़न इत्यादि दूर होते हैं, रीढ़ की हड्डी सीधी एवं मजबूत होती है, पैरों की मांसपेशियां मजबूत होती हैं तथा पैरों में झनझनाहट एवं पैरों की रक्तसंचार सम्बन्धी समस्या समाप्त होती है। इससे आमाशय के रोग दूर होते हैं, पाचन-तंत्र मजबूत होता है और गैस का बनना, डकार जैसी समस्या हल होती है। इस आसन के द्वारा भी मोटापे की समस्या से निजात मिलती है।
17. मत्स्यासन का अभ्यास सर्वांगासन के पश्चात् किया जाता है।
18. शलभासन का अभ्यास पेट के बल लेटकर किया जाता है।
19. त्रिकोणासन के द्वारा शरीर हल्का होता है, छाती चौड़ी और कमर पतली होती है, पाचन-तंत्र सही तरीके से काम करता है, रीढ़ के स्नायु स्वस्थ होते हैं, कमर-दर्द से आराम मिलता है और जुकाम तथा खाँसी से भी सम्बंधित समस्याओं को भी यह दूर करता है।
20. वातायनासन का अभ्यास करते समय साधक एक पैर पर खड़ा होता है और दूसरे पैर को पहले पैर से सहारा देने का प्रयास करता है।
21. वृश्चिकासन के द्वारा मोटापे की समस्या का समाधान होता है, छाती उभरती है, पसली की हड्डियाँ फैलती हैं जिससे फेफड़े अधिक मात्रा में ऑक्सीजन ग्रहण कर पाते हैं, और पेट की चर्बी गल जाती है जिससे पेट अन्दर की ओर धँसता है। पाचन-तंत्र सम्बन्धी भी सभी समस्याओं का समाधान होता है। रीढ़ की हड्डी एवं गले की मांसपेशियाँ मजबूत और लचीली होती हैं।
22. उत्तम शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य हेतु आसनों के अभ्यास द्वारा होने वाले पाँच लाभ इस प्रकार हैं—
  1. आसनों के द्वारा रक्त की शुद्धि होती है।
  2. आसनों के अभ्यास से फेफड़े फैलते और सिकुड़ते हैं जिससे उनकी धारिता बढ़ती है और साथ ही अधिक मात्रा में ऑक्सीजन फेफड़ों में पहुँचती है।
  3. श्वाँस स्थिर, शान्त एवं दीर्घ होती है।
  4. आसनों का अभ्यास मस्तिष्क की चंचलता पर नियंत्रण स्थापित करता है।
  5. आसनों के द्वारा मानसिक संतोष प्राप्त होता है।
23. योगाभ्यास के दौरान मुँह से श्वाँस लेने से बचना चाहिए और नाक से ही श्वाँस लेना चाहिए।
24. भोजन लेने के कम से कम छः घंटे के बाद ही योगासनों का अभ्यास किया जाना चाहिए।

25. योगाभ्यास के दौरान बरती जाने वाली दो सावधानियों निम्नवत हैं –

1. योग के लिए चित्त का शांत होना आवश्यक है।
2. योगाभ्यास के दौरान बोलने या बात करने से बचना चाहिए।

---

### 15.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

1. शर्मा, आर. के. एवं दुबे एस. के. (2017). योग शिक्षा. आगरा : राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड।
2. शर्मा, आर.के. एवं दुबे, एस. (2016). योग शिक्षा. आगरा : राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड।
3. शर्मा, सी. (2019). भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।

---

### 15.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

---

1. आयंगर, बी.के.एस. (2019). पतंजलि योग सूत्र. नई दिल्ली : प्रभात पेपरबैक्स।
2. गोयन्दका, एच. के. डी. (2019). योग दर्शन. गोरखपुर : गीताप्रेस।
3. शर्मा, आर. के. एवं दुबे एस. के. (2017). योग शिक्षा. आगरा : राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड।
4. शर्मा, आर.के. एवं दुबे, एस. (2016). योग शिक्षा. आगरा : राधा प्रकाशन मन्दिर प्राइवेट लिमिटेड।

---

## इकाई — 16 : ध्यान व इसके चिकित्सकीय मूल्य

---

### इकाई की संरचना

- 16.1 प्रस्तावना
- 16.2 इकाई के उद्देश्य
- 16.3 ध्यान का अर्थ
- 16.4 विभिन्न भारतीय धर्मों/दर्शनों में ध्यान के रूप
  - 16.4.1 जैन धर्म/दर्शन में ध्यान
  - 16.4.2 बौद्ध धर्म/दर्शन में ध्यान
- 16.5 ध्यान के प्रकार
  - 16.5.1 सगुण ध्यान
  - 16.5.2 निर्गुण ध्यान
- 16.6 ध्यान से होने वाले चिकित्सकीय लाभ
  - 16.6.1 ध्यान के द्वारा होने वाले शारीरिक स्वास्थ्य लाभ
  - 16.6.1 ध्यान के द्वारा होने वाले मानसिक स्वास्थ्य लाभ
- 16.7 सारांश
- 16.8 अभ्यास के प्रश्न
- 16.9 चर्चा के बिंदु
- 16.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 16.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

### 16.1 प्रस्तावना

---

पतंजलि के राज योग में, जिसे 'ध्यान' सातवाँ स्तर है। ध्यान का तात्पर्य ध्यान अभ्यास के अत्यधिक परिष्कृत रूप से है। इसमें मन की गहन एकाग्रता शामिल है और आमतौर पर इसे यम और नियम, आसन और प्राणायाम जैसे पूर्ववर्ती योग अभ्यासों के बाद किया जाता है। हिंदू धर्म में, ध्यान को आत्म-ज्ञान प्राप्त करने और अपने वास्तविक स्वरूप को महसूस करने का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। ध्यान एक विविध और प्राचीन अभ्यास है जिसमें मन को केंद्रित करने और उसे साफ करने के लिए मानसिक और शारीरिक तकनीकों का उपयोग किया जाता है। हजारों वर्षों के इतिहास के साथ, विभिन्न संस्कृतियों और परंपराओं में ध्यान के विभिन्न रूप विकसित हुए हैं। हालाँकि, हाल के दशकों में ही आधुनिक विज्ञान ने इस अभ्यास का विस्तृत अध्ययन किया है। आधुनिक तकनीक के अनुप्रयोग से ध्यान की समझ काफी समृद्ध हुई है, जिससे इसके प्रभावों और लाभों के बारे में हमारे ज्ञान में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। समर्पित अभ्यास के माध्यम से, व्यक्ति स्वयं और अस्तित्व की प्रकृति के बारे में गहरी अंतर्दृष्टि प्राप्त करना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त ध्यान के कुछ चिकित्सकीय मूल्य भी हैं जिनका उल्लेख इस अध्याय में किया जाएगा।

---

### 16.2 इकाई के उद्देश्य

---

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि—

1. ध्यान का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे।
2. विभिन्न भारतीय धर्मोद्दर्शनों में ध्यान के रूप का वर्णन कर सकेंगे।

3. ध्यान के प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे।
4. ध्यान के द्वारा होने वाले शारीरिक स्वास्थ्य लाभों का उल्लेख कर सकेंगे।
5. ध्यान के माध्यम से होने वाले मानसिक स्वास्थ्य लाभों की व्याख्या कर सकेंगे।

### 16.3 ध्यान का अर्थ

ध्यान का आशय है 'चिंतन, प्रतिबिंब'। जब 'गहन, तथा अमूर्त ध्यान' हो तब योग में उसे ध्यान की संज्ञा दी जाती है। राजयोग में ध्यान सातवाँ अंग है या सातवें स्तर पर है जिसके पश्चात ही समाधि की प्राप्ति हो सकती है। ध्यान शब्द संस्कृत शब्द 'धी' से लिया गया है, जिसका अर्थ है चिंतन करना, मनन करना, सोचना या विचार में लीन रहना।

ध्यान का उल्लेख वेद, उपनिषद, ब्राह्मणों तथा पुराणों में मिलता है। इसके अलावा जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म जैसे अन्य भारतीय दर्शनों/धर्मों में भी ध्यान का उल्लेख मिलता है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि ध्यान शब्द वेदों के आरण्यक और ब्राह्मण में दिखाई देता है, जबकि प्रारंभिक उपनिषदों में यह 'चिंतन, ध्यान' और आत्म-ज्ञान प्रक्रिया के एक महत्वपूर्ण भाग के अर्थ में दिखाई देता है। हिंदू धर्म के कई उपनिषदों और पतंजलि के योगसूत्र में इसका वर्णन किया गया है। ऋग्वेद के ऋचा संख्या 4.36.2 और तैत्तिरीय आरण्यक के श्लोक 10.11.1 में ध्यान का उल्लेख मिलता है। कौशीतकी उपनिषद में मन और ध्यान के संदर्भ में इसका प्रयोग श्लोक संख्या 3.2 से 3.6 में किया गया है। कौशीतकी उपनिषद, के श्लोक 3.2 में कहा गया है

**मनसा ध्यानमित्येकभूयं वै प्राणाः ॥ 3.2 ॥**

अर्थात्, मन से मुझ पर प्राण के रूप में ध्यान करो

इसके अतिरिक्त ध्यान शब्द छांदोग्य उपनिषद के अध्याय 1.3, 2.22, 5.1, 7.6, 7.7 और 7.26, बृहदारण्यक उपनिषद के अध्याय 3.5, 4.5 और 4.6 तथा मैत्री उपनिषद के श्लोक 6.9 से 6.24 में 'चिंतन, मनन, ध्यान' के संदर्भ में आता है। ध्यान शब्द का अर्थ छांदोग्य उपनिषद में ध्यान से है, जबकि प्रश्न उपनिषद में कहा गया है कि ओम (ॐ) का ध्यान ब्रह्म (परम वास्तविकता) की दुनिया की ओर ले जाता है।

योगसूत्र के विभूतिपाद के द्वितीय श्लोक में लिखा है कि –

**तत् प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ 2 ॥**

(जहाँ चित्त को लगाया जाए) उसी में वृत्ति का एकतार चलना, ध्यान है।

जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाए, उसी में चित्त का एकाग्र हो जाना अर्थात् केवल ध्येयमात्र की एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह चलना, उसके बीच में किसी भी दूसरी वृत्ति का न उठना ध्यान है।

विभूतिपाद का प्रथम श्लोक धारणा से संबंधित है। धारणा के विषय में कहा गया है कि बाहर या शरीर के भीतर कहीं भी किसी एक देश में चित्त को ठहराना धारणा है। यही धारणा आगे चल कर ध्यान का रूप ले लेती है। अर्थात् किसी भी देश-विदेश में चित्त के स्थिरीकरण को धारणा की संज्ञा दी जाती है तथा जब धारणा के पश्चात ध्येय वस्तु का ज्ञान एकाकार रूप से होने लगता है, तब उसे ध्यान की संज्ञा दी जाती है। आर्यंगर अपने भाष्य में लिखते हैं कि धारणा के प्रभाव को लंबे समय तक क्रमानुसार, लगातार बिना रुके बनाए रखा जाता है तो वह अपने आप ध्यान का रूप ले लेता है। सांख्य दर्शन में ध्यान को 'ध्यानं निर्विषयं मनः' के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसका अनुवाद 'मन भी परेशान करने वाले और विचलित करने वाले भावनाओं, विचारों और इच्छाओं से मन की मुक्ति' के रूप में किया गया है। स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि 'जब मन को किसी निश्चित आंतरिक या बाह्य स्थान पर स्थिर रहने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है, तो उसमें उस बिंदु की ओर एक अखंड धारा में बहने की शक्ति आ जाती है। इस अवस्था को ध्यान कहा जाता है'।

अतः यह कहा जा सकता है कि ध्यान 'प्रत्यय की एकतानता' है। प्रत्यय की एकतानता से आशय है कि इस अवस्था में चित्त का जिस भी वस्तु पर केंद्रण होता है, उस वस्तु का ज्ञान लगातार अविच्छिन्न रूप से होता रहता है और इसमें कोई अवरोध नहीं आ पता है। किसी अन्य वस्तु के ज्ञान या उसमें चित्त का केन्द्रीयकरण नहीं

होता है और इसके कारण उस वस्तु (प्रथम वस्तु) के ज्ञान की धारा नहीं टूटने पाती। अन्य वस्तुओं से हटाकर एक वस्तु पर चित्त में एकाग्र करने से ध्यान की अवस्था तब पैदा होती है जब उस वस्तु का ज्ञान धारावाहिक रूप से दीर्घ काल तक होता रहता है। ध्यान में ध्येय वस्तु के प्रत्ययों का निरन्तर प्रवाह चलता और उस प्रवाह के मध्य किसी विसदृश प्रत्यय का प्रवेश नहीं होता है।

---

## 16.4 विभिन्न भारतीय धर्मों/दर्शनों में ध्यान के रूप

---

### 16.4.1 जैन धर्म/दर्शन में ध्यान

जैन धर्म/दर्शन जो भारत तथा विश्व के प्राचीनतम धर्म/दर्शनों में से एक है, में 'प्रेक्षा' शब्द का उपयोग किया गया है। प्रेक्षा ध्यान का अर्थ 'देखना' है, जो मन को भीतर की ओर केंद्रित करने और निरन्तर आंतरिक दृष्टि विकसित करने की प्रक्रिया है। इससे अभ्यासी नाम और रूप की दुनिया से मुक्त होकर परम सत्य चेतना में स्थित होता है। प्रेक्षा ध्यान किसी भी समय और स्थान पर किया जा सकता है, लेकिन नियमित समय पर अभ्यास करने से परिणाम जल्दी मिलते हैं। इस ध्यान के प्रमुख चरण हैं : श्वास प्रेक्षा (सांस का बोध), अनिमेष प्रेक्षा (किसी वस्तु को देखना), शरीर-प्रेक्षा (शरीर का बोध), वर्तमान प्रेक्षा (वर्तमान का बोध) और एकाग्रता। इसे बैठे, लेटे या खड़े होकर किया जा सकता है। यह ध्यान तनाव को कम करता है, शरीर को आराम देता है, गहरी और धीमी सांस लेने की पद्धति विकसित करता है, अवांछनीय विचारों को कम करता है और मन को शांत और स्थिर बनाता है। प्रेक्षा ध्यान के अभ्यास से व्यक्ति अपनी आंतरिक शांति को अनुभव करता है और अपने मन की जटिलताओं को सरल बनाता है। यह ध्यान न केवल मानसिक स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद है, बल्कि यह आत्मा की गहराई में जाकर व्यक्ति को आत्मज्ञान की ओर भी अग्रसर करता है। जब व्यक्ति श्वास प्रेक्षा के चरण में प्रवेश करता है, तब वह अपने श्वास की प्रत्येक गति पर ध्यान केंद्रित करता है, जिससे अंतःकरण में स्थिरता आती है।

अनिमेष प्रेक्षा के दौरान, अभ्यासी किसी एक वस्तु को ध्यान पूर्वक देखता है, जिससे उसकी संज्ञानात्मक क्षमता और भी विकसित होती है। यह प्रक्रिया मन के चंचलता को नियंत्रित करने में सहायक होती है और ध्यान केंद्रित करने की क्षमता को बढ़ाती है। शरीर-प्रेक्षा में, व्यक्ति अपने शरीर के प्रत्येक अंग का बोध करता है, जिससे उसकी शारीरिक भान में वृद्धि होती है और वह अपने शरीर से एक गहरा संबंध स्थापित करता है।

वर्तमान प्रेक्षा का अभ्यास करते हुए, व्यक्ति अपने वर्तमान क्षण का पूरी तरह से अनुभव करता है। यह ध्यान के इस चरण में, व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं को समयानुसार स्वीकार करता है, जिससे वह अपने अंदर की अशांति को समाप्त करने में सक्षम होता है।

एकाग्रता के चरण में, अभ्यासी सभी ध्यान को केंद्रित कर एक बिंदु पर लाता है, जिससे एक अद्वितीय मानसिक स्पष्टता उत्पन्न होती है। प्रेक्षा ध्यान के नियमित अभ्यास से एक सकारात्मक जीवनशैली का निर्माण होता है, जो व्यक्ति को बाहरी तनावों से मुक्ति दिलाने के साथ ही, आंतरिक शांति और संतोष प्रदान करता है। इस प्रकार, जैन धर्म में प्रेक्षा ध्यान का अभ्यास न केवल आध्यात्मिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि यह समग्र स्वास्थ्य और कल्याण में भी योगदान देता है।

### 16.4.2 बौद्ध धर्म/दर्शन में ध्यान

बौद्ध धर्म में ध्यान के दो पारंपरिक रूप हैं : समाधा, जिसका उद्देश्य एकाग्रता विकसित करना है, और विपश्यना, जिसका उद्देश्य समझ बढ़ाना है। समाधा ध्यान का लक्ष्य जुड़ाव की स्थिति तक पहुँचना है, जबकि विपश्यना आत्मज्ञान की प्रक्रिया से गहराई से जुड़ी है। समाधा और विपश्यना दोनों ही ध्यान की विभिन्न तकनीकें हैं, जो अंततः मन की शांति और आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए सहायक होती हैं। समाधा ध्यान के दौरान साधक को एक बिंदु पर ध्यान केंद्रित करना होता है, जैसे श्वास, आंतरिक प्रकाश या किसी विशेष वस्तु पर, जिससे मानसिक शांति और स्थिरता हासिल की जा सके। यह अभ्यास न केवल मानसिक स्थिरता को बढ़ाता है, बल्कि भावनात्मक संतुलन भी प्रदान करता है।

इसके विपरीत, विपश्यना ध्यान उन गहरी परतों की खोज करता है जो हमारी मानसिकता और अनुभव को प्रभावित करती हैं। यह ध्यान प्रक्रिया में अपने विचारों, भावनाओं और संवेदनाओं का अवलोकन करना शामिल होता है, जिससे साधक अपने अस्तित्व के अनुभव में गहराई से उतरता है। विपश्यना साधकों को अपनी वास्तविकता को समझने और अहंकार के संकीर्ण बंधनों को तोड़ने में सहायता करता है।

इस प्रकार, दोनों ध्यान की विधियाँ एक-दूसरे के पूरक हैं। समाधा ध्यान से उत्पन्न मानसिक स्थिरता विपश्यना के गहन अवलोकन में सहायक होती है, जबकि विपश्यना की समझ मन की एकाग्रता को और भी अधिक प्रौढ़ बनाती है। साधक जब इन दोनों को संतुलित रूप से अपनाते हैं, तो वे अपने भीतर एक सच्ची शांति और स्पष्टता का अनुभव कर सकते हैं, जो उनके व्यक्तिगत विकास और आध्यात्मिक यात्रा में महत्वपूर्ण होती है।

---

## 16.5 ध्यान के प्रकार

---

योग सिद्धांत चंद्रिका में दो प्रकार के ध्यान का वर्णन किया गया है।

### 16.5.1 सगुण ध्यान

सगुण ध्यान (आधारित ध्यान) विशेषणों या दिव्य गुणों पर ध्यान केंद्रित करता है, जो अक्सर देवताओं या प्रतीकों की दृश्य संकल्पना में होता है। इस ध्यान की प्रक्रिया में, व्यक्ति अपने संज्ञानात्मक दृष्टिकोण को उन विशेषणों पर केंद्रित करता है, जो भक्ति और श्रद्धा को प्रकट करते हैं। इसके माध्यम से, साधक मन को स्थिर करते हुए, दिव्य ऊर्जा के साथ समन्वय स्थापित करता है।

सगुण ध्यान के अभ्यास में, साधक भगवान के रूप, उनके गुणों और विशेषताओं का अवलोकन करते हुए, उनके साथ अटूट संबंध स्थापित करने का प्रयास करते हैं। यह ध्यान करते समय, व्यक्ति अपनी चित्त को उन विशेषणों जैसी गुणवत्ता में लाने का प्रयास करता है, जैसे प्रेम, करुणा, और शांति। जब साधक निरंतरता के साथ इन दिव्य गुणों पर ध्यान केंद्रित करता है, तो उनके जीवन में सकारात्मक परिवर्तन और आध्यात्मिक वृद्धि होती है। यह अभ्यास साधक को आंतरिक संतुलन और मानसिक स्पष्टता की ओर अग्रसर करता है। इस प्रकार, सगुण ध्यान केवल ध्यान की एक विधि नहीं है, बल्कि यह आत्मा के उत्कर्ष का एक माध्यम है, जो साधक को दिव्यता के निकट लाता है। विशेषकर, जब साधक किसी विशिष्ट देवता की छवि के माध्यम से ध्यान करते हैं, तो वे न केवल अपनी मानसिक स्थिति को संतुलित करते हैं, बल्कि दिव्य प्रेम और पुनीत भावनाओं के प्रवाह में भी खुद को समाहित कर लेते हैं। इस प्रकार, सगुण ध्यान एक शक्तिशाली साधन के रूप में कार्य करता है, जो व्यक्ति की आध्यात्मिक यात्रा को सशक्त बनाता है।

### 16.5.2 निर्गुण ध्यान

निर्गुण ध्यान ईश्वर के निराकार पहलू से जुड़ने के लिए विचारों और अवधारणाओं से परे जाने पर ध्यान केंद्रित करता है, जिससे साधक भौतिक प्रतिनिधित्व से परे चेतना की एक गहरी अवस्था तक पहुँच पाता है। इस पवित्र अभ्यास में, साधक धीरे-धीरे दैनिक विकर्षणों के जाल से अलग हो जाता है, जिससे मन को ध्वनियों और दृश्यों से परे शांति में बसने की अनुमति मिलती है। निर्गुण ध्यान का सार व्यक्तियों को शुद्ध जागरूकता के अनुभव की ओर मार्गदर्शन करने की क्षमता में निहित है, जहाँ स्वयं की सीमाएँ विलीन हो जाती हैं और अलगाव का भ्रम दूर हो जाता है। जैसे-जैसे विचार उठते हैं, उन्हें बिना किसी लगाव के स्वीकार किया जाता है, जैसे कि एक विशाल, खाली आकाश में बादल बह रहे हों। साधक अपने स्वयं के मानसिक पैटर्न का निरीक्षण करना सीखता है, यह पहचानते हुए कि वे क्षणभंगुर घटनाएँ हैं, जबकि अस्तित्व की वास्तविक प्रकृति अछूती और शाश्वत रहती है। प्रत्येक सत्र अस्तित्व की गहराई में एक यात्रा बन जाता है, जहाँ मौन गाता है और शून्य क्षमता की समृद्धि के साथ प्रतिध्वनित होता है। इस गहन अवस्था में, हृदय विस्तृत होता है, उस सर्वव्यापी प्रेम को गले लगाता है जो रूप और समय से परे है। यहाँ, भय और इच्छा जैसी अवधारणाएँ अपनी पकड़ खो देती हैं, और सभी जीवन की अंतर्निहित एकता को प्रकट करती हैं। निराकार के प्रति यह जागृति व्यक्ति को उस दिव्य उपस्थिति के साथ प्रतिध्वनित होने की अनुमति देती है जो ब्रह्मांड में व्याप्त है, और अपने से कहीं अधिक महान किसी चीज से संबंधित होने की भावना को पोषित करती है। इस प्रकार, निर्गुण ध्यान के अभ्यास के माध्यम से, अभ्यासी एक गहरी आंतरिक शांति, एक अटूट शांति विकसित करता है जो बाहरी परिस्थितियों के तूफानों का सामना कर सकती है। यह एक सूक्ष्म जागृति है – सांसारिक आसक्तियों द्वारा लगाए गए सीमाओं से मुक्त, अपनी मूल स्थिति का स्मरण। प्रत्येक सांस के साथ, निराकार से संबंध गहरा होता जाता है, जो अस्तित्व की यात्रा के लिए गहन कृतज्ञता को बढ़ावा देता है।

## बोध प्रश्न

### टिप्पणी:

(क) नीचे दिये हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. 'तत् प्रत्ययैकतानता ध्यानम्' का क्या अर्थ है ?

.....

.....

.....

2. बौद्ध दर्शन में ध्यान की किन तकनीकों का उल्लेख है ?

.....

.....

.....

## 16.6 ध्यान से होने वाले चिकित्सकीय लाभ

ध्यान के द्वारा होने वाले चिकित्सकीय लाभों को दो प्रकारों में देखा जा सकता है। प्रथम है ध्यान के माध्यम से होने वाले शारीरिक स्वास्थ्य लाभ तथा दूसरा है ध्यान के द्वारा होने वाले मानसिक स्वास्थ्य लाभ। इन दोनों प्रकार के स्वास्थ्य लाभों से जुड़े हुए कई प्रमाण हैं जिन्हें विभिन्न प्रयोगों/ध्शोधों के आधार पर निष्कर्ष के रूप में प्राप्त किया गया है। यह प्रमाणित है कि हमारा शारीरिक स्वास्थ्य हमारे मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है और उलट रूप में बिल्कुल यही मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में भी है। अतः हम कह सकते हैं कि शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और जब मानसिक अस्वस्थता की स्थिति में स्वास्थ्य लाभ के लिए चिकित्सु ध्यान करता है तो उसके मात्र मानसिक रोगों का निवारण नहीं होता बल्कि शारीरिक स्वास्थ्य लाभ भी होता है। योग के द्वारा होने वाले विभिन्न रोगों में होने वाले लाभों का वर्णन क्रमवार यहाँ पर किया जाएगा।

### 16.6.1 ध्यान के द्वारा होने वाले शारीरिक स्वास्थ्य लाभ

1. **शारीरिक स्थूलता का निवारण** : शारीरिक स्थूलता घटाने के लिए योग विश्व के सबसे लोकप्रिय साक्ष्य-आधारित विषयों में से एक बन गया है। विविध योग स्कूलों के द्वारा बीएमआई पर सकारात्मक प्रभाव डालने वाले कई अभ्यास विकसित किए हैं। Lauche तथा अन्य (2017) द्वारा किए गए एक यादृच्छिक नियंत्रित प्रयोग में, 72 मोटे पुरुषों के बीएमआई, कूल्हे और कमर की परिधि, और त्वचा की तह की मोटाई में योग के अनुपालन से सुधार हुआ। 14-सप्ताह के योग-आधारित जीवन शैली परिवर्तन में पोषण, आसन, प्राणायाम, विश्राम तकनीक, ध्यान, और योगिक परामर्श शामिल थे।
2. **हृदय गति पर नियंत्रण** : ध्यान में संलग्न होने से हमारे शरीर के 'आराम और पाचन' कार्यों की सक्रियता हो सकती है, जो हमारी 'भागो या लड़ो' प्रतिक्रियाओं का प्रतिकार करने में मदद कर सकती है। इस अभ्यास को अपनी दैनिक दिनचर्या में शामिल करने से हृदय गति कम होती है, जिससे हृदय रोग का जोखिम कम हो सकता है। शोध से पता चला है कि शांत ध्यान के दौरान हृदय गति धीमी हो जाती है, और ध्यान सत्रों के दौरान गहन ध्यान या आनंदमय अनुभवों के क्षणों के दौरान तेज हो सकती है (Tamini, 1975)। विभिन्न ध्यान तकनीकें जैसे कि ट्रान्स्रेंडेंटल मेडिटेशन (TM), जेन, विश्राम प्रतिक्रिया और ध्यान के अन्य शांत करने वाले रूप आम तौर पर हृदय गति को कम करने के लिए पाए गए हैं (Bono, 1984; Delmonte, 1984a)। हालाँकि, हृदय गति में उल्लेखनीय कमी मुख्य रूप से दीर्घकालिक अभ्यासियों में देखी जाती है।

आहार और व्यायाम के साथ योग को एकीकृत करने से हृदय स्वास्थ्य में संपूर्ण सुधार हो सकता है। एक संतुलित आहार, जो कम वसा और उच्च फाइबर वाला हो, को योगाभ्यास के साथ मिलाकर हृदय रोग के जोखिम

को कम किया जा सकता है। एक शोध ने यह भी दर्शाया कि योग का नियमित अभ्यास हृदय की धड़कन को नियंत्रित करने और रक्तदाब को स्थिर रखने में सहायक होता है, जिससे हृदय संबंधी समस्याओं की संभावना कम होती है। शोधकर्ताओं द्वारा की गई अन्य विविध अध्ययनों में यह पुष्टि की गई है कि योग से हृदय गति में सुधार के साथ-साथ संतुलित वजन बनाए रखने में सहायता मिलती है। इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि योग केवल एक शारीरिक व्यायाम नहीं है, बल्कि यह एक समग्र जीवनशैली का हिस्सा बन सकता है, जो एक स्वस्थ और संतुलित जीवन जीने में मदद करता है। अंततः, योग-आधारित जीवनशैली हस्तक्षेप न केवल जिंदगियों को बेहतर बना सकता है, बल्कि यह विभिन्न रोगों की रोकथाम और उपचार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। स्वास्थ्य विशेषज्ञों का मानना है कि योग को नियमित दिनचर्या में शामिल करने से न केवल जीने की गुणवत्ता में सुधार होगा, बल्कि यह दीर्घकालिक स्वास्थ्य लाभ भी प्रदान करेगा, जिससे भविष्य में होने वाले हृदय रोगों के खतरों को कम किया जा सकेगा।

3. **तंत्रिका गतिविधि को कम करना** : ध्यान के पूर्वकाल प्रांतस्था, इंसुला, द्वितीयक सोमेटोसेंसरी प्रांतस्था और थैलेमस में दर्द से संबंधित तंत्रिका गतिविधि में कमी आती है। Delmonte, 1984a; Daniels & Fernhall, 1984 के अध्ययनों से प्राप्त परिणामों के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि ध्यान के दौरान अल्फा गतिविधि में काफी वृद्धि होती है। अल्फा तरंगें धीमी और उच्च आयाम वाली मस्तिष्क तरंगें होती हैं, जिनकी आवृत्ति आठ से तेरह चक्र प्रति सेकंड होती है। ये आमतौर पर गहरी विश्राम की अवस्था का संकेत देती हैं। लंबे समय तक ध्यान करने वाले व्यक्तियों में थोड़ा तरंग गतिविधि (पांच से सात चक्र प्रति सेकंड) भी देखी जाती है, जिसमें वे आत्म-जागरूकता के साथ सुखद अनुभव की रिपोर्ट करते हैं (Jacobs तथा Luber, 1989; Delmonte, 1984a)। अनुसंधान में यह भी पाया गया है कि ध्यान के दौरान दाएँ मस्तिष्क की गतिविधि बढ़ती है (Pagano तथा Frumkin, 1977)। Delmonte (1984b) ने बताया कि ध्यान का अभ्यास बाएँ गोलार्ध से शुरू होता है, जो फिर दाएँ गोलार्ध की ओर स्थानांतरित होता है, जबकि उन्नत ध्यान में दोनों गोलार्धों की गतिविधि अक्सर बाधित हो जाती है। Litscher तथा अन्य (2001) ने दो क्यूईगोंग विशेषज्ञों के मस्तिष्क ऊतकों में ऑक्सीजेनेशन के स्तर को मापने के लिए टीसीडी और निकट अवरोक्त स्पेक्ट्रोस्कोपी का उपयोग किया। ध्यान के समय दाएँ पश्च मस्तिष्क धमनी में औसत रक्त प्रवाह बढ़ गया, जबकि बाएँ मध्य मस्तिष्क धमनी में कमी आई। ऑक्सीहीमोग्लोबिन और कुल हीमोग्लोबिन में भी वृद्धि हुई। क्यूईगोंग के दौरान मस्तिष्क के अग्र भाग में प्रमुख ईईजी गतिविधि देखी गई, जबकि पश्च भाग में कम गतिविधि हुई। इसे मस्तिष्क के यिंग और यांग के रूप में देखा जा सकता है। न्यूरोट्रांसमीटर और ध्यान के संबंध को समझने के लिए भी प्रयास किए जा रहे हैं, जिसमें डोपामिनर्जिक प्रणाली का विश्राम ध्यान के दौरान कार्यकारी प्रणाली के दमन में महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके अतिरिक्त, ध्यान का प्रभाव मस्तिष्क के अन्य क्षेत्रों में भी उत्पन्न होता है जो तंत्रिका गतिविधि को संतुलित करने में सहायता करते हैं। यह देखा गया है कि ध्यान के दौरान मनोरंजक व घटित होने वाले भावनात्मक प्रक्रियाओं में बदलाव होता है। विशेषकर, अमिगडाला और फ्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स के बीच की इंटरैक्शन में वृद्धि होती है, जो भावनाओं के नियमन से संबंधित है। ध्यान के दौरान तनाव से संबंधित प्रतिक्रियाओं में कमी आना भी प्रलेखित किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि ध्यान मेडिटेशन न केवल मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करता है बल्कि शारीरिक स्वास्थ्य में भी सकारात्मक प्रभाव डालता है।
4. **चयापचय और श्वसन** : ध्यान के दौरान कई अध्ययनों में पाया गया है कि ऑक्सीजन की खपत और कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन दोनों 50% तक कम हो जाते हैं, साथ ही श्वसन दर में भी गिरावट आती है (Sudsuang तथा अन्य, 1991; Kesterson, 1986)। इसके साथ ही व्यक्ति की चयापचय की क्रिया भी तेज होती है। चयापचय की प्रक्रिया तेज होने से व्यक्ति का वजन भी संतुलित रहता है।
5. **त्वचा प्रतिरोध** : कम त्वचा प्रतिरोध (गैल्वेनिक त्वचा प्रतिक्रिया के अनुसार) तनाव का संकेतक है। शोधकर्ताओं ने पाया कि ध्यान के द्वारा उच्च त्वचा प्रतिरोध विकसित होता है (Telles तथा अन्य, 2013; Bono, 1984; Bagga & Gandhi, 1983)। गैल्वेनिक त्वचा प्रतिक्रिया (GSR) का अध्ययन विभिन्न मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं और भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को समझने में महत्वपूर्ण है। जब व्यक्ति तनाव में होता है, तो उनकी त्वचा का प्रतिरोध कम हो जाता है, जो स्वायत्त तंत्रिका तंत्र की सक्रियता का संकेत देता है। इसके विपरीत, उच्च त्वचा प्रतिरोध को आमतौर पर शांति या आराम की स्थिति से जोड़ा जाता

है, जो दर्शाता है कि व्यक्ति तनाव या चिंता की स्थिति में नहीं है। अध्ययन इस सिद्धांत को समर्थन देते हैं कि यह त्वचा प्रतिक्रिया तनाव, भय, और अन्य नकारात्मक भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता को दर्शाता है। गैल्वेनिक त्वचा प्रतिक्रिया केवल एक जैविक संकेतक नहीं है बल्कि यह व्यक्ति की भावनात्मक स्थिति और मानसिक स्वास्थ्य का भी प्रतिबिंब है। इससे न केवल चिकित्सकों को रोगियों की स्थिति को समझने में मदद मिलती है, बल्कि इसे तनाव प्रबंधन और उपचार की रणनीतियों के विकास में भी उपयोग किया जा सकता है। इस दिशा में आगे बढ़ते हुए, शोधकर्ताओं का ध्यान विभिन्न उपचार विधियों की प्रभावशीलता पर केंद्रित है, ताकि बेहतर मानसिक स्वास्थ्य के लिए नई तकनीकें विकसित की जा सकें।

6. **बढ़ती उम्र पर नियंत्रण तथा दीर्घ आयु :** उम्र बढ़ने की प्रक्रिया को धीमा करने में ध्यान का महत्वपूर्ण प्रभाव पाया गया है। ध्यान के माध्यम से यह हासिल करने का एक प्राथमिक तंत्र शरीर में तनाव के स्तर को कम करना है। शोध अध्ययनों ने लगातार यह प्रदर्शित किया है कि नियमित ध्यान अभ्यास न केवल व्यक्तियों को युवा महसूस करने और दिखने में मदद करता है, बल्कि दीर्घायु बढ़ाने में भी योगदान देता है। तनाव में कमी इस प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण कारक है, क्योंकि लंबे समय तक तनाव शरीर और समग्र स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डाल सकता है।
7. **ध्यान के द्वारा अधिक ऊर्जा और अधिक दक्षता की प्राप्ति :** नियमित ध्यान अभ्यास में संलग्न होने से मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए कई लाभ पाए गए हैं। प्रमुख लाभों में से एक यह है कि यह मन को साफ करने और ऊर्जा के स्तर को बढ़ाने की क्षमता रखता है। ध्यान पैरासिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र के एक महत्वपूर्ण घटक वेगस तंत्रिका को उत्तेजित करने के लिए दिखाया गया है, जो सकारात्मक भावनाओं को बढ़ावा देने और विश्राम को प्रेरित करने के लिए जिम्मेदार है। हाल के शोध ने विशेष रूप से कार्यस्थल के तनाव को कम करके उद्यमियों के बीच थकावट को कम करने पर ध्यान के सकारात्मक प्रभाव को उजागर किया है। शांति की भावना को बढ़ावा देने और ऊर्जा के स्तर को बढ़ाने से, ध्यान स्वाभाविक रूप से बेहतर दक्षता, बढ़ी हुई मानसिक स्पष्टता और दैनिक चुनौतियों से निपटने की अधिक क्षमता की ओर ले जाता है।
8. **मांसपेशियों को आराम :** ध्यान के द्वारा मांसपेशियों को आराम मिलता है। Narayan तथा अन्य (1990) ने अपने शोध में ऐसे ही परिणाम प्राप्त किए। कुछ ध्यान अभ्यासों में व्यवस्थित रूप से विभिन्न मांसपेशी समूहों को तनाव देना और फिर आराम देना शामिल है, जो पूरे शरीर में तनाव को पहचानने और उसे छोड़ने में मदद करता है। मांसपेशियों को आराम देने के लिए ध्यान का प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए, नियमित रूप से अभ्यास करना और ऐसी तकनीकें खोजना महत्वपूर्ण है जो आपके लिए सबसे अच्छा काम करती हैं। प्रगतिशील मांसपेशी विश्राम या योग जैसी अन्य विश्राम तकनीकों के साथ ध्यान को संयोजित करने से इसके लाभ बढ़ सकते हैं।

## 16.6.2 ध्यान के द्वारा होने वाले मानसिक स्वास्थ्य लाभ

1. **उच्च रक्तचाप :** अनेक अध्ययनों से पता चला है कि ध्यान का रक्तचाप पर सकारात्मक प्रभाव हो सकता है, जिससे यह उच्च रक्तचाप के प्रबंधन और हृदय रोग की रोकथाम में सहायक होता है। 298 विश्वविद्यालय के छात्रों पर किए गए एक अध्ययन में उच्च रक्तचाप के जोखिम वाले व्यक्तियों का रक्तचाप कम होने का प्रमाण मिला। इसके अलावा, ध्यान ने मानसिक संकट, क्रोध प्रबंधन, चिंता और अवसाद में भी सुधार दिखाया। विशेषकर उच्च रक्तचाप के प्रबंधन में ट्रान्सेंडेंटल मेडिटेशन के फायदों के लिए पर्याप्त साक्ष्य हैं, और इसे अमेरिकन हार्ट एसोसिएशन द्वारा अनुशंसित किया गया है। ध्यान के विभिन्न रूपों में से एक, जैसे यौगिक ध्यान और विपश्यना, भी रक्तचाप को नियंत्रित करने में सहायक हो सकते हैं। ये तकनीकें मानसिक संतुलन को बढ़ावा देती हैं और तनाव को कम करने के लिए प्रभावकारी योजनाएं प्रस्तुत करती हैं। अध्ययनों से यह भी पता चला है कि नियमित ध्यान करने से हृदय की धड़कन में स्थिरता आती है, यह हृदय की गति को कम करता है (Dillbeck & Orme-Johnson, 1987) जो उच्च रक्तचाप वाले व्यक्तियों के लिए लाभकारी साबित हो सकता है (Telles तथा अन्य 2013)। उच्च रक्तचाप का प्रभाव केवल शारीरिक स्वास्थ्य तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि यह मानसिक स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। इस संदर्भ में, ध्यान के माध्यम से तनाव कम करने और मानसिक स्पष्टता बढ़ाने के उपाय, उच्च रक्तचाप वाले व्यक्तियों के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

इसी तरह, ध्यान के माध्यम से प्राप्त मानसिक शांति और अनुकंपा की भावना, व्यक्ति के जीवन में सकारात्मक बदलाव ला सकती है। इससे न केवल रक्तचाप में कमी आएगी बल्कि समग्र स्वास्थ्य में भी सुधार होगा। ध्यान के नियमित अभ्यास से व्यक्ति अपने आहार और जीवनशैली को बेहतर बनाने के लिए प्रेरित हो सकता है, जो उच्च रक्तचाप के प्रबंधन में सहायक हो सकता है। अतः यह स्पष्ट है कि ध्यान, विशेष रूप से ट्रांससेंटेंटल मेडिटेशन और अन्य ध्यान विधियाँ, उच्च रक्तचाप के प्रबंधन के लिए एक महत्वपूर्ण और प्राकृतिक उपाय हो सकती हैं। यह न केवल शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार लाएगा, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य को भी सुदृढ़ करेगा, जो आज की तात्कालिकता और तनाव भरी जिंदगी में अत्यंत आवश्यक है।

**2. चिंता तथा अवसाद :** माइंडफुलनेस मेडिटेशन कार्यक्रमों के लाभ के समर्थन में मध्यम प्रमाण है कि यह चिंता और अवसाद के लक्षणों में सुधार करता है (Kanchan तथा अन्य, 2016; Uebelacker & Broughton, 2016; Pearl & Carlozzi, 1994)। हालांकि, ध्यान देने की इस तकनीक के दीर्घकालिक प्रभावों पर अधिक जानकारी की आवश्यकता है। कुछ अध्ययनों में यह पाया गया कि नियमित तौर पर अभ्यास करने वालों में समग्र मानसिक संतुलन और सकारात्मक भावनाओं की वृद्धि होती है (Taylor, 1995; Kabat-Zinn 1992)। फिर भी, यह जानना महत्वपूर्ण है कि हर व्यक्ति पर ये प्रभाव अलग-अलग हो सकते हैं, और सभी को इस अभ्यास से समान लाभ नहीं मिल सकता है। सारांश में, जबकि माइंडफुलनेस मेडिटेशन चिंता और अवसाद के लक्षणों में सुधार के लिए एक संभावित उपकरण है, इसके अन्य मानसिक स्वास्थ्य पहलुओं की रोकथाम या सुधार में अधिक समर्पित शोध की आवश्यकता है।

**3. अनिद्रा :** रोगियों में अनिद्रा की समस्या की स्थिति में ध्यान करने का सकारात्मक परिणाम चिकित्सुओं पर देखे गए हैं। एक अध्ययन में अनिद्रा से पीड़ित वयस्कों पर डटैट के लक्षणों पर प्रभाव का विश्लेषण किया गया। परिणामों से पता चला कि ध्यान तकनीक ने नियंत्रण समूह की तुलना में अनिद्रा की गंभीरता को कम किया, लेकिन इस सुझाव की पुष्टि के लिए और अनुसंधान आवश्यक है। अध्ययन में एक और महत्वपूर्ण पाया गया कि MBSR ने केवल अनिद्रा की गंभीरता को ही नहीं, बल्कि रोगियों के मानसिक स्वास्थ्य को भी सुधारने में योगदान दिया। प्रतिभागियों ने चिंता और अवसाद के स्तर में कमी की रिपोर्ट की (Elias & Wilson 1995; Harte etAl., 1995), जिससे यह संकेत मिलता है कि ध्यान तकनीकें समग्र कल्याण पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकती हैं।

अनुसंधान में शामिल व्यक्तियों ने ध्यान प्रथाओं को नियमित रूप से अपनाने के बाद बेहतर नींद की गुणवत्ता और गहरी नींद का अनुभव किया। यह स्पष्ट है कि मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के बीच एक संबंध है, और डटैट जैसे कार्यक्रम तनाव को कम करने में सहायक हो सकते हैं।

**4. धूम्रपान छोड़ने हेतु :** धूम्रपान छोड़ने में ध्यान के अभ्यास की प्रमाण मिले हैं। एक यादृच्छिक नियंत्रित परीक्षण ने पाया कि माइंडफुलनेस मेडिटेशन ने अल्पावधि में और उपचार के चार महीने बाद सिगरेट सेवन दर को कम करने में सहयोग किया। यह संभवतः धूम्रपान की लालसा को घटाने की माइंडफुलनेस और जागरूकता की क्षमता के कारण है। माइंडफुलनेस मेडिटेशन स्ट्रेस प्रबंधन में मदद कर सकता है, जो धूम्रपान की इच्छा को कम करने में सहायक हो सकता है। इस संदर्भ में, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि धूम्रपान की समस्या अक्सर मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी होती है, और इसीलिए समग्र दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।

## बोध प्रश्न

### टिप्पणी:

(क) नीचे दिये हुए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

6. ध्यान मोटापा घटाने में किस प्रकार मदद करता है ?

7. ध्यान उच्च रक्तचाप को कैसे नियंत्रण में रखने में सहायता करता है ?

## 16.7 सारांश

योग केवल एक शारीरिक व्यायाम नहीं है, बल्कि यह एक समग्र स्वास्थ्य प्रबंधन प्रणाली है जो शरीर, मन और आत्मा के समन्वय को बढ़ावा देती है। इसके द्वारा न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को बेहतर किया जा सकता है, बल्कि मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य में भी सुधार किया जा सकता है। योग को जीवनशैली में शामिल करना, विशेष रूप से आज के तेज-तर्रार जीवन में, एक महत्वपूर्ण कदम है जो संतुलित जीवन की दिशा में अग्रसर करता है। इस प्रकार, ध्यान एक समग्र उपाचार के रूप में उभरता है जो मानसिक, भावनात्मक, और शारीरिक स्वास्थ्य में समवाय स्थापित करता है। इसमें वैज्ञानिक रुचि में वृद्धि और निरंतर अनुसंधान की आवश्यकता है, जिससे ध्यान प्रक्रिया के अंतर्गत घटनों और तंत्रिका नेटवर्क के अधिक गहरे ज्ञान को प्राप्त किया जा सके। ध्यान के अभ्यास को एक नियमित जीवनशैली का हिस्सा बनाना, जीवन की गुणवत्ता में सुधार का एक प्रभावी तरीका हो सकता है।

## 16.8 अभ्यास के प्रश्न

1. ध्यान से आप क्या समझते हैं ? ध्यान से होने वाले शारीरिक स्वास्थ्य संबंधी लाभों की चर्चा करें।
2. ध्यान के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करते हुए ध्यान से होने वाले मानसिक स्वास्थ्य संबंधी लाभों पर प्रकाश डालें।

## 16.9 चर्चा के बिंदु

1. विभिन्न भारतीय तथा पाश्चात्य धर्म तथा दर्शनों में ध्यान के रूप की चर्चा करें।
2. ध्यान तथा चिकित्सा के आपसी संबंध में हो रही नवीन शोधों पर चर्चा करें।

## 16.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 'तत् प्रत्ययैकतानता ध्यानम्' का अर्थ है कि जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाए, उसी में चित्त का एकाग्र हो जाना अर्थात् केवल ध्येयमात्र की एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह चलना, उसके बीच में किसी भी दूसरी वृत्ति का न उठना ध्यान है।
2. बौद्ध दर्शन में ध्यान की दो तकनीकों ; समाधा तथा विपश्यना का उल्लेख है।
3. ध्यान चयापचय की क्रिया को तेज करके बीएमआई पर सकारात्मक प्रभाव डालता है जिससे वजन में कमी आती है।
4. नियमित ध्यान करने से हृदय की धड़कन में स्थिरता आती है, यह हृदय की गति को कम करता है जो उच्च रक्तचाप वाले व्यक्तियों के लिए लाभकारी साबित होता है।

## 16.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Yogi Ramacharaka (1904) Hatha Yoga or the yogi Philosophy of Physical Well&Being, Yogi Publication Society.
2. गौतम, चमनलाल (1984). ध्यान से चिंता निवारण। संस्कृति संस्थान।
3. मंडे, ए. ई. (1984). ध्यान से आत्म-चिकित्सा। आत्मिक अन्वेषण सभा।

## Notes